THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180656

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/LA9D. Accession No. H2701

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

धरती की आँखें

लक्ष्मी नारायण लाल

सेन्ट्रल बुक डिपो
इलाहाबाद
१९५१

प्रकाशक
सेंट्रल बुक डिपो
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

मुद्रक
चुन्नीलाल
वैनगार्ड प्रेस, इलाहाबाद

१६ दिसंबर १६५० की एक रात में
गोपाल
नरेन्द्र
और लक्ष्मी को

भूमिका के निमित्त

भूमिका लिखने का कार्य्य बड़ा ही कठिन और दायित्त्वपूर्ण है। मैं वैसे कोई सिद्ध समालोचक या विज्ञ भाषाज्ञाता नहीं हूँ। उपन्यास-साहित्य का एक जिज्ञासु पाठक अवश्य हूँ। श्री लक्ष्मीनारायण लाल के प्रस्तुत उपन्यास 'धरती की आँखें' का भूमिका का एक इतिहास है—मैंने तो कहा था कि मुझसे कहीं अधिक योग्य और रसज्ञ समालोचक उन्हे हिन्दी में मिलेंगे। पर जब वे मेरे अभिमत और प्रोत्साहन पर ही तुल गए तो फिर ये पक्तियाँ मैंने इस आशा से लिखी हैं कि इस उपन्यास के निमित्त नये कलाकारों के जीवन और कला के प्रति दृष्टिकोण पर कुछ कह सकूँ।

उनसे मैंने कुछ प्रश्न पूछे; वे उनके उत्तर सहित यों हैं:—

प्रश्न (१) आपने इस उपन्यास की रचना क्यों की? आपका उद्देश्य क्या है?

उत्तर:—सच्चाई के साथ गाँव के व्यक्तित्व के एक पक्ष को दुनियाँ के सामने रखने की हार्दिक भूख ने मुझे उपन्यास लिखने को विवश किया। जन्म से आज तक गाँव की धरती ने अपनी जितनी बातें मुझसे कहीं हैं—उसके सारे उलहने, सारे आँसू, सारी क्रान्ति की चेतनाएँ इस उपन्यास में हैं। अतः धरती का सच्चा चित्रपट, उसकी एकता, इसका अनोखा व्यक्तित्व जहाँ इंसान अपनी विभिन्नताओं में भी मूल रूप से एक हैं—एक ही धरती के लाल हैं; सच्चाई से जहाँ जातिगत भेद नहीं; क्योंकि सभी इंसान धरती की एक साँस हैं; एक ही अग्निपिण्ड रूपी आत्मा की चिनगारियाँ हैं, आदि बातें इस उपन्यास का प्राण है!

प्रश्न (२) आपको इस उपन्यास रचना के पूर्व किन लेखकों ने प्रभावित किया है ?...यानी आप किसी परंपरा—(हिन्दी या विदेशी लेखकों की) को लेकर चले हैं, या एकदम मौलिक और स्वतंत्र उद्भावना आपने की है ?

उत्तर :—मेरा उपन्यास किसी भी परम्परा विशेष या साधारण की दिशा में नहीं लिखा गया है। मैं स्वयं किसान का बच्चा हूँ और मिट्टी-धूल-कीचड़ में हँसकर, खेलकर, रोकर आगे बढ़ा हूँ। उन्हीं सारी लड़ाइयों और जीवन की मुस्कराहटों की सच्ची अनुभूतियों पर यह उपन्यास खड़ा है। मेरा यह उपन्यास मेरी अपनी साँसों की तरह मेरी मौलिक चेतना का प्रतिरूप है। हाँ वैसे पाठक और विद्यार्थी रूप में मुझे गोर्की-टाल्सटाय, शरदबाबू, प्रेमचन्द, अज्ञेय और कृष्ण चन्द्र ने बहुत ही प्रभावित किया है।

प्रश्न (३) आप जिन चरित्रों की सृष्टि करते हैं वे सर्वथा काल्पनिक होते हैं या सर्वथा यथार्थवादी ? घटनाओं के चुनाव के विषय में भी आपकी दृष्टि किस विचार से निर्धारित होती है ?

उत्तर :—समस्त चरित्रों की आत्माएँ सच्ची हैं, यथार्थ हैं—पूर्ण यथार्थ। पर अपने शरीर और बाह्य रूप में काल्पनिक भी हैं। वे सत्य हैं पर मैंने उन्हे सुन्दर बनाने की चेष्टा की है—अपनी ओर से कुछ कान-नाक जोड़कर नहीं वरन् उन्हें नहलाकर, जगाकर, उनकी धूल और कीचड़ झाड़कर। ठीक यही बात घटनाओं के चुनाव और निर्माण में है। घटनाओं की भावधारा मुझे स्वयं अपनी बलवती लहरों में बहाकर चली है। लगा है कि सब चरित्र, स्वयं सत्य रूप में मेरे पास आते गए हैं, कार्य्य करते गए हैं और मुझसे अपना इतिहास लिखाते गए हैं। उपन्यासकार मेरे सब चरित्र हैं, मैं तो उनका साधन हूँ।

उत्तर (४) सामाजिक उपन्यास का कार्य्य (१) केवल समाज में पैठकर ज्यों का त्यों यथार्थ चित्रण करना या (२) समाज को उद्बुद्ध करना या (३) समाज से दूर खड़े होकर केवल उसपर आलोचना करना आप समझते हैं ?

उत्तर :—शैली की दृष्टि से ऊपर की तीनों बातों को मैं महत्त्व देता हूँ लेकिन पहली दो बातें मेरी चेतना के मूल उद्गम हैं। इस उपन्यास में जितने तूफ़ान आये हैं, जितनी अमृत की वर्षा हुई है; लगा है कि सब मुझसे होकर गए हैं। एक वाक्य में—इस उपन्यास में जितने चरित्र आए हैं, जितनी घटनाएँ आई हैं; यही सब इस उपन्यास रूपी धरती की आँखें हैं और मैं सबके साथ हँसता और रोता रहा हूँ।

* * *

मैं बड़े मनोयोगपूर्वक यह 'धरती की आँखें' नामक ४१० पृष्ठ का उपन्यास पढ़ गया। इस पर सहज मत देकर टालना नहीं चाहता। पाठक इस पर अपना मत बनायेंगे ही। पर दो तीन अच्छी बुरी बातों का उल्लेख ज़रूर करना चाहता हूँ।

इस उपन्यास में मुझे अच्छी लगीं तीन बातें, एक, गोविन्द की अंध-विश्वासों के विरुद्ध, हिन्दू-मुस्लिम-अछूत की जातीय संकीर्णता के विरुद्ध विद्रोह की वृत्ति। दूसरी बात, पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों के कई रहन-सहन, किसानों के रीति-रिवाज और ग्राम-गीतों के कई स्थलों पर सुदर और ताज़े वर्णन। तीसरी बात, लेखक का जीवन की यथातथ्यता की ओर झुकाव; जो उसकी प्रगतिशील दृष्टि का द्योतन करता है। वह किसी 'वाद' का प्रचार करने हेतु नहीं चला है; और उसके लिए किसी अन्य सामाजिक-राजनैतिक दल या विरोधी धारा के प्रति नाहक आक्रोश और घृणा का प्रचार वह नहीं करना चाहता। जहाँ उसके पात्र जमींदारी-उन्मूलन के चमत्कार से अभिभूत होकर

धरती पर स्वर्ग की सहज अवतारणा का स्वप्न देखते हैं; लेखक उनके साथ उतना ही उत्फुल्ल और उत्साह भरा है ! जहाँ उससे निराशा, असंतोष और जन-साधारण की निर्भ्रांति (डिसइल्यूजनमेंट) है, वहाँ उसे भी सही-सही शब्दों और चित्रों में उसने अंकित कर दिया है।

मुखिया बद्री पाँडे के झूठे बह्मनपन की पोल जहाँ उसने खोली है, वहाँ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के छात्र और छात्राओं का भी अनासक्त भाव से व्यंग्य-चित्रण किया गया है। और इस तरह कई स्थलों पर यह उपन्यास बहुत अच्छे स्केच सामने रखता है। कई स्थल पर शिव-मङ्गलसिंह 'सुमन' की कविताओं और प्रकाशचन्द्र गुप्त, कृष्ण चंद्र तथा रामानन्द सागर की रचनाओं का बरबस स्मरण हो जाता है।

पर कुल मिलाकर उपन्यास में कोई केन्द्रैक्य (सेंट्रेलिटी) नहीं है इसके लिये शायद लेखक का रोमांटिक दृष्टिकोण ज़िम्मेदार है।

मैं रोमांस का विरोधी नहीं हूँ। स्वस्थ भावनाओं में प्रेम भी एक प्रबल शक्ति है। परन्तु ग्रामीण जीवन के चित्रण में उसका कितना प्रतिशत हाथ है, यह देखना होगा। पर्लबक ने 'एशिया' की एक संपादिका गर्टयूड इमर्सन सेन की पुस्तक 'वायसलेस-इंडिया' की भूमिका में लिखा था कि 'साधारण भारतीय देहात की ज़िन्दगी दुनिया के किसी भी हिस्से से ज्यादा अभावग्रस्त और गंदी है; शायद उत्तरी चीन के कुछ हिस्सों में वह वैसी हो।'

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने १६३१ में लिखा था जो कि २० साल बाद भी उतना ही सही है—"These villages had no a allurements of the romantic India, incomprehensibly mystic in her ritualism, or ineffably grand in her relics and ruins. The background of life they had was dull and drab, with no lurid fascination of vice so important for making its detailed descriptions

gratifying to some readers in their search for a vicavious enjoyment under the cover of moral indignation. These unfortunate Indian villagers are deserted by their own capable men, neglected with scant notice by their politicians, carefully ignored by the government, doubly suffering from unspeakable miseries, putting all the blame on the inexorable fate, but down to the dust by the load of indignations, deprived of education, sanitary or medical help." प्रस्तुत उपन्यास में देहात के इस पहलू की झाँकी कम है।

यह बात मैं इसलिए और भी कहता हूँ कि लेखक का उद्देश्य ज़मींदारी के विरुद्ध कुछ कहना भी है। ज़मींदारी, जागीरदारी हमारे सामंती संस्कारों की अन्तिम कड़ी हैं। उसका विरोध रोमांटिक दृष्टि से नहीं हो सकता, क्योंकि वह दृष्टि स्वयमेव सामंतवाद का एक अंश है।

रोमांटिक दृष्टि का एक दूसरा दोष यह है कि वह पात्रों की सृष्टि ज्यों-की-त्यों, सप्राण, उसके समूचेपन में, सारी कसक-मुसुक चेतन-अर्द्धचेतन-अचेतन के साथ नहीं होने देते। वह यथार्थ को स्वप्निल-धुँधला बना डालती है। स्काट के पात्रों के बारे में फॉस्टर की यही शिकायत है कि वे सिर्फ़ लम्बे और चौड़े दो ही परिमाण वाले सपाट (फ़्लैट) पात्र हैं। उनमें तीसरा परिमाण नहीं है। आधुनिक उपन्यासों का चरित्र-चित्रण तीसरे परिमाण के साथ होना चाहिये।

आर्थर कोएस्लर के उपन्यास "एराइवल ऐंड डिपार्चर" के अंत में नायक पीटर स्लावेक नायिका ओदेत को एक चिट्ठी लिखता है, जिसमें एक महत्त्वपूर्ण अंश यों है—"अब मुझे पूरा पता लग गया है कि मेरा तुझ पर प्रेम था और मैं जन्म भर तुझ पर प्रेम करता रहूँगा।

और तो भी मैं तुझसे दूर दूर जा रहा हूँ! क्यों यह मुझे खुद को नहीं मालूम...पर यह देखो ओदेत ! बचपन में हम एक मज़ेदार खिलौना लेकर खेलते हैं। यह खिलौना तुझे मालूम है! यह खिलौना है एक कागज़! उस कागज़ को सीधे देखो तो लगता है कि उस पर नीली और लाल रेखाएँ टेढ़ी-मेढ़ी खींची गई हैं और कुछ नहीं है परन्तु उस कागज़ के साथ दो झीने रंगीन कागज़ भी मिलते हैं। उसमें का लाल रग वाला कागज़ उन लकीरों वाले कागज़ पर रखने से उस पर की लाल लकीरें गायब हो जाती हैं और नीली लकीरों की एक तस्वीर हमारे समाने आ जाती है। कुत्ते को कूदने के लिए सिखाने वाले एक विदूषक का यह चित्र होता है परन्तु लाल कागज़ निकाल देने पर और नीला कागज रख देने से नीली लकीरें गायब होने से एक नयी तस्वीर दिखाई देती हैं और वह है गरजने वाले सिंह की। मूल कागज़ में विदूषक और शेर दोनों का चित्र होता है। उसमें से कौन सा स्पष्ट दिखाई देगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उ स पर किस तरह का कागज़ रख रहे हैं! हर आदमी इसी तरह से अलग अलग तस्वीरों से बना रहता है। उनमें से कब और कौन सी तस्वीर उभरकर सामने आ जायगी यह नहीं कहा जा सकता।"

उपन्यासकार की दृष्टि उसकी चरित्र-सृष्टि पर बहुत प्रभाव डालती है। श्री लक्ष्मीनारायण लाल को एक दिन मेरी बात का महत्त्व ज्यादा जान पड़ेगा, गो आज उन्हें ऐसा लगेगा कि मैं निरे रोमाँस-विरोधी, सामाजिक यथार्थवादी, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आग्रह से कुछ अप्रिय बातें कह रहा हूँ।

डॉ० एस० सैवेज ने 'दि विदर्ड ब्रैंच' में आधुनिक उपन्यासकारों की समीक्षा उपस्थित की है। भूमिका में वे लिखते हैं कि 'प्रत्येक उपन्यास का एक ढाँचा होता है जो लेखक के व्यक्तित्व से बनता है, और जिन कृतियों में अधिक सार्वजनीनता रहती है उनके बारे में भी यह सही है। सभी कला-प्रकारों में उपन्यास सबसे अधिक वैयक्तिक

होता है; उसका मूलारंभ सदा आत्मचरित्रात्मक होता है' (पृष्ठ १०) इसी भूमिका में सैवेज ने कहा है कि उन्नीसवी शती के अंत तक पश्चिम में सत्य की यथार्थता के प्रति उपन्यासकार की ज़िम्मेदारी टूट गई थी। उपन्यासकार सत्य के चित्रण से ऊब गया था। उसने दो राहें पकड़ीं—जीवनवाद (वाइटैलिज्म) या सौन्दर्य्यवाद (इस्थेटिसिज्म)। जीवनवादी कला को किसी उपयोगितावादी शक्ति से संचालित मानते थे, चाहे वह प्राणी शास्त्रीय हो या अर्थशास्त्रीय। इस प्रकार उन्होंने कला के रूप की उपेक्षा कर दी। उसके उलटे रूपवादियों ने 'कला के लिए कला' के आग्रह में उसकी आत्मा को कुंठित कर दिया, प्राणहीन बना दिया। करीब-करीब यही हाल हमारी भाषाओं में भी उपन्यासकारों का हुआ है। या तो निरे उपयोगितावादी उपन्यास हैं, या कलावादी। अब साहित्य में वह अवस्था आगई है कि जीवन की समग्रता को चित्रित करने वाले, तीन परिमाणों वाले चरित्रों की सर्वांगीण सृष्टि करने वाले उपन्यासकार बहुत कम मिलते हैं। सच्चे अर्थ में अपने आपको और उसके द्वारा युगीन साधारणीकरण को भी 'सामाजिक' तक व्यक्त कर सकेंगे ऐसे उपन्यासलेखकों का भविष्य है।

* * *

इस उपन्यास, "धरती की आँखें" में धरती का चित्रण काफी ईमानदारी के साथ किया गया है। धरती के बेटे जिस तरह जीते-मरते झगड़ते-बढ़ते हैं; उनकी बातों को, उनके दिल की उमंगों—और सपनों को भी वाणी का आकार दिया है। साम्प्रदायिक एकता के सूत्र के कारण उपन्यास की भाषा में भी एक प्रकार की ताज़गी और प्रवाह है जिसमें हिन्दी-उर्दू के शब्द गंगा-जमुना के दोआबे की धार की भाँति मिलते जाते हैं। कहीं कोई बनावट नहीं जान पड़ती। बीच-बीच में देहाती शब्दों की छटा एक प्रकार का ग्रामीण वातावरण निर्माण कर देती है। इस दृष्टि से श्री लक्ष्मीनारायण लाल की उपन्यास-शैली का भविष्य मैं बहुत उज्वल देखता हूँ।

उपन्यास के नायक गोविन्द जैसी अंध-विश्वास विरोधी, सामंत-वादी सड़ी-गली परंपराओं से बगावत करने वाली उदार दृष्टि जब अधिक सँवरती और कड़ुए जीवनानुभवों से संभवित-संतुलित होती जायगी—तब हमारे देहातों का भी वह चित्र हमारे उपन्यासों में व्यक्त होगा जो प्रेमचन्द्र और शरच्चन्द, ताराशंकर बनर्जी और र० वा० दिघे ने सफलतापूर्वक व्यक्त किया है और जिसकी कुछ छटा हिन्दी में रहबर और नागार्जुन के उपन्यासों में मिलती है। देहात आज टूटकर बिखर रहे हैं; गोल्डस्मिथ के ऊजड़ ग्राम 'की पंक्तियों की भाँति' कलाकार दैन्य से विवर्ण होता जा रहा है, जब शहरों की समृद्धि ज़रतारी ओढ़े इतरा रही है। धीरे-धीरे शहरों की ओर ग्रामीण खिंचे आ रहे हैं, फिर उनका सपना टूटता है। इस सारी प्रक्रिया को श्री लक्ष्मी नारायण लाल अपने अगले उपन्यासों में और सचेष्ट जागरूक दृष्टि से देखेंगे, ऐसी आशा है।

जो मन में उठा वही लिख दिया। यदि कोई त्रुटि हो तो मेरी है; पाठक क्षमाशील हैं ऐसा विश्वास है।

प्रयाग,
बसंत पंचमी
(निराला-जन्मदिन)
११-२-५१

प्रभाकर माचवे

मेरी ओर से

इस उपन्यास के बारे में अपनी ओर से कुछ लिखते समय मेरे मन की वाणी बार-बार एक बहुत ऊँचे कलाकार की संगीतमय आवाज़ में गूँज उठती है कि 'लुभावनी वादियों और हरे-भरे मैदानों में यात्रा करते हुए मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे मैं मनुष्य की आत्मा की वादी में चल रहा हूँ—वह आत्मा जो बहुत प्राचीन महान् और शानदार है; वह आत्मा जो बिल्कुल नवीन और उच्च है और प्रत्येक क्षण नई होती जा रही है।'

लेकिन जन्म से आज तक मैं जिस धरती पर चल रहा हूँ; वह इस माने में और भी शानदार है कि उसने अपनी भोली आत्मा में अपने सारे इतिहास को छिपाकर रक्खा है—चाहे खंडहरों के रूप में, चाहे अपने लोकगीतों के रूप में, चाहे अपनी परम्पराओं के रूप में, चाहे अपने आँसू और मुस्कराहटों के रूप में, और वह हर रात को अपने सूनेपन, पूर्ण स्निग्धता में किसी भी जागने वाले इंसान से अपनी सच्ची, निष्कपट कहानियाँ कहती रहती है—रोमांटिक और तूफ़ानी—दोनों तरह की कहानियाँ !

आलोचना की दृष्टि से या किसी के प्रश्न करने पर कोई लेखक अपनी कृति के उद्देश्य अथवा लिखने के कारण पर चाहे जितना बक जाय, परन्तु सच्चाई के साथ उसकी किसी भी काव्य-प्रेरणा के अन्तराल में केवल एक, सिर्फ एक नूतनतम अनुभूति का विन्दु रहता है। और यही विन्दु मिलते ही उसके चेतन, अर्द्धचेतन, अवचेतन जगत में पड़ी हुई सारी इस दिशा की सामग्रियाँ उस पर पहाड़ बन जाती हैं——ठीक किसी बौद्ध-स्तूप की भाँति जो अपनी सारी विशालता, प्रसार के अन्तस्तल में केवल एक अस्थि-खंड छिपाए रखता है। लेकिन जहाँ

एक स्तूप को खोद डालने से वह अस्थि-खंड किसी स्वर्ण कलश में सुरक्षित मिल सकती है वहाँ लेखक की वह अनुभूति इतनी सूक्ष्म, इतनी अमूर्त रहती है कि लेखक स्वयं उसे वाणी का रूप नहीं दे सकता, जैसे गूँगे का गुड़ खाना।

गत जुलाई में मेरे परिवार का एक दुलारा बच्चा (जिसका नाम मैंने ही बड़े प्यार से 'प्रमोद' रक्खा था) वह मासूम अपनी तोतली बोली बोलते-बोलते एक अजीब कारुणिक ढंग से चुप हो गया। श्मशान पर उसकी एक छोटी सी खूब गहरी क़ब्र खोदी गई। और जब मैं—उसके कफ़न में लिपटे हुए शव को अपने अंक में लेकर उसे क़ब्र में सुलाने के लिए झुका तब मुझे एक क्षण में ऐसा लगा कि वह खुदी हुई गहरी धरती अपनी न जाने कितनी बेनाम कहाँनियाँ कह गई और जब मैंने बाहर निकलकर धरती के सीने को देखा तब मुझे इसकी न जाने कितनी हँसती और रोती हुई आँखें दिखाई देने लगीं।

फिर एक दिन मुझसे एकाएक उस धरती की नयी चेतना के प्रतीक गोविन्द से भेंट हो गयी। उससे अकस्मात् ज़ैनब से भेंट हो गई और वे बेचारे दोनों जीवन संग्राम में फँस गए और मुझे उनका इतिहास लिखना पड़ा।

* * *

इसलिए यह उपन्यास धरती के एक गाँव की चेतना का इतिहास अधिक है, धरती की पूरी कहानियाँ, समूचे पक्ष का चित्रण कम। मैंने जानबूझ कर धरती का उतना ही कैनवेस लिया है जितने में सिर्फ गोविन्द नयी चेतना के प्रतीक की गतिविधि है, ज़ैनब की क्रान्तिकारी आत्मा का प्रसार है और धरती के दुश्मन के विश्वासघात की सीमा है। अतः 'टैगोर' और 'पर्लबक' का दृष्टिकोण मेरे दृष्टिकोण से, अलग की चीज़ है।

मैं बार-बार कहता हूँ कि यह उपन्यास धरती की सभी कहानियाँ,

सभी पक्षों को लेकर नहीं चला है। उसके लिए कमसे कम ढाई हजार पृष्ठों का उपन्यास लिखना होगा।

इस उपन्यास की कथा-वस्तु, बहुत ही छोटी है जो जगतपुर के मूल रूप के खंडहर से, (अर्थात् जगतपुर के टीले से जो सामंतवादी विश्वासघात का प्रतीक है) आरम्भ होकर राजा के विश्वासघात से गुजर कर नयी खेती; जो एक सफल विद्रोह का प्रतीक है, उस तक पहुँच रानी के बाँध पर समाप्त हो जाती है। बस इसी परिधि में धरती की जितनी आँखें आ सकी हैं, उन्हीं का यह उपन्यास सच्चा इतिहास है।

उपन्यास की मुख्य संवेदना गोविन्द के व्यक्तित्व में सिमटकर चली है। गोविन्द एक गाँव के अंधकार में पड़ा हुआ आशा और प्रकाश का वह प्रतीक है, वह नयी चेतना है जो अपनी सीमाओं, गाँव की परिस्थितियों, अपनी परिस्थितियों से विद्रोह करता है। उसने अपनी सच्चाई, अपने दृढ़-चरित्र और कर्त्तव्य से न जाने कितनी ऊँची बातें सिद्ध की हैं। जगतपुर के समूचे इतिहास में ही क्रान्ति उपस्थित की है। नयी खेती कर दिखायी है, ज़ैनब को अपना बनाया है और इसकी सबसे बड़ी क्रान्ति और भारत की धरती का सबसे सुन्दर स्वप्न तो ज़ैनब के गर्भ में है जो एक दिन जगतपुर की धरती पर आने वाला है।

गोविन्द इस तरह कितने असंख्य गाँवों की गूँजती हुई आवाज़ है; आदर्श है जो धरती पर कितने जगतपुर को प्रकाश में लाने का संदेश देता है। कर्त्तव्य-पथ पर खड़ा हुआ अपनी उत्साह भरी वाणी में धरती की आवाज़ बुलंद करता है! इसके कार्य-पथ में जितनी आँखें आई हैं, इसके रास्ते में मिली हैं; वे संसार के लिए आह्वान हैं, दीन पुकार हैं कि हे नयी रोशनी वालो! मुझ पर दया करो! मेरी सहायता करो! अपने समाज को बदलो! अपना दृष्टिकोण बदलो! दुनियाँ कितने आगे बढ़ती जा रही है, हम इतने पीछे पड़े हैं! दौड़ो..सहायता करो! आगे बढ़ो...सीमाएँ तोड़ो..।

इसीलिए मैंने उपन्यास में प्रायः नारी आँखों को ही लिया है; उन्हीं के आँसुओं में ही आपको चलना है जिससे आप में और अधिक परिस्थितियों के प्रति करुणा, दया, संवेदना, मोह, उदारता और अन्त मे विद्रोह उत्पन्न हो। और आप उन्हें कभी न भूलें। इसीलिए मैंने कटु परिस्थियों को भी रोमांटिक ढंग से आपके सामने रखने का प्रयत्न किया है जिससे आप बुरी तरह से आकर्षित हों, आपको असीम आनन्द भी मिले और असीम क्षोभ भी।

कुछ लोगों ने उपन्यास के कुछ अंशों में यौन-वृत्ति की गंध पाई है। मेरे अधिकांश पात्रों को रोमांटिक कहा है परन्तु मुझे लगता है कि उन्होंने इन बातों को बाह्य रूप के आधार पर ही कहा है। चरित्रों के दिलों की गहराइयों में नहीं उतरे हैं, जहाँ केवल टीस ही टीस है—करुणा ही करुणा है। यहाँ तक कि गोविन्द और ज़ैनब के संबन्धों में भी करुणा अधिक है रोमांस बहुत ही कम।

इस दिशा में, मेरी विज्ञजनों से एक यह भी प्रार्थना है कि उपन्यास में भाव संबन्धी, कला सम्बन्धी दोनों प्रकार की त्रुटियाँ हो सकती हैं और उनके लिए मेरा सर हाज़िर है, परन्तु हे महावाहो! खुदा के लिए कहीं पवित्र क़ैसर, सुभागी, तारा, इन्द्रा आदि न जाने कितनी पवित्र आत्माओं के सम्बन्ध में फ्रायड महाप्रभु को न जोड़ दीजिएगा।

* * *

अपनी ओर से इतनी बातें लिखने के यह अर्थ बिल्कुल नहीं हैं कि मैं यह सिद्ध करने बैठा हूँ कि यह उपन्यास कोई ऊँची साहित्यिक कृति है। मैं इसे साहित्यिक कृति नहीं मानता, फिर भी मुझे इसका मूल्य मालूम है। वह मूल्य मैं उन तमाम पाठकों के दिलों को भेंट करता हूँ जो इसे पढ़कर अपना सही दृष्टिकोण बनाएँगे और अपने रास्ते चलेंगे।

ऊपर थोड़ा बहुत लिखकर मैंने सिर्फ अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया

है; वैसे मैं अपने सत्यवादी भूमिका के लेखक प्रभाकर माचवे की बहुतश्रद्धा करता हूँ फिर भी मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरी कला, मेरा दृष्टिकोण, मेरा अपना समूचा व्यक्तित्व अपना है—इसकी सारी जड़ें मेरी अनुभूतियों, धारणाओं की गहरी धरती में समाई हैं—इसमें कोई भी अपना किताबी या सैद्धान्तिक प्रभाव नहीं डाल सकता। मुझे इस दिशा में अपनी सीमाएँ ही प्यारी हैं किसी की महानता का दान नहीं चाहे वह नागार्जुन तो क्या ईश्वर भी क्यों न हों!

अन्त में अपने प्रमोद को प्यार जो रातभर प्रेस में ड्यिुटी बजाने के बावजूद हर सुबह को मुस्कराता हुआ मिलता है।

अपनी बात लिखकर समाप्त करते हुए मुझे ऐसा लग रहा है मानो मैं फिर अकेला हो रहा हूँ।

आरती कुंज-
जलालपुर
बस्ती
१४-२-५१

लक्ष्मी—

१

जगतपुर सो रहा था, और उसकी धरती भी सो रही थी, उसका आसमान भी सो रहा था। उसके किनारे की रोनी नदी भी उस समय तक बहते-बहते थककर सो गई थी। हवा को भी जैसे नींद आने लगी थी।

लेकिन फिर भी रात जवान थी, जिसकी गोद में जगतपुर का टीला मुस्करा रहा था—जैसे उसे किसी भी रात को नींद नहीं आती थी, जैसे वह सोते हुए जगतपुर से कुछ कह रहा था, सोती हुई धरती को मचलकर जगा रहा था; सोते हुए आसमान को गुद्गुदा रहा था, सोती हुई रोनी की ख़ामोश लहरों में फूल के पत्थर फेंक रहा था।

फिर भी सब सो रहे थे, केवल जगतपुर के पश्चिम, उसके ऊँचे टीले पर, घनी झाड़ियों में छिपे हुए दो खंडहर शायद टीले की भाँति कभी नहीं सो पाते थे। एक खंडहर मस्जिद का था और दूसरा मन्दिर का।

टीला इन दोनों खंडहरों को अपने दामन में रखकर इतना प्यारा संगीत सुना रहा था, जैसे कोई माँ अपने दिल के टुकड़े को, फूल सी गोदी और बाहुओं में कसकर, उसके ओठ और आँखों में अमर संगीत का स्पन्दन भर देती है।

इसलिए दोनों खंडहर जग रहे थे, उसके तमाम ठीकरे जग रहे थे, करौंदे और मकोइचे की झाड़ियों में टीले का गूँजता हुआ संगीत जग रहा था।

शाम ही से रात जवान थी, और यह अपने पिछले पहर में शर्मा-कर दूल्हन बन गई थी। और इस समय मन्दिर के खंडहर में, एक ऊँची जगह पर घी का चिराग़ जल रहा था, जिसकी लौ को एक

चौबीस वर्ष का युवक अपलक देख रहा था। उसके हाथ अनन्य श्रद्धा में जुड़े थे, घुघराले बाल अपूर्व उद्विग्नता में बिखरे थे। उसके पैर संसार के अन्य देवी-देवताओं से उदासीन होकर किसी अदृश्य के सामने स्थिर थे। उसकी भौहें चुप थीं और पतले, सूखे हुए ओंठ धीरे-धीरे कँप रहे थे।

जैसे वह खंडहर से कोई वरदान माँग रहा था, जैसे वह अपने संस्कार और विश्वास के पंख से आसमान से भी ऊपर किसी ऊँची जगह को छू देना चाहता था।

युवक जिस समय अपनी प्रार्थना के साथ नीचे ठीकरों पर फैलकर, सिर टेकने जा रहा था, उस समय उसे लगा, जैसे ऊँघता हुआ आसमान क्षण भर के लिए नीचे झुक गया हो, हवा अलसाई हुई अगड़ाई लेने लगी हो। और युवक के कानों में यूँ एक सहमी हुई आवाज सुनाई देने लगी—'यह कौन···?

आदमी,·····नहीं··नहीं···शैतान···लेकिन आह···मर गई···। फिर कौन ?···नहीं···।'

युवक की मानसिक तन्द्रा झनझना कर टूट गई और उसने उठकर पीछे देखा, एक नौजवान लड़की, हाथों में फूल और प्रसाद लिए उसके सामने खड़ी थी। युवक को लगा मानो वह कोई स्वप्न देख रहा है कि नीले आकाश से कोई उज्ज्वल तारा टूटकर उसके सामने धरती पर गिर पड़ा है और इस प्रकाश के ऊँचे सिंहासन पर, चाँदनी से बनी हुई कोई परी खड़ी है, जो सहमे हुए गोविन्द से कह रही है—डरो नहीं, मैं भूत शैतान नहीं, सहमो नहीं; मैं कोई हैवान नहीं····

गोविन्द ने घूमकर जलते हुए चिराग़ को देखा और बढ़कर उसकी लौ में अपनी एक उँगली छुआ दी। उसने चीखकर अपना हाथ खींच लिया और इस क्षणिक पीड़ा से उसका सन्देह मिट गया। उसे सिद्ध हो गया कि वह कोई स्वप्न नहीं देख रहा है—सब सत्य देख रहा है।

लड़की निःसंकोच आगे बढ़कर दीपक के प्रकाश में अपने फूल और सिन्नी रखने लगी। युवक चुपचाप उसे देखता गया, पहचानता गया--जगतपुरी बनावट, गंभीर, लम्बी काली-काली आँखें, मूक चितवन, शर्माए हुए पतले पतले ओंठ, लम्बी सीधी नाक। जगतपुरी गेहुँआँ रंग, जगतपुरी दर्ज़ी का सिला हुआ ढीला शिलवार, ऊपर वही लम्बी गोटेदार चुस्त कुर्ती और सफेद ओढ़नी, सहमे हुए पतले पतले कान, जिनमें झूलती हुई चाँदी की दो दो बालियाँ। उसके जंगली गुलाब की भाँति कोमल, छोटे छोटे नंगे पाँव; जो जगतपुरी शेख़ लड़कियों की पक्की पहचान थी।

युवक असीम जिज्ञासा और कौतूहल से, भीतर ही भीतर काँपने लगा। लड़की चुपचाप नीचे झुकी हुई, ठीकरों पर फूल बिखेर रही थी। युवक ने हिम्मत से चिराग़ की लौ तेज़ की और संकोच से पूछा—"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप कौन हैं?"

लड़की अपनी ओढ़नी सम्हालती हुई युवक के सामने खड़ी हो गई और अत्यन्त स्वाभाविकता से उत्तर दिया—"मैं जगतपुर, शेख़ पट्टी की रहने वाली हूँ।" "शेख़ पट्टी की!" युवक ने धीरे से दुहराया और फिर हिचकते हुए पूछा—"और आप यहाँ क्यों आई हैं?"

"क्या करिएगा, पूछ कर?"

"कुछ नहीं करूँगा, वैसे ही जानना चाहता था!"

"बात यह है कि मैं टीले के जिन्नात बाबा को शराब चढ़ाकर यहाँ भगवान को फूल और प्रसाद चढ़ाने आई हूँ।"

"लेकिन आप··मुसलमान···हैं···न!" युवक ने हिचकिचाते हुए कहा।

"जी··हाँ···मैं शेख हूँ··क्यों?" लड़की ने भोले स्वर में पूछा।

"आप शेख़ हैं···" युवक ने बुदबुदाते हुए कहा···"और यह मन्दिर··और भगवान!···मस्जिद का खंडहर इसके बगल में है न!"

युवक को असीम आश्चर्य हो रहा था। और वह अशान्त होने लगा। लड़की आराम से चुप थी, और उसके ओंठों से रोशनी फैल रही थी। युवक उसे अपलक देख रहा था। लड़की बार-बार जलते हुए चिराग़ को देख रही थी और एक बार उसकी आँखें युवक की परेशान आँखों से मिल गईं। उसे लगा मानो युवक के ओंठ जल रहे थे, उसकी आँखें कितने सवाल करना चाहती थीं।

"आप को ताज्जुब किस बात का हो रहा है?" लड़की ने पूछा।

"सब बातों पर ताज्जुब हो रहा है; यह सूनी रात, यह भेंट!·· टीले पर अकेली आकर शराब!··आप मुसलमान, यह मन्दिर!·· यह भगवान··यह पूजा···मुझे तो ख़ुद अपने पर ताज्जुब हो रहा है, यह सब क्या है!" युवक ने एक साँस में कह दिया।

लड़की के ओंठों पर और रोशनी फैल गई और उसने बाहर अंधेरे को देखते हुए कहा, "बात यह है कि मेरी दादी और अम्मी, दोनो ने बताया है कि यह मन्दिर और मस्जिद अकबर बादशाह का बनवाया है और उन लोगों का यह यक़ीन है कि ये मन्दिर और मस्जिद एक ऐसे वक़्त की तवारीख़ के पन्ने हैं जब मुसलमान लड़कियाँ और मर्द मदिरों में भगवान की पूजा करने आते थे और हिन्दुओं के लिये, मस्जिद भी उसी शक्ल में पाक समझा जाता था। और जब एक दूसरे की मुराद, आरज़ू अपने अपने मन्दिर और मस्जिद में इबादत करने से नहीं पूरी होती थी; तब ऐसी सूरत में, ख़ास तौर से मुसलमान मन्दिर में इबादत करने जाता था और हिन्दू मस्जिद में!"

"तो ..आप यहाँ रोज़ आती हैं।"युवक ने बीच ही में पूछा

"नहीं आज आख़ीरवाँ दिन था।"

"आख़ीरवाँ दिन!" युवक को असीम जिज्ञासा हो रही थी।

"जी,···हाँ जिन्नात बाबा को सात बोतल शराब चढ़ा चुकी और मन्दिर में भी....."

"मंदिर में भी पूजा समाप्त हो गई ?" युवक ने फिर बीच ही में टोका।

"जी हाँ।"

लड़की ने धीरे से कहकर, एक बार फिर बिखरे हुए फूलों और चिराग़ के नज़दीक चढ़ाए हुए प्रसाद को देखा और फिर उसके पैर बाहर बढ़ने लगे। युवक ने घबड़ाकर पूछा, "तो आप जा रहीं! ......मुझसे तो आपने कुछ नहीं पूछा !"

लड़की के पतले ओंठ और मासूम आखें शर्म से कँप गईं—ठीक खंडहर में जलते हुए चिराग़ की भाँति, जो रह रह के अजीब अदा से कँप जाता था।

"आप भी तो शायद जगतपुर के रहने वाले हैं।" लड़की ने पूछा।

"जी हाँ, मैं भी जगतपुर की बड़ी पट्टी में रहता हूँ।"

"आप का नाम ?"

"मेरा नाम गोबिन्द है।"

लड़की ख़ामोशी से मुड़ी, और जैसे ही क़दम बढ़ाने वाली थी, गोबिन्द ने परेशान होकर कहा—" ज़रा..रुकिए, मैं आप से सिर्फ़ एक बात और पूछना चाहता हूँ, और अगर आप उसे बता देती हैं तो मैं हमेशा जगतपुर में रह कर आप का शुक्रगुज़ार रहूँगा !"

"जल्दी पूछिए, देखिए आसमान में तारे कम होते जा रहे हैं।"

"कम होने दीजिए।" युवक ने कहा, "वह पूरब की ओर देखिए कितना बड़ा तारा निकल रहा है।"

"वह सुबह का तारा है,......जल्दी पूछिए...बात क्या है?"

"आप की आरज़ू और मुराद क्या है ?" युवक ने पूछा।

लड़की कुछ घबरा सी गई और वह गंभीरता से नीचे देखने लगी; मानो वह खंडहर के ठीकरों से कह रही थी कि ऐ प्यारे ठीकरो ! धरती के मासूम लाल, सदियों से इन्सान की ख़ामोश पुकार सुनने

वालो, अकबर की फुसफुसाहट में बसी हुई खुशबू को सूघने वालो, मेरी आरज़ू और मुराद को इस युवक से कह दो।

युवक लड़की को सहमी हुई आँखों को देख रहा था और लड़की कँपते हुए चिराग़ की लौ को। क्षण भर के बाद लड़की ने युवक को देखते हुए कहा—

"इस मन्दिर की क़सम, मेरी आरज़ू को किसी से कहिएगा नहीं... बात यह है कि इधर कुछ वर्षों से मेरी खेती बहुत गिर गई है। बीघे में दो मन भी नहीं पैदा हो रहे हैं। और इधर सब मुसीबतों के अलावा, मेरी बड़ी बहन ज़ैनी को मोतियाबिन्द हो गया है। मैं मन्दिर में भगवान के सामने इस आरज़ू को लेकर पूजा करने आती रही हूँ कि इस साल मेरे हर बीघे से कम से कम आठ-आठ मन अनाज पैदा हो, क्योंकि बाजी को, आँखों के अस्पाताल में ले जाना है, किसी तरह उसकी आँखें अच्छी करानी है, भगवान...यह मन्दिर का खंडहर, उसकी आँखों में रोशनी दे।"

"कितना प्यारा दिल है, आपका," युवक ने स्वाभाविकता से कहा, "इसमें किसी से कुछ कहने के लिए रक्खा ही क्या है, यह कितनी पाक आरज़ू है!"

युवक अनजान में एक क़दम लड़की की ओर बढ़ गया। लड़की उसे देख रही थी।

"लेकिन और भी तो सुनिए", लड़की ने भोले स्वर में कहा, "जगत पुर में एक मेरा बहुत बड़ा दुश्मन है, वह दिन रात मेरे पीछे पड़ा रहता है। मैंने टीले के जिन्नात बाबा को इसीलिए पूजा है कि मेरे दुश्मन की मौत हो जाय, उससे मेरा पीछा छुट जाय!"

"वह आपका दुश्मन कौन है?"

"वह दुश्मन है, राजकुमार विजय; राजा साहब का लड़का।"

लड़की ने बाहर आसमान में डूबते हुए सितारों को देखा और धीरे से कहा; "रात कम है, अब मैं घर जा रही हूँ।"

"हाँ, किस पट्टी में आपका घर है?" युवक ने याद करते हुए पूछा।

"बताया न, शेख पट्टी में।"

"और आपका नाम?"

"मेरा नाम ज़ैनब है!"

"ज़ैनब!"..युवक इस नाम को धीरे-धीरे दुहराने लगा, और लड़की के पाँव खंडहर के उत्तरी दरवाजे की ओर बढ़ने लगे!

ठीक इसी समय, बाहर पूरब की ओर से टार्च की तेज रोशनी आई और क्षण भर में, खंडहर का जलता हुआ चिराग़ अपने समस्त प्रकाश के साथ उस बहकर आते हुए प्रकाश में लुप्त हो गया। लड़की सहम कर धीरे से चीख उठी और युवक दौड़ कर, उत्तरी दरवाजे की ओर उसके समीप खड़ा होगया। उसी क्षण बन्दूक़ का भयानक फायर हुआ और मिट्टी का चिराग़ लक्ष्य में पड़कर न जाने कहाँ उड़ गया, सम्भवतः चूर-चूर होकर खंडहर का ठीकरा बन गया।

टार्च की तीखी रोशनी, नज़दीक आआकर खंडहर में, खंडहर के आसपास बहुत तेज़ी से दौड़ रही थी।

गोविन्द, सहमी हुई ज़ैनब को हाथों का सहारा दिए हुए खड़ा था, और ज़ैनब न चाहते हुए भी गोविन्द से चिपकती जा रही थी। उसके पैर कँप रहे थे, उसकी साँसे तेज़ चल रही थीं। सीने का उभार बार बार बढ़ का ज़ैनब को कमज़ोर बना रहा था। वह गोविन्द की बाहुओं के सहारे खड़ी होकर बाहर अंधेरे और रोशनी में कुछ देख रही थी। उसी समय गोविन्द ने ज़ैनब के सीने पर हाथ रखकर धीरे से कहा, "घबड़ाओ नहीं!"

ज़ैनब अजीब डर से गोविन्द से लिपट कर उसके जलते हुए मुख पर अपना हाथ रख दिया; "चुप रहो..!"

सहसा दौड़ती हुई टार्च की रोशनी आपस में लिपटे हुए गोविन्द और ज़ैनब पर टिक गई। ज़ैनब और गोविन्द की आखें, सतत् आती

हुई तीखी रोशनी में मुद नहीं रही थीं। वे दोनों सहमे हुए उस रोशनी को देख रहे थे और टार्च वाला उन दोनो को। धीरे-धीरे ज़ैनब के पैरों में सख़्ती आ गई और उसकी आखें रोशनी से जल कर फूटने लगीं। और ज़ैनब, गोविन्द को छोड़ अकेले उस प्रकाश को चीरती हुई आगे बढ़ने लगी। उसकी ओढ़नी सर से खिसक कर कंधे पर आ गई थी, और उसका एक छोर नीचे ज़मीन पर खिंचता जा रहा था, मानों वह सहमे हुए गोविन्द के लिए साहस का पांवड़ा था जिस पर चले आने के लिए ज़ैनब अपनी ख़ामोशी में कह रही थीं।

गोविन्द भी प्रकाश को चीरता हुआ आगे बढ़ने लगा, ठीक उसी समय एक भयानक अट्टहास के साथ रोशनी ग़ायब हो गई और एक खूँख़ार हँसी धीरे-धीरे दूर हो गई। मस्जिद के खंडहर में उल्लुओं के जोड़े किचकिचा रहे थे। आसमान कराह कर ऊपर उठ गया। धरती और वेसुध हो गई।

२

किसी समय में जगतपुर बहुत बड़ा शहर था—पुराना शहर। यहाँ अफ़ीम की कई कोठियाँ थी, छपाई के कई कारख़ाने थे। बहुत बड़े पैमाने पर नील की खेती होती थी। चारों ओर पक्की सड़कें फूटी थीं, रोनी पर बहुत सुन्दर पुल बँधा था अट्ठारह सै सत्तावन के ग़दर में इसने दिल खोल कर काम किया था। विद्रोहियों का, एक तरह से बहुत बड़ा आश्रय दाता था। यहाँ की जनता ने पाँच अँग्रेज़ अफ़सरों को मार डाला था। लेकिन, कहा जाता है कि हिम्मत सिंह, एक बहुत मामूली ज़मीदार से यह विद्रोह न देखा गया। वे रातों रात, पैदल लखनऊ जाकर, इसकी सूचना सरकार को दे दी थी, फिर क्या था, इस ख़ूबसूरत शहर को मिट्टी में मिलाने के लिए सात तोपें लगाई गई थीं। तमाम नवजावनों को जंगलों में डालकर शिकार खेला गया था। सारी अफ़ीम की कोठियाँ जड़ से उड़ा दी गई थीं, छपाई के कारख़ाने नष्ट कर दिए गए। सब कारीगरों के हाथ काट लिए गए। रोनी के पुल को उड़ा दिया गया। नील की खेती तथा व्यवसाय अवैध घोषित कर दिया गया।

फिर धीरे-धीरे जगतपुर एक गाँव की तरह हो गया; यद्यपि आबादी को दृष्टि से उसे कस्वा कहना ठीक था।

अब इसमें हिन्दू और मुसलमान दो जाति के लोग थे। मुसलमानों में शेख़ घराने, अपेत्ताकृति अच्छी हालत में थे। गदर के बाद से ये लुटे हुए वराने खेती करते थे। वरना किसी समय में इन घरानों में मुख्य व्यवसाय कपड़े की कारीगरी और छापे का कारोवार था। इन शेख़ घरानों में तो औरतें बढ़िया जामदानी की कारीगरी मशहूर थी ज़ैनब ऐसे ही घरानों की, खास शेख़ पट्टी की सोलह साल की ख़ूबसूरत

शहज़ादी थी। ये दो बहनें थीं। बड़ी बहन का नाम ज़ैनी था। यह अब अंधी थी, जन्माध नहीं पर सल्मे सितारे के काम में, सारे जगतपुर में अकेली थी और अगर इसकी आँखों में रोशनी होती तो शायद खूबसूरती में भी यह अकेली होती।

हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से अधिक थी। इनकी तीन पट्टियाँ थीं—बड़ी पट्टी, छोटी पट्टी, नीची पट्टी। बड़ी पट्टी में गोविन्द का घर था, यह ब्रह्मण था। इसके घर में इसके पिता, एक विधवा बहन के अतिरिक्त और कोई न था।

चोटी पट्टी में कुर्मी और अहीर थे। इनका मुख्य काम खेती और गो-पालन था।

नीची पट्टी में राजा शिवप्रसाद सिंह की कोट थी तथा उन्हीं के नौकर चाकर, पीलवानों, घुड़सवारों, चापलूसों आदि के घर थे।

राजा शिवप्रसाद सिंह का वंश हिम्मत सिंह की चौथी पुस्त थी गदर के बाद ही सरकार ने हिम्मतसिंह को यह इनाम दिया था कि ठाकुर साहब चौवीस घंटे में जितनी दूरी तक पैदल चले जायं उतनी वृत में उनका राज्य होगा। इस तरह से बीस कोस का राज्य, हिम्मत सिंह को मिला था, परन्तु इसके बाद वे एक ही सप्ताह में पागल होकर मर गए थे।

चौथी पुस्त में, राजा शिवप्रसाद दो भाई थे। छोटे लालसाहब इनसे अलग रहते थे। इनके केवल एक लड़की, इन्द्रा थी। राजा शिवप्रसाद के एक लड़की और एक लड़का था। इसके बाद कोई सन्तान न थी। लड़की, लड़के से छोटी थी। लड़की वैसे तो राजकुमारी के नाम से पुकारी जाती थी, परन्तु उसका नाम था—तारामती। और लड़के (राजकुमार) का नाम विजयबहादुर—राणाप्रताप सिंह था।

उस रात को, ज़ैनब और गोविन्द को टार्च की रोशनी में देखने वाले, जलते हुए दीपक को बन्दूक से उड़ाने वाले, रात की रा

रोमानी प्रेम में जागने वाले, यही बहादुर, विजय, राणा, प्रताप आदि नामों को उज्वल करने वाले राजकुमार—विजय ही थे। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से तीन वर्षों में बी० ए० प्रथम वर्ष किया था। बी० ए० द्वितीय वर्ष में कई लड़कियों से प्रेम-कांड के सिलसिले में निकाल दिए गए थे। तभी से ये जगतपुर में राज्य कर रहे थे।

इन्द्रा और राजकुमारी तारामती प्रायः समवयस्क थीं। दोनों इलाहाबाद युनिवर्सिटी में शिक्षा पा रही थीं। तारामती का बी० ए० द्वितीय वर्ष था और इन्द्रा एम० ए० प्रथम वर्ष, आर्थ-शास्त्र में प्रवेश पाने वाले थी।

मई का महीना था और उस समय इन्द्रा जगतपुर में ही थी परन्तु तारामती नैनीताल थी।

* * *

जगतपुर का मुख्य व्यवसाय खेती था। भदई, रबी, और अगहनी तीन इसके ऐसे साध्य बिन्दु थे जिससे जगतपुर, चक्र की भाँति वर्षों से घूमता आ रहा था। प्रति वर्ष हजारों मन ग़ल्ले की बिक्री होती थी। इसी पूंजी के आधार पर जगतपुर अपूर्व धूम से अन्नदेवता की पूजा करता था। हिन्दू श्रीभागवत, कथादि सुनते थे, मुसलमान हदीस सुनते थे, फकीर खिलाते थे और दोनों मिलकर राजा की पूजा करते थे।

इसी धन से शेख़ लड़कियों का निकाह होता था, मियाँ भाइयों का स्वागत होता था, बच्चों की शानदार मुसलमानी और रोज़े रक्खे जाते थे, ईद बक़रीद और शबबरात में ख़ुशियाँ मनाई जाती थी। दुख्तर और राहत जानों को अगेला, वालियाँ, तबक़ नास्ते बुन्दे, झूमड़, और सबुजे बनते थे। नफीस पैजामे, ग़रारे, शिलवार बनते थे। रेशमी, आबेरवाँ की ओढ़नी और दुपट्टे ख़रीदे जाते थे।

इसी आधार से; कुर्मी पट्ठे, अहीर बाँके, सैलानी ब्राह्मण दिल खोलकर बड़ी-बड़ी शादियाँ करते थे; बड़ी-बड़ी श्राद्ध और तीर्थादि

करते थे। जन्म और मृत्यु के समय दान देते थे। छोटी-छोटी बातों पर तहसील और बेंच से लेकर हाईकोर्ट तक मुदक़मे लड़ते थे। नन्हें-मुन्नों को सोने की गुल्लियाँ, करधने और माले बनते थे। खेतों में गा-गाकर काम करती हुई, सावन में कजरी और •तीज झूलती हुई, फागुन में होरी और झमार गाती हुई, हंसती हुई, खेलती हुई, रोती हुई, सखियों से विदा होती हुई, जन्म के साथियों से दूर बिछुड़ती हुई, दूल्हन बन शर्मा कर गौने जाती हुई,—भोली वहनों, मासूम लड़कियों, फूल सी कुमारियों, शँका और लाज से सिमटी हुई अल्हड़ दूल्हनों के पैर के नाख़ून से लेकर सर तक—बिछिया, पायल, कड़े, करधन, हार, हवेल, बिरिया, कनफूल, वालियाँ, सबुजे, चन्दा और बेंदी वनते थे। कीमती साड़ियाँ, घाँघरे, बारहगज़ी लहंगे, छत्तीस बिन्दी फेरन, मोटे, रेशमी, दुपट्टे और चादरें बनती थीं—वन्दी, कुर्त्ती, फुल्वे, गोटे और चोलियाँ बनती थीं। नीची पट्टी के राजमहल में इसी आधार पर न जाने कितनीं असंख्या चीज़ें बनती थीं, अदृश्य खर्चे होते थे। कितना लुटाया जाता था, कितना क्या-क्या होता था, क्या-क्या किया जाता था!

इस तरह से जगतपुर की माँ धरती थी, मिट्टी ही उनके प्राण थे। बैल और गाय उनके बाहु-बल थे। तपता हुआ सूर्य और शीतल चाँद उनके दो वरदान थे। काले बादल और मीठी हवा, पानी चौदह रत्नों मे से तीन रत्नों के समान थे। असंख्य देवी-देवताओं की पूजा उनका—विश्वास था। देवता के प्रति कोई अशिष्ठता, भूल-चूक उनका सबसे बड़ा क्षोभ था; उनकी कुदृष्टि जगतपुर के लिए सबसे बड़ा प्रलय था।

३

वैशाख के अन्तिम दिन थे। इस वर्ष कुसमय वर्षा हो जाने के कारण जगतपुर की दँवाई पिछड़कर हो रही थी। गाँव-भर के खलिहान तीन विभिन्न स्थानों पर थे। मुसलमानों का खलिहान गाँव के पश्चिम था—एक दूर तक फैले हुए टीले से सटा हुआ। यही टीला जगतपुर का प्राचीन रूप था, पहले का जगतपुर इसी टीले की धरती के गर्भ में सो रहा था। इसके एक सिरे पर यह खलिहान था। बीच में झाड़ियों से पटे हुए वे दो मन्दिर और मस्जिद के खंडहर थे, तथा दूसरे सिरे पर बड़ी पट्टी का खलिहान पड़ता था।

यह खलिहान नीम और आम के घने तथा ऊँचे पेड़ों के नीचे पड़ता था, मुसलमानों के खलिहान के पास केवल एक बहुत पुराना, विस्तृत तथा घना बरगद का वृक्ष था, जिसपर सैकड़ों गिलहरियाँ पक्षिओं के घोंसले, तथा मधुमक्खियों के कितने छत्ते मिलते थे।

छोटी पट्टी का खलिहान सबसे बड़ा, सबसे धनी, सबसे सुन्दर था। यह गाँव के पूर्वी और दक्खिनी कोने पर पड़ता था। इसका एक सिरा पूरब के परास, करौंदे, कटाय, जामुन, बैर के ख़ूबसूरत जंगल को छू रहा था और दूसरे किनारे पर आम कटहल की घनी बाग थी जिसके पार्श्व में रोनी नदी बल खाती हुई बह रही थी। इसी आम की बाग में जगतपुर के झूले पड़ते थे। जगंल में काली का थान थी तथा पश्चिम ओर खंडहरो के पास ही जगतपुर का ऊँचा डीह पड़ता था। सबसे पहले, दँवाई के पूर्व ही, तीनो खलिहानों से इसी डीह को अनाज और जौनार भेंट किया जाता था।

इस वर्ष डीह की पूजा समाप्त हो चुकी थी और धूम से दँवाई हो रही थी। मटर और गोजई की दँवाई के समय ऊँची राग से चैती

अलापी जा रही थी, परन्तु जिस समय इनकी वोसाई हुई, किसानों को राग भूल गई, माथा घूम उठा। सब भूसा ही भूसा था अनाज बहुत ही कम था। खलिहानों में सनसनी मच गई, गाँव में फुसफुसाहट होने लगी। लेकिन अभी गेहूँ, जौ, अरहर आदि का पूरा भरोसा था। फिर दँवाई होने लागी, देखरेख, पूजापाठ होने लगा, मनौतियाँ होने लगीं। विरहा और झमार गाए जाने लगे।

और फिर बड़े उत्साह से अनाज की वोसाई आरम्भ हुई। मस्ती से बहती हुए पछुआ हवा में, कसकर आँचल बाँधे, बलखाए हुए हाथों में भरे हुए पलरों को सम्हाले—कुछ झुकी हुई, कुछ तिरछी कमर पर बल देकर, गाती हुई अल्हड़ औरतों की पंक्ति; लगता था कि ये स्त्रियाँ अनाज नहीं साफ कर रही थीं वरन नृत्य के किसी विशेष मुद्रा में खड़ी थीं।

परन्तु दोपहर होते-होते एक एक करके औरतों का गीत रुक गया। जगतपुर वालों के नीचे से धरती खिसक गई। सबके सिर घूमने लगे। जगतपुर की धरती, का अनाज मारा हुआ था सब का सब भूसा ही था। खलिहानों में किसान सर थाम कर क्षण भर के लिए चुप हो गए, फिर एक सनसनी फैली कि अनाज मारा गया, कोई हवा चल गई, डीह या शंकर भगवान, काली माई का कोप हो गया।

जगतपुर में कुहराम मच गया, बड़ी पट्टी और छोटी पट्टी में चूल्हे नहीं जले। मुसलमानो ने उपवास किया, अल्लाह-पाक की मेहरबानी मागने लगे। क्षणभर में हँसते-खेलते हुए जगतपुर पर एक अपूर्व मृत्यु का सन्नाटा छा गया। और ऐसा लगता था कि कोई भयानक सूरत जगतपुर से पूछ रहा हो—'बोलो, अब तुम क्या करोगे? मरोगे या जी सकोगे?

* * *

काली रात का दूसरा पहर था। राजा शिवप्रसाद सिंह की कोट में एक बहुत बड़ी सभा लगी हुई थी। राजा साहब अपनी बारहदरी में

ऊँचे आसन पर बैठे थे, उनके निकट ही राजकुमार विजय प्रतापसिंह बैठे थे। इनसे दूर गाँव के प्रमुख तथा पंचादि चिन्तित मुद्रा में मौन बैठे थे, बारहदरी से बाहर जगतपुर मौन बैठा था। बड़ी बड़ीबातें, बड़े बड़े तर्क चल रहे थे कि क्यों ऐसा हुआ? अनाज कहाँ गया? खेती तो कोई खराब नहीं थी। और सालों की ही तो तरह समय पर कटाई हुई थी, खेत में भूरपूर दाने दिखाई दे रहे थे, गेहूँ की बालियाँ अनाज से झुकी हुई थीं। फिर क्या हुआ? अनाज कहाँ गया? जगतपुर पर ऐसा अपूर्व कोप क्यों हुआ? उत्तर में कोई खेती-सम्बन्धी त्रुटि पकड़ में नहीं आती थी, फलतः सभा किसी भीं निष्कर्ष पर नहीं आरही थी। सब के मन में एक ही भावना चल रही थी कि हो न हो यह किसी अदृश्य का ही कोप है।

सहसा राजकुमार विजय बहादुर सिंह अकड़कर, सभा के सामने खड़े हो गए और अनन्य विश्वास से कहने लगे—"जगतपुर के रहने वालो! मैं अभी तक चुप था और सभा अबतक इस आश्चर्यजनक अकाल के कारण का पता लगा रही थी; लेकिन किसी को पता न लग सका। न लग सकता है! इसका मूल कारण मुझे मालुम है।" इतना सुनते ही सभा से सम्मिलित आवाज़ आने लगी—'बताइए, जल्दीं बताइए।'

विजय ने एक अपूर्व साहस तथा विश्वास के साथ लोगों को चुप कराते हुए कहा—"चुप रहो! अभी यह अकाल पड़ा है पर बहुत ही जल्द जगतपुर पर महामारी भी पड़ेगी, और एक दिन जगतपुर जगतपुर नहीं रह जायगा।" विजय की वाणी में प्रतिहिंसा स्पष्ट थी, सभा में एक खलबली मच गई, लोगों का स्वर रोकने पर भी ऊँचा ही उठता जा रहा था। इसी बीच में विजय ने सब को चुप करते हुए कहा, "चुप रहो, अगर कारण सुनने की हिम्मत हो तो बैठो नहीं तो कहीं चले जाओ।"

सभा में मृत्यु का सन्नाटा छा गया। विजय सिंह अपनी

गंभीरता में कहने लगे—"ऐसे जगतपुर को धँस जाना चाहिए, जहाँ के देव-मन्दिर में व्यभिचार होता है, हमारे टीले पर, मन्दिर का खंडहर इश्क का अड्डा बनाया जा रहा है।" सभा आश्चर्य चकित रह गई, लोग सशंकित आपस में फुसफुसाने लगे। लोगों की आँखों में प्रतिशोध का खून टपकने लगा और विजय कहता जाता था—"मैं यह बात आँखों देखी कह रहा हूँ—मैंने उन्हे पकड़ा है—मैंने उन्हे रोका है नहीं तो अबतक शिव का तीसरा नेत्र खुल गया होता, जगतपुर भस्म हो गया होता, अकारण अकाल पड़ना तो एक साधारण घटना हुई है।" सभा से अब चुप नहीं रहा गया, कितने लोग खड़े होकर चिल्लाने लगे—"वह पापी कौन है ?"

"वह व्यभिचारी, चन्डाल कौन है।"

"हम उन्ही की बलि देंगे।"

"हम देवता को प्रसन्न करेंगे।"

"वे कौन हैं ? कहाँ हैं ?"

गोविन्द अभी तक इस पागल सभा में मौन बैठा था, लेकिन जनता की इस हिसंक फुफकार से उसका शून्य मस्तक एकाएक झन-झना उठा। उसे लगा कि कोई उसे असंख्य गर्म सलाखों से जलाने आ रहा था। उसके सामने की पृथ्वी घूम उठी। उसने खड़ा होकर एक बार, एक दृष्टि से सम्पूर्ण सभा को—स्त्री, मर्द, बच्चे, लड़कियों को भयभीत होकर देखा और अपूर्व वेग से कोट के बाहर दौड़ने लगा।

क्षणभर में शेखपट्टी पहुँचा, पागलों की भाँति सीधे ज़ैनब के घर में घुस गया और आँगन में खड़ा होकर जोर जोर से पुकारने लगा—

'ज़ैनब ! ज़ैनब !!'

तीसरी पुकार में ज़ैनव की बेवा माँ, घबराई हुई बिना कोई उत्तर दिए कमरे के बाहर निकल आई। गोविन्द ने उसी स्वर में पूछा—"ज़ैनब कहा है ?"

"क्या बात है बेटा ?" अम्मी ने शंका भरी वाणी से कहा।

"मुझे जल्दी बताइए, ज़ैनब कहाँ है ?" गोविन्द की वाणी में तीव्रता थी।

"वह गाँव की सभा में गई थी," शायद ज़ैनी अपने कमरे से कह रही थी, "और अभी अभी आई थी।"

"अभी आई थी !" गोविन्द ने इसे दुहराकर, ज़ैनब को, उसके कमरे में ढूँढ़ा, पलँग सूना था। वह उसी वेग से, बाहर दौड़ गया और अत्यन्त वेग से दौड़ता जा रहा था, लगता था कि विजय अपने आदमियों को लेकर उसका पीछा कर रहा था। गोविन्द एक क्षण में फिर मन्दिर और मस्जिद के खंडहरों में गया। दोनो जगते हुए खंडहर जैसे कह रहे थे—'ज़ैनब यहाँ नहीं आई थी।' वह उसी वेग से पलास, मकोइचे और करौंदे की झाड़ियों को पार करता हुआ ऊँचे टीले पर खड़ा होकर इधर उधर ज़ैनब को देखने लगा और उसकी पुकार सूने में न जाने कहाँ टकराकर बार-बार लौट आती थी। वह अब पागलों की भाँति ऊँचे टीले के नीचे उतार से लड़खड़ाता हुआ रोनी नदी की ओर दौड़ने लगा। वह अपनी तीव्र वाणी से ज़ैनब को पुकारता था। और दौड़ रहा था। क्षणभर के बाद उसने देखा कि कोई औरत छाया की तरह दूर-आगे बढ़ रही थी। गोविन्द ने अपना वेग और अधिक किया और उसने स्पष्ट पहचाना कि ज़ैनब कहीं भागी जा रही है। गोविन्द ने एक ऊँची जगह पर खड़ा होकर आवाज़ लगाई—

"ज़ैनब !"

"ओ ! ज़ैनब !!"

ज़ैनब ने पीछे मुड़कर देखा तक भी नहीं। वह भागती जा रही थी गोविन्द थक गया था, फिर भी सारी शक्ति बटोरकर वह पीछा करता जा रहा था और तीव्र स्वर से पुकारता जा रहा था—

'ज़ैनब !

ज़ैनब !!

कहाँ जाती हो ! ज़ैनब !!

ओ ज़ैनब !'

ज़ैनब इतनी तेज़ी से भागरही थी कि लगता था कि जीवन अपने भयानक रूप में उसे डराने आ रहा था और गोविन्द इतनी तेज़ी से उसके पीछे दौड़ रहा था कि मानो मृत्यु उसका पीछा कर रही थी। इसलिए ज़ैनब की गति में शंका अधिक थी तीव्रता कम; और गोविन्द की गति में भय से भी अधिक तीव्रता थी। गोविन्द अपनी कातर वाणी से पुकारता जा रहा था और अब जैनब के बहुत समीप पहुँच चुका था। उसने स्पष्ट देखा कि ज़ैनब के सर पर भली भाँति सम्हाली हुई ओढ़नी, उस समय उसकी काँपती हुई बाहुओं पर झूल रही थी, उसके काले लम्बे बाल हवा में उड़रहे थे।

समीप पहुँच कर गोविन्द ने असीम विश्वास से पुकार कर कहा —"ज़ैनब ! कहाँ भागती जारही हो ?"

"मत पूछो," वह अब भी दौड़ती जा रही थी। और हाँफ रही थी। तब तक गोविन्द ने बढ़कर ज़ैनब को पकड़ लिया। गोविन्द की बाहुओं में उसी क्षण उसका खुला हुआ सर लटक गया। उसकी आँखे थकी हुई मुँद रही थीं। वह हाँफती हुई कहती जाती थी —" गोविन्द ! मुझे छोड़ दो ; मुझे जाने दो।"

"कहाँ जाओगी ?" गोविन्द ने उसको हिलाते हुए, अपनी काँपती हुई वाणी में पूछा।

"मैं,...मैं...रोनी में डूबने जा रही " ज़ैनब ने अपने सहारे खड़ा होकर कहा," गोविन्द, अब मेरे मरने के अलावा और कोई तरीका नहीं"।

गोविन्द ने ज़ैनब को नीचे पृथ्वी पर बिठा दिया और स्वयं उसे पकड़े हुए बैठ गया। रोनी नदी बिल्कुल पास थी, वह आज सोई हुई सी नहीं लग रही थी। उसकी गति से एक भयानक संगीत आ रहा था। "तुम्हारे डूबने से क्या होगा, ज़ैनब!" गोविन्द ने उसे अपलक देखते हुए पूछा।

"तुम बच जाओगे, तुम ज़िन्दा रह सकोगे" ज़ैनब भागने के लिए गोविन्द से अपना हाथ छुड़ा रही थी और कहती जाती थी—"मैं मर जाऊँगी तब जगतपुर रह जायगा, सब रह जाएँगे।"

"ज़ैनब ! होश में आवो !" गोविन्द ने उसे बैठते हुए कहा—"अगर तुम नहीं रहोगी तो जगतपुर भी नहीं रहेगा, मैं भी नहीं रहूँगा।"

"बेहोशी की बातें तुम कर रहे हो, गोविन्द !" ज़ैनब की वाणी में कटुता थी, "तुम समझते नहीं, मेरे रहने पर तुम्हारा भी रहना मुश्किल हो जायगा, तुम ख़ुश नहीं रह सकोगे," ज़ैनब गंभीरता से गोविन्द को देखती हुई कह रही थी, "जहाँ उस मामूली इत्तफ़ाक़ को यह शक्ल दी जा सकती है वहाँ...तो...।" ज़ैनब का स्वर, इसके आगे क्षीण हो रहा था।

"तो...तब ..क्या ? जो सोच रही हो कह डालो।" गोबिन्द ने ज़ैनव को मज़बूती से पकड़कर कहा।

ज़ैनब चुप थी। वह फटी-फटी आँखों से गोविन्द को देख रही थी, सम्भवतः वह इस प्रयत्न में थी कि जो बात वह अपनी ज़बान से नहीं कहना चाहती थी वह उसकी ख़ामोश आँखे कह दें।

"मेरे सोचने की, उसके अलावा एक और नापाक जगह है।" ज़ैनब की वाणी में एक अजीब पीड़ा थी।

"मैं उसी जगह को तो जानना ही चाहता हूँ " गोविन्द ने कहा।

"पागल हो तुम।" ज़ैनब ने कड़े स्वर में कहा, "क्या करोगे जानकर, मुझे इस अच्छी रोनी नदी में डूब जाने दो !" ज़ैनब पागल हो उठी थी। गोविन्द विह्वल हो उठा, उसकी आखों में करुणा के बादल छा गए।

"मुझे बतादो ज़ैनब, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ।" गोविन्द के स्वर में दीनता थी।

"अजीब पागल तुम भी हो !" ज़ैनब ने बुदबुदाया।

"हाँ, हूँ तो !" गोविन्द ने अपनी दीनता में समर्थन किया।

"अच्छा, सुनो !" ज़ैनब नीचे देखती हुई कहने लगी, "इतना तो तुम जानते ही हो कि विजय मुझे अपना शिकार बनाना चाहता है, बहुत दिनों से वह मेरे पीछे पड़ा है, दिन रात, मैं कहाँ रहती हूँ, कहाँ जाती हूँ, क्या करती हूँ—पता लगाता फिरता है। खुदा की नाखुशी से उस रात को उसने मुझे तुम्हारे साथ देख लिया था। तुम्हे नहीं मालुम, उसने इसके बाद क्या फितरत की थीं"।

"मैं उसी को जानना चाहता हूँ, सब कह डालो"। गोविन्द ने कहा।

"इसके बाद ही उसने मुझसे एक दिन कहा था अगर अब भी तुम मेरी बातों को नहीं मनती हो..तो मैं तुम्हारी और गोविन्द की बदमाशी का ढिढोरा पिटवा दूँगां.....इस पर मैंने अपनी पूरी ताक़त से विजय को एक चाँटा मारा था और बढ़के उसका मुँह मीचकर अपनी अम्मी को ज़ोर से पुकारा था"।

ज़ैनब अब गोविन्द को देखने लगी थी। उसके मुख पर सन्तोष की रेखाएँ खिंच आई थीं और गविन्द के लाल मुख पर प्रतिहिंसा की।

"तब क्या हुआ ?" गोविन्द पूरी बात सुनने को उत्सुक था।

"उसके बाद ही मुझे आज की बात मालूम हो गई थी," ज़ैनब ने कहा, "कि विजय ने मुझे धमकाते हुए कहा था कि—घबड़ाओ नहीं, अगर मुझे जगतपुर की ओर से कोई बहाना मिला तो मैं उसमें तुम्हीं लोगों को जलाऊँगा, तुम लोगों ने हमारे देवता, मन्दिर के प्रति पाप किया है। उसी को आज सभा में यह पूरी शक्ल दी गयी है। मुझे उस बात का इतना यक़ीन नहीं था, हाँ डर ज़रूर था—इसी वजह से मैं ख़ुद छिपकर सभा में गई थी।"

"तो इससे क्या होगा ?" गोविन्द ने गम्भीरता से पूछा।

"कुछ भी नहीं होगा, ज़ैनब ने उठकर कहा, "अगर मैं रोनी में डूब कर मर जाती हूँ...।"

गोविन्द अपनी हँसी को न रोक सका। वह खिलखिलाकर हँसने लगा और ज़ैनब को पकड़कर, रोनी नदी को दिखाते हुए कहने लगा—"यह गहरी नदी तुम्हारे डूबने के लिए नहीं बह रही है, इसमें वे औरतें डूबती हैं—जिनके दिलों में इतना बड़ा नासूर हो जाता है कि जिसकी जलन मिटाने के लिए लाखों मन बहते हुए पानी की आवश्यकता होती है। उन फूल सी भोली कुमारियों को अपने में छिपाने के लिए बह रही है जो समाज के दिए हुए एक पाप के बोझ को लेकर किसी के सामने नहीं आ सकतीं, जो अपनी बेबसी में किसी की लैला, किसी की शीरीं, किसी की रानी, किसी की माँ बनने की लाखों ख्वाहिश, लाखों अरमान, लाखों रँगीले स्वप्नों को अपने में समेटे हुए इसमें डूब जाती हैं और उनके डूबते डूबते, आँखें इतनी रोती हैं कि नदी अपनी धारा पा जाती है। इसी से इसका नाम भी रोनी पड़ा है।"

ज़ैनब और गोविन्द अब एक दूसरे को देखने लगे। ज़ैनब गम्भीर थी, पर गोविन्द के मुखपर उत्साह तथा विश्वास की गुलाबी मुस्कान थी। वह उसे बहुत नज़दीक से अपलक देखता हुआ कहता जाता था कि "यह रोनी नदी उस ज़ैनब के डूबने के लिए नहीं बनी है जो एक कमीने राजकुमार के मुखपर कसकर चाँटा मार सकती है।"

ज़ैनब के खामोश-पतले ओठों के मिलन बिन्दु पर कुछ नच सा गया, फिर भी वह गोविन्द की आँखों को देख रही थी और अब—गोविन्द ज़ैनब के दोनों हाथों को प्यार से दबाने लगा—"ज़ैनब! तुम्हें सोचना चाहिए कि तुम्हारी इस बदनामी के बाद, जगतपुर तुम्हारे बारे में क्या सोचता, एक झूठी बात स्वयं सिद्ध हो जाती। तुम्हारी अम्मी, तुम्हारी बाजी तुम्हारे लिए रो रोकर मर जातीं

और बहिश्त में भी तुम्हारा दिल, तुम्हारे उस दिन के बताए हुए आरज़ू के लिए, जिसके कारण तुम उस दिन खंडहर में पूजा करने गई थी; रोता-बहुत रोता।"

"कुछ हद तक तुम ठीक कह रहे हो," ज़ैनब ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा "लेकिन मुझे डर लगता है यह मामला और बढ़ने पर कहीं फिरक़ेदाराना जंग की शक्ल न ले ले। इसी आग से, जगतपुर को बचाने के लिए ही मैं डूबकर मर जाना चाहती थी जिससे केवल मैं ही बदनाम होकर रह जाती और विजय ख़ुद ख़ामोश हो जाता।"

* * *

ज़ैनब गोविन्द के साथ, रोनी के किनारे किनारे जंगल की ओर बढ़ती जा रही थी। ज़ैनब कहती जाती थी, "कि इस पूरे खड़े किए हुए फसाद की जड़ मैं हूँ और मेरे रहने पर··।"

बीच ही में गोविन्द ने बात काटते हुए कहा—"हाँ, हाँ कह दो कि यह मामला सन् सत्तावन का ग़दर हो जायगा; पगली कहीं की।" गोविन्द ने मुस्कराते हुए कहा, "कुछ नहीं होगा, अगर तुम इस बार विजय को कस कसकर पाँच जूतियाँ मार दो, तो बस सब मामला शान्त··।"

और गोविन्द अट्टहास कर उठा। ज़ैनब ने बढ़कर उसका मुह पकड़ते हुए कहा—"ख़ामोश रहो, सुनो गाँव से अब भी आवाज़ आ रही है—मारो, मारो ! कहाँ है ! कहाँ है !"

दोनों चुपचाप रोनी के किनारे खड़े होकर गाँव में उठते हुए तुमुल स्वर को सुनने लगे। उठते हुए कोलाहल में केवल "मारो, मारो, कहाँ है" आदि के स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहे थे।

उस कोलाहल में ज़ैनब को सुनाई दे रहा था मानों ज़ैनी ज़ोर ज़ोर से पुकार कर कह रही है कि मेरी प्यारी ज़ैनब तू कहाँ छिप गई ?

तू क्यों नहीं घर लौट आती ? तू पाक है, तुझ पर कोई कीचड़ नहीं उछाल सकता। मैं, जगतपुर की सभा में कुरान लेकर, काबे की ओर हाथ उठाकर तेरे लिए क़सम खाऊँगी। तू पाक है ज़ैनब ! तू क्यों नहीं जल्दी घर लौट आती ?··तेरा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता

ज़ैनब गोविन्द से सटी हुई रह रह के सिहर उठती थी; इधर उधर देखने लगती थी। उसी समय ज़ैनब ने गोविन्द की ख़ामोशी भंग करते हुए पूछा—"तुम्हें भी कुछ सुनाई पड़ रहा है ?··सूने में क्या देख रहे हो ?"

गोविन्द ने ज़ैनब को सूनी सूनी आँखों से पल भर देखा फिर एक अपूर्व प्रसन्नता से उसकी आँखों में कुछ घोल उठा और उसने मुस्कराकर ज़ैनब के दोनों हाथों को खींचकर चूम लिया। फिर मुस्कराते हुए कहने लगा—"ज़ैनब, मैं इस ख़ूँख़ार कोलाहल में एक संगीत सुन रहा हूँ, एक ऐसी बाँसुरी की तान सुन रहा हूँ कि जिसके नग़मे को कोई तोड़ नही सकता।" गोविन्द अपनी भावुकता में कहता जाता था, "ज़ैनब, मैं इस समय तमाम बुलबुलों की चहचहाहट सुन रहा हूँ, एक ऐसी सदा सुन रहा हूँ जिससे इन्सान पागल हो जाता है।" "तभी तुम पागल हो रहे हो।" ज़ैनब ने बीच ही में बात काटते हुए कहा; "न जाने कैसे तुम्हें ऐसे वक्त पर ऐसी बातें सूझ रही हैं, सारा गाँव हम लोगों के ख़ून का प्यासा बन गया है। इन मारो, मारो, काटो पीटो के बीच में, न जाने कहाँ से तुम्हें बाँसुरी की तान, शान्ति के नग़मे, और बुलबुलों की चहचहाहट सुनाई दे रही है ?"

गोविन्द, ज़ैनब की एक बात भी नहीं सुन रहा था वह अपनी अपूर्व ज़िम्मेदारी, लड़ाई को कंधे पर लिए अपनी भावनाओं के साथ न जाने कितनी तेज़ी से भागता जा रहा था। भावुकता तो उसके लिये इतनी क्षणिक थी जैसे विधवा के ओठों की मुस्कान। गोविन्द बहुत दूर क्षितिज की ओर देख रहा था; उसी समय ज़ैनब ने गोविन्द को जगाते हुए पूछा—"मेरी बातों से रूठ तो नहीं गए गोविन्द ?"

"तुम्हारी बात ?··तुम कुछ कह रही थी ?" गोविन्द ने पूछा, और ज़ैनब उसके बचपने पर मुस्कराने लगी।

"क्या सोच रहे हो गोविन्द ?" ज़ैनब ने बच्चों की तरह पूछा।

"मैं सोच रहा हूँ कि अभी सुबह हो जायगी, तब ।"

"तब क्या ?" ज़ैनब ने बात काटते हुए कहा, "हम लोग कहीं बाहर चले चलेंगे और क्या . . .।"

"कहाँ, बाहर चली चलोगी ?" गोविन्द ने पूछा

"शाहपुर—अपने मामूँ के गाँव," ज़ैनब ने कहा, "वहाँ हम लोग चाहे जितने दिन छिपकर रह सकते हैं।"

"हम लोग क्यों छिपें, ज़ैनब ? यही मेरी समझ में नहीं आ रहा है," गोविन्द कह रहा था, "छिपते हैं वे लोग जो सचमुच दोषी होते हैं, जिनके दिल इतने काले होते हैं कि प्रकाश में आने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ती।"

"तब ?" ज़ैनब ने पूछा।

"हम लोग गाँव में चलें और सब भाइयों से सच्ची बातें कह डालें।

"इस मारकाट के आगे तुम्हें सुनने को कोई तैयार भी तो हो ?"

ज़ैनब ने कहा, "ऐसी हालत में हम लोगों का गाँव में चलना ठीक नहीं है, हाँ एक बात की जाय—मन्दिर के खंडहर को इस बना-बटी बल्वे का साक्षी माना जाय और विजय से गंगा उठवायी जाय।"

"तो इससे क्या होगा ?" गोबिन्द ने गंभीरता से पूछा ।

"मन्दिर के देवता हम लोगों की ओर से बोलेंगे।"

"मन्दिर में देवता नहीं होते ज़ैनब !" गोविन्द ने बात काटते हुए कहा, "अगर देवता भी होते है; तो वे पत्थरों के होते हैं" उनके दिल और ज़बान नहीं होती। वे कभी बोलते नहीं, रोते नहीं।"

तो मस्जिद का ही खंडहर सही," ज़ैनब ने कहा, "वहाँ ख़ुदा हम लोगों का साथ देगा।"

"मस्जिद में भी कोई नहीं रहता, वहाँ तो और सूना रहता है, आवाज़ खुद दीवारों में टकराकर सदा देने वाले के कानो में कह जाती है—"तू कमज़ोर है।"

"तो तुम्हें मन्दिर मस्जिद, ख़ुदा-ईश्वर पर विश्वास नहीं," ज़ैनब ने पूछा।

"ख़ुदा-ईश्वर पर विश्वास है पर मन्दिर और मस्जिद पर नहीं।"

सहसा गोविन्द की वाणी मौन हो गई। वह असीम स्थिरता से गाँव की ओर देखने लगा। ज़ैनब भी उसी ओर देखती हुई स्थिर हो गई। गाँव की ओर से कितनी रोशनी जंगल की ओर बढ़ती चली आ रही थी। विजय बहादुर की टार्च, खोज में दौड़ती, इधर ही आ रही थी। ज़ैनब ने गोविन्द को सहमे हुए हाथों से पकड़कर धीरे से कहा—"गोविन्द।"

गोविन्द की आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं, सामने से भी रोशनी आ रही थी, दाएँ और बाएं से भी मशाल जलाए हुए लोग किसी को ढूंढ़ रहे थे। पीछे रोनी की ओर अँधेरा था।

"'हम लोग इसी अँधेरे में भाग चलें," गोविन्द ने रोनी की ओर देखते हुए ज़ैनब से कहा।

"नहीं, अँधेरे में वे लोग छिपते हैं जो सचमुच दोषी होते हैं, जिनका दिल काला होता है।" ज़ैनब ने गंभीरता से गोविन्द की बात को दुहराया।

एक क्षण पहले गोविन्द के पैरों में जो गति हुई थी; वह स्थिरता को पहुँच गई और गोविन्द ज़ैनब के हाथ को पकड़े प्रकाश की प्रतीक्षा करने लगा। उसका मन और उसकी आत्मा दोनों ने शपथ ली कि वह सत्य के लिए मर मिटेगा; वह क्रोधित जनता के सामने कह देगा, सिद्ध कर देगा कि तुम लोग गुमराह किए जा रहे हो, राजा और राजकुमार जगतपुर के दुश्मन हैं, जगतपुर की धरती के दुश्मन हैं, माँ-बहनों के दुश्मन हैं। ये लोग हिम्मत सिंह के ख़ून से हैं जिन्होंने

सन् सत्तावन की ग़दर में जगतपुर का सुहाग लूटा था, रातों रात लखनऊ जाकर देशद्रोही का बदबूदार पैग़ाम दिया था।

गोबिन्द सोच ही रहा था, सहसा ज़ैनब ने उसे जोर से झकझोर कर कहा—"देखते नहीं, विजय सामने आ गया, उसके साथ की जनता हम लोगों की जान की कितनी भूखी लग रही है।"

"देख रहा हूँ ज़ैनब।" यह कहकर, गोविन्द के पैर बड़ी तेज़ी से बाँई ओर मुड़े और वह ज़ैनब के साथ रोनी की तलहटी में उतर गया और अपूर्व गति से किनारे-किनारे बढ़ने लगा।

थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही उसने देखा, छोटी पट्टी के तमाम अहीर कुरमी के लड़के—उसके दोस्त, रोशनी लिए सामने आ पहुँचे थे। लोग गोविन्द को देखकर चिल्लाने ही वाले थे कि गोविन्द ने एक अजीब विश्वास के साथ कड़े स्वर में कहा—"किशन, मैं गोविन्द हूँ।"

किशन ही उस बढ़ते हुए गिरोह का बाँका सरदार था। गिरोह का विश्वस्त अगुआ था जिसने गोविन्द को पकड़ने का तय किया था। उसके हाथ में जलते हुए मशाल को गोविन्द ने एक अजीब विश्वास से बुझाना चाहा, लेकिन उसे तबतक लगा कि कोई पीछे से झटका दे रहा है और उसने दूसरे ही क्षण अपने को पाया कि वह जन्म के साथी, असंख्य खेलों के गोइयाँ—किशन, प्रताप, मोहन राधे, यमुना, मुन्नू आदि के बीच में घिर गया है। गोविन्द ने इन बढ़े हुए कठोर हाथों में प्रतिहिंसा की ऐंठन देखी, घूरती हुई आँखों में क्रोध की ज्वाला देखी; फिर भी उसे डर नहीं लगा। उसका विश्वास अब भी नहीं टूटा था। उसकी खामोश आंखे अपने दोस्तों से कह रही थीं, 'एक ही धरती-माँता के मेरे भाइयो, जगतपुर के खून, पृथ्वी के लाल! मैं वह गोविन्द हूँ—मुझे पहचानों, जिसने तुम लोगों के साथ कितनी कबड्डियाँ खेली हैं, कितनी भाँवरे बनाई हैं, कितनी गुल्लियाँ तोड़ी हैं, खेरनी पकाई है, ढाँसे और कूकू में कितनी मिचौनियाँ ली है।

गोविन्द के सर में लगी हुई कितनी पुरानी चोटें, बाहुओं के कितने दाग़ हाथों के कितने छिछोले, पैर के कितने खरौंच; अहीर दोस्तों को, कुरमी भाइयों को याद दिलाने लगे कि यह गोविन्द हैं; चकई भौंरा, का गुइँया कंट्टा सुर का साथी, गाय बरदियाँ का पल्ला और अखाड़े का वीर, होली का गायक और सावन के झूले का अगुआ।

फिर भी गोविन्द लोगों के बीच में जकड़ाता जाता था, लोगों के मुख पर विजय की रेखाएँ स्पष्ट थीं कि उन लोगों के ग़ोल ने गोविन्द को पकड़ लिया है। उसी क्षण गोविन्द के कान के पर्दे खुले और उससे एक सम्मिलित स्वर में सुना, कोई कह रहा था, "बन्दी करलो इसे; मार डालो ज़ैनब को, दोनों की बलि दे दो!"

गोविन्द के कानों से ज्वाला फूटने लगी, उसकी वाणी तड़प उठी। वह अब तक जो कुछ सोच रहा था, उसकी सूखी सूखी आँखें जो कुछ कह रह रही थीं, वह सब उसके ओठों पर तड़पने लगीं। गोविन्द ने कहा—"मेरे भाइयो, जगतपुर के खून: मुझे पहचानों, अपने गोविन्द को पहचानों, गुमराह न बनो, मेरे बदन को सूँघो इसमें से अगर पाप की बदबू आती हो तो मेरा गला घोंट दो। ज़ैनब की सहमी हुई पाक आँखे देखो; अगर उसमें गुनाह की स्याही हो तो मेरे साथ उसकी बलि दे दो। विजय मक्कार है, धरती का दुश्मन है, जगतपुर का हत्यारा है, वह हिम्मत सिंह का खून है; सँभल जावो मेरे दोस्तो।"

गोविन्द की बाणी में दर्द भर चुका था, उसकी वाणी गिरने जा रही थी; क्योंकि दक्षिण से विजय आदमियों को लिए हुए क़रीब आ चुका था; इसलिए गोविन्द गुमराह दोस्तों से क्षीण स्वर में कहने लगा था—"किशन। जगतपुर की रक्षा में हाथ बटा, तुझे तेरी बांसुरी की क़सम जिसे हम दोनों अब तक रोनी के किनारे बजाया करते थे— तुझे तेरी ढोरों की सौगन्ध, जिसका तूने मुझे दूध पिलाया

है; तेरे इस चमकते हुए माथे के दाग़ की कसक; जो हमारे चकई भौंरवा की खेल की पवित्र निशानी है। दोस्तो, हमें जगतपुर को भूख से मरने से बचाना है—"

सब की उठी हुई भुजाएँ शिथिल पड़ गई थीं। सब चुप हो गए थे। प्रतिहिंसा का खूनी किला मानों ढह कर गुलाब की क्यारी बन गया था। सब की खूनी आँखों में दया और प्रेम के बादल उमड़ आए थे, सब के दिल भर आए थे।

तब तक गोविन्द ने देखा विजय उसकी ओर शिकारी की तरह झपटा चला आ रहा था। किशन की गोल ने गोविन्द और ज़ैनब को अपने पीछे छिपाना चाहा, लेकिन गोविन्द ने उसी क्षण ज़ैनब को पकड़कर किशन के हाथों में सौंपते हुए कहा—"किशन, मैं ज़ैनब को तेरे हाथ सौंप रहा हूँ, इसे इसके घर पर रक्षा करना, विजय से बचाना··और—"

"और तुम गोविन्द ?" किशन के ग़ोल ने पूछा।

' मैं, रोनी में कूदकर उस पार कहीं चला जाऊँगा, गोविन्द की वाणी में अजीब स्थिरता और उत्साह का संगीत था।

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी गोविन्द।" ज़ैनब ने अजीब वेदना के साथ तड़पकर कहा।

"नहीं, ज़ैनब !"··

गोविन्द ने मुड़कर अपने प्यारे दोस्तों की ग़ोल में ज़ैनब को प्यार भरी आँखों से देखा और कुछ बुदबुदाता हुआ रोनी में समा गया। तब तक विजय अपने आदमियों के सहित किशन के ग़ोल में आ गया और ज़ैनब को देखकर क्रोध से पूछा—"और गोविन्द कहाँ है ?"

सब चुप थे, ज़ैनब नीचे देखती हुई, गोविन्द की अभी अभी विदाई की पीड़ा लिए हुए अपने दिल में तड़प रही थी; उसका रोता हुआ मन गोविन्द को पुकार कर कह रहा था—"गोविन्द, कहाँ अके चले गए ? अगर विजय ने मुझे गोली मार दी तो !"

उसी क्षण विजय ने डपटकर पूछा—"तुम लोग बोलते क्यों नहीं ?··हत्यारे, पापी गोविन्द को कहाँ छिपा लिया ?"

"हम लोग नहीं जानते !" किशन, ग़ोल के सरदार ने कहा।

"नहीं जानते !" विजय ने क्रोध से कहा, "तुम लोग झूठ बोलते हो।" और उसके शिकारी पैर, गोविन्द को इधर उधर ढूँढ़ने लगे।

"यह रोनी का पानी क्यों इस तरह हिल रहा है ?" विजय ने रोनी की ओर बढ़ते हुए पूछा, "गोविन्द क्या इसमें नहीं कूदा है ?·· रोनी में क्यों इतनी तेज़ लहरें उठी हैं ?"

"सरकार ! इसमें एक घड़ियाल आया है, उसी ने शायद··।"

"शायद नहीं, तुम सब लोग उससे मिले हो," विजय ने तड़पते हुए कहा और किशन के समीप पहुँचकर ज़ैनब को उस ग़ोल से झपटना चाहा। ज़ैनब सहमकर किशन के पीछे छिप गई और उसके दाएँ-बाएँ सब दोस्तों का ख़ूबसूरत क़िला बन गया।

"बदमाश ज़ैनब !··" विजय ने यह कहकर उसका हाथ पकड़ना चाहा। और उधर अभी आए हुए ग़ोल में 'मारो मारो' की आवाज़ बुलन्द हो गई थी।

"यह नहीं हो सकेगा," किशन ने विजय को दूर हटाते हुए कहा। वह इस क्षण ज़ैनब को अपनी रक्षा में छिपाए हुए यह पूर्णरूप से भूल चुका था कि वह किससे अकड़ रहा है। उसके फ़ौलादी हाथों से आज वह डर जाता रहा कि राजकुमार, बातों बात में गोली मार देता है, उसके कितने ख़ून माफ़ हैं।

"सरकार, यह नहीं हो सकता।" किशन ने फिर तड़पकर कहा।

"हो सकता है !" विजय ने तड़पकर किशन के मुँह पर ज़ोर का थप्पड़ मारा। आदमियों में खलबली मच गई। किशन के साथियों की आँखों में ख़ून उबल आया; लेकिन किशन खामोश हो गया था। उसने भीतर से उठे हुए ख़ून को पी लिया और उसके दोनों हाथ दाएँ-बाएँ ऊँची, मजबूत दीवार की भाँति फैल गए।

दूसरे ही क्षण विजय के आदमियों की लाठियाँ इस फैले हुए फ़ौलादी हाथ पर बरसने लगीं। किशन अपनी जगह पर स्थिर खड़ा था, दोनों ओर से लाठियाँ चल रही थीं। किशन की गोल में रक्षा की भावना अधिक थी, दूसरी में प्रतिहिंसा की। कितने घायल हो चुके थे। विजय सबसे दूर गालियाँ बकता हुआ कहता जाता था—"ये बेइमान भी जगतपुर के दुश्मन हैं; गोविन्द को इन्हीं बदमाशों ने छिपाया है; इन्हें एक एक करके मार डालो—फ़ाहशा ज़ैनब को कुत्तों से नुचवा डालो।" ज़ैनब को उस समय गोविन्द की बात याद आरही थी—"कुछ नहीं होगा अगर तुम इस बार विजय को कस कस कर पाँच जूतियाँ मार दो।"

लेकिन दूसरे ही क्षण मानो ज़ैनब के कानों में गोविन्द ने कह दिया कि, 'ज़ैनब खामोश रहना।'

ज़ैनब अपनी जगह पर तिलमिला कर रह जाती थी, वह बार बार चाहती थी कि वह किशन की फैली हुई बाहुओं में लिपट जाय, भाइयों के लगते हुए घावों में बर्फ़ की पट्टी बन जाय। उनपर गिरती हुई लाठियों के सिरे पर फूल बिखेर दे। तब तक ज़ैनब ने देखा कि किशन अपने हाथों को उसी तरह फैलाए हुए गिरने जा रहा है, उसका सर दर्द की बेहोशी में नीचे लटक चुका था। ज़ैनब उसे सँभालती-सँभालती लड़खड़ा गई और क्षणभर में लोगों ने देखा कि किशन बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा। और ज़ैनब उसके ऊपर फैल गई।

उसी समय दोनों तरफ़ की लाठियाँ बन्द हो गईं। लोगों ने देखा—विजय वहाँ से भाग गया था। बड़ी पट्टी और नीची पट्टी के लोग एक-एक करके घर लौटते जा रहे थे। छोटी पट्टी की आत्मा, किशन बेहोश पड़ा था, उसके हाथ अबभी दोनो ओर फैले थे, किशन के दोस्त, जगतपुर के खून, गोविन्द के भाई किशन और ज़ैनब को देखते हुए चुप खामोश खड़े थे।

कुछ ही देर के बाद काली रात बीती और सुर्ख़-सवेरा हुआ,

किशन को होश आ गया। ज़ैनब बार बार रोनी नदी में कुछ ढूढ़ रही थी; किशन और उसके साथी रोनी के उस पार गोविन्द की मधुर स्मृति को सोच रहे थे। किशन की आँखे उसी सुर्ख़-सबेरा की तरह लाल थीं। वह गर्व की मुस्कान लिए ज़ैनब को देख रहा था। ज़ैनब की भी आँखे सुर्ख़ थीं पर आँसुओं से डबडबाई हुई थीं। अब पूरब से किरने फूट रही थीं, रोनी से एक मुस्कान आ रही थी, बहती हुई हवा से एक संगीत आरहा था। ज़ैनब के बदन से एक पाक ख़ुशबू आ रही थी, छोटी पट्टी की आत्माओं में संतोष की लहरें उठ रही थीं। जगतपुर से एक पुकार आरही थी, धरती से मातृत्व की गरिमा टपक रही थी।

४

गोविन्द के पिता का नाम महेशदत्त था। ये लालसाहब के मन्दिर के पुजारी और महल के आशीर्बाददाता थे। राजा शिवप्रसाद और लालसाहब जब तक एक साथ थे, अलग नहीं हुए थे, महेशदत्त ने इनकी राजकुमरियों को हिन्दी और संस्कृत की आरम्भिक शिक्षा दी थी। और जब राजा शिवप्रसाद से लालसाहब अलग होने लगे थे; उस समय पंडित महेश दत्त जी ने स्वेच्छा से लालसाहब का पक्ष लिया था; और तबसे पैंसठ बर्ष के गोविन्द के पिता लालसाहब के पुजारी और मंगलदाता थे।

प्रातःकाल था; पंडित जी विशाल मन्दिर में ठाकुर जी को प्रभाती गा गाकर जगा चुके थे, नित्यक्रिया समाप्त करके प्रभु की आरती उतार रहे थे और अपनी अनन्य तन्मयता में सूर के वात्सल्य पूर्ण पद गा रहे थे। उनके हाथों में अजीब बाँकेपन से आरती कँप रही थी। शरीर का अणु अणु नृत्य की मुद्रा में बल खारहा था। पैंसठ वर्ष के पुराने पैरों में सोई हुई नृत्य की मुद्राएँ अँगड़ाई ले रही थी। आज उनकी पूजा में अपूर्व श्रद्धा और तन्मयता थी, स्वर में अजीव आत्मसमपर्ण और दीनता थीं। वाणीं के संगीत और ओठों पर कोई आर्त्त-पुकार थी।

लालसाहब के ऊँचे महल से, विशेषकर अन्तःपुर से, ठाकुर जी की सम्पूर्ण झाँकी देखने को मिलती थी। ठाकुरद्वारे के अंतःपुर और महल के अंतःपुर में विचित्र शुषमा थी। आज इन्द्रा अपने कक्ष में खड़ी-खड़ी ठाकुर जी की आरती देख रही थी, पुजारी की अपूर्व पूजा, श्रद्धा और नृत्य की अलौकिक मुद्राओं पर ध्यानमग्न थी लेकिन थोड़ी ही देर देखने के बाद इन्द्रा को स्पष्ट हो गया कि आज पुजारी अपनी

असीम दीनता, आत्मसमर्पण और सारी पूजा के पीछे कितनी बड़ी पुकार और दीनता का स्वर छिपाए हैं। आज वह अपनी पूजा की भूमिका पर कोई यथार्थतम बात कह रहा है। आज उसके बाल-भगवान की जगह पर उसका एकलौता गोविन्द, अपना खून याद आ रहा है। आज वह अपने ठाकुर जी से अपने गोविन्द के लिए कल्याण माग रहा था, उसकी रक्षा के लिए भीख की याचना कर रहा था।

उसी समय इन्द्रा ने देखा कि विजय बड़ी तेज़ी से मन्दिर में प्रवेश कर रहा है।

भीतर पहुँचकर, विजय ने देखा, पुजारी अनन्य भाव से ठाकुर के सम्मुख आँखें मूंदे बैठा है। विजय ने स्पष्ट देखा कि आज पंडित एक नवीन संसार में है, उसे इस समय एकबार फिर सामने फटकार देना, उसे असीम दुख देना है। लेकिन विजय उसे दुख ही देने आया था, क्योंकि इसका अपराध यह था कि यह गोविन्द का बाप था।

विजय नेएक क्षण रुककर, पंडित की बाँयीं ओर जाकर बहुत शांति से पूछा; यद्यपि इस शान्ति में अपूर्व व्यंग्य और क्षोभ था।

"अपने गोविन्द को कहाँ छिपाकर रक्खा है ?"

पुजारी की आँखे अब भी बन्द थीं।

"मैं तुमसे पूछता हूँ; तुम्हारा गोविन्द कहाँ है ?" विजय की वाणी में कुछ कटुता थी।

"मेरा गोविन्द ! पुजारी ने यह कहकर; चौंकते हुए अपनी आँखे खोल दी और सहम कर कहा; "राजकुमार, मेरा गोविन्द,.....इसी गोविन्द से पूछिए।" पुजारी ने प्रतिमा के सामने संकेत करते हुए कहा। और वह धीरे से राजकुमार विजय के सामने खड़ा हो गया।

"मैं तुमसे कुछ पूछने आया हूँ।" विजय ने गंभीरता से कहा, "तुम्हे सीधे से उसका उत्तर देना है।"

पुजारी फिर मौन हो गया। विजय ने इसबार कटुता से पूछा—"गोविन्द कहाँ ?"

"सरकार ! मैं नहीं जानता; इसी गोविन्द से पूछिए।" पंडित ने फिर प्रतिमा की ओर इंगित किया।

"अपने बदमाश गोविन्द की आड़ में; ठाकुर जी पर भी कीचड़ उछाल रहा है !" विजय की आँखें मानो जल रही।

"सरकार ! मैं ठीक कह रहा हूँ; मैं अपने गोविन्द को नहीं जानता।" पुजारी ने कहा; "मुझे भी इसी की चिन्ता है।"

"चिन्ता नहीं; तुम्हे आज से ठाकुर की पूजा छोड़ देनी है; तुम राज्य अपराधी और एक मफ़रूर के बाप हो" विजय अपनी अजीब कटुता में कहता जाता था; "तुम अब यहाँ नहीं रह सकते।"

मानो पुजारी के सामने की धरती हिल रही थी। ठाकुर जी की बाल-प्रतिमा मुस्कराती हुई कह रही थीं,—

"मैं इसके लिए क्या कर सकता हूँ।"

"मैं अब यहाँ नहीं रह सकता !····यह किसकी आज्ञा है सरकार ?" पंडित की वाणी में अपूर्व दीनता थी।

"राजा साहब की आज्ञा है; मेरी आज्ञा है; सारे जगतपुर की आज्ञा है" विजय ने कहा।

"लालसाहब की भी ?" पूजारी ने धीरे से कहा।

"लाल साहब की क्या हस्ती है कि वे इस बात के विरोध में खड़े हो जाँय हैं !" विजय को क्रोध चढ़ता जा रहा था।

"उनकी हस्ती है।" पंडित ने गम्भीरता से कहा।

"उनकी हस्ती है ?" विजय ने डाँट कर पूछा और बढ़कर पुजारी की दोनों बाहुओं को भीचकर हिला दिया और कहा;

"बोल किसकी हस्ती का तुम्हें घमंड है !"

"गोविन्द की।" पुजारी ने प्रतिमा की ओर फिर संकेत किया।

"और अपने गोविन्द की नहीं ?" विजय ने व्यंग्य से कहा।

पंडित जी चुप थे; उनकी आँखो में शान्ति थी; लेकिन विजय के ओंठों पर एक अजीब तरह की कँपकपी थी और आँखों में क्रोध की सुर्ख़ी थी।

"कहो तो; तुम्हारा गला दबाकर यहीं, इस समय दिखा दूँ कि तुम्हारे लालसाहल और इस पत्थर के गोविन्द में क्या हस्ती है ?"

पंडित ने एक बार विजय की आँखों को देखकर, अपने ठाकुर जी की ओर देखा। उनकी उदास आखें ठाकुर जी से बार-बार पूछ रही थी—कि प्रभु ! क्या यह सत्य है ?—पर प्रतिमा से कोई उत्तर नहीं मिल रहा था। पंडित जी को लग रहा था कि कोई उनकी आस्था पर चोट कर रहा है, आज कोई उनके संस्कार और विश्वास को समूल उखाड़ रहा है।

"बोल ! क्या सोच रहा है ?···दिखा दूँ, मैं अपनी भी हस्ती ?" विजय की वाणी में प्रतिहिंसा स्पष्ट थी।

"नहीं' दिखा सकते !" किसी ने मन्दिर में प्रवेश करते हुए डाँट कर कहा।

विजय ने घूमकर देखा, इन्द्रा के ओंठ कँप रहे थे। उसे क्षणभर के लिए आश्चर्य हुआ कि इन्द्रा यहाँ कैसे ? और इससे भी बढ़कर उसे इस बात पर क्षोभ भीं हो रहा था कि इन्द्रा पुजारी के पक्ष से मेरे विरोध में आ रही है।

"क्या चाहते हो तुम ?" इन्द्रा ने विजय से पूछा।

"यह जगतपुर के द्रोही गोविन्द का बाप है;" विजय कहता जा रहा था; "यह भी जगतपुर का दुश्मन हुआ; इसने कहीं न कहीं गोविन्द को अवश्य छिपाया है।"

"तब ?" इन्द्रा ने पूछा।

"तब क्या, इसे राज्य की ओर से आज्ञा मिली है कि यह किसी

तरह भी मन्दिर का पुजारी नहीं रह सकता, यह किसी का कल्याण-कारी नहीं हो सकता।"

"यह तुम्हारी व्यक्तिगत धारणा है, "इन्द्रा ने निश्चित स्वर में कहा,

"यह सारा फसाद तुम्हारी किसी निजी बात पर आधारित हो सकता है।"

"यह राजा, राजकुमार और जगतपुर की आज्ञा है।" विजय की वाणी में तेज़ी थी।

"इसका प्रमाण ?" इन्द्रा ने पूछा—"

"इसका प्रमाण मेरी बात है।" विजय ने सोचकर कहा।

"तभी तुमने इतनी जल्दी, आवेश में पंडित का गला दबाने के लिए सोचलिया था।" इन्द्रा की वाणी में व्यंग्य था।

"ज़रूर, अगर पंडित ने आज शाम तक अपने गोबिन्द का पता न दिया, तब मेरी सोची हुई सब बातें सत्य होगी। इसका विरोध कोई नहीं कर सकता।" विजय की आँखो में हिंसा टपक रही थी वह आवेश में मन्दिर के बाहर जाने लगा। उसी क्षण पुजारी ने चिल्ला कर कहा,

"राजकुमार ! मैं अपने गोविन्द को नहीं जानता, उसे आप ही जानते होंगे—उसकी रक्षा.... ।"

पुजारी की आँखों में आँसू उमड़ आये थे वह अजीब निर्बल हो गया था। आज उसके जन्म-जन्म के भगवान, ठाकुर जी भी उसे आश्वासन नहीं दे रहे थे। इन्द्रा बाहर देखती हुई कुछ सोच रही थी।

"विजय कितना ख़तरनाक होता जा रहा है !" इन्द्रा ने धीरे से कहा।

"जगतपुर के लिए विशेष रूप से।" पंडित महेश दत्त ने आगे कहा, और अपलक इन्द्रा की ओर देखने लगे।

"पंडित जी ! आखिर गोबिन्द कहाँ चला गया होगा" ?..इन्द्रा नेकहा, "मैं स्वंय उसे देखना चाहती हूँ, बातें करना चाहती हूँ।"

"मैं बिल्कुल नही जानती बेटी"! पंडित ने अपनी दीनता प्रकट की।

"और यह ज़ैनब कौन, किसकी लड़की है?" इन्द्रा ने पूछा

"बेटी, यह ज़ैनब; मुझे अब पूरा पता चला है," पंडित जी ने कहा, "कि यह शेख पट्टी की सबसे धनी घर की लड़की है।"

"आखिर किसकी लड़की है?" इन्द्रा जानने को उत्सुक थी।

"यह शेख उमर की लड़की है," पंडित जी ने बताया, "शेख उमर के मरे हुए आज करीब-करीब दस साल हो रहे हैं, ये बहुत बड़े आदमी थे, बुटबल में छपाई और कपड़े के बहुत बड़े रोज़गारी थे। किसी समय में लखपती हो गए थे, लेकिन बेचारे की अकस्मात् मौत हो गई, सारा रोज़गार, सारी रकम वहीं लुट गई, नहीं तो बेवा, बेचारी अख़्तरी को ये दिन न देखने को मिलते।"

"यह अख़्तरी, ज़ैनब की बेवा माँ है?" इन्द्रा ने टोकते हुए पूछा।

"हाँ बेटी!..यह ज़ैनब की माँ है, निहायत शरीफ औरत!"

पंडित जी आगे कुछ कहने जा रहे थे, इन्द्रा ने उन्हें रोकते हुए कहा, "पंडित जी! मैं ज़ैनब से शीघ्र मिलना चाहती हूँ; आप उससे मेरी भेंट करा दीजिए।"

"बेटी! मैं देखूँगा..." पंडित जी ने कहा, "लेकिन बेटी, आज शाम को? बिजय को मैं क्या उत्तर दूँगा?"

आज शाम को?" इन्द्रा ने सोचते हुए कहा, "आप मंदिर पर न आइएगा, मैं यहाँ का भार सँभाल लूँगी, प्रातःकाल आइएगा; और अगर बिजय यहाँ आपकी खोज में आता है, मैं उससे निपट लूँगी, या कह दूँगी कि पंडित जी गोविन्द की खोज में बाहर गए हैं। लेकिन पंडित जी; ज़ैनब को शाम तक मेरे पास ज़रूर भेजिएगा।"

"बहुत अच्छा..कुमारी!" पंडित जी ने धीरे से स्वीकार करके, दीनता भरी दृष्टि से अपने ठाकुर जी को देखा और उनके पैर मन्दिर से बाहर बढ़ गए।

* * *

इन्द्रा बीस वर्ष की थी। उसकी रतनारी आँखों ने जगतपुर के बीस बसंतो को देखा था, गंभीर पुतलियों में बीस सावन और तीज की छाया पड़ी थी, पतले ओटों से कितने अनमोल जगतपुरी फाग कजली और सहाने गाए गये थे।

इसके शरीर और आत्मा का निर्माण जगतपुर के पानी, आग, हवा, धरती और गंभीर नीले आकाश से हुआ था।—मंगलमयी भौंहों पर स्नेह और उदारता की मुस्कान थी, लम्बे, घुँघराले वालों में कितने वरदान छिपे थे। लम्बी और सिरे पर कुछ बल खाकर नीचे झुकी हुई नाक ने जगतपुर के कितने जंगली फूल और काँटों, की खुशबू और बदबू की सुगन्धि ली थी। भरे हुए सफेद, जंगली गुलाब के फूल की तरह मुखपर, जगतपुर की धरती के प्रति; इन्सान के प्रति, श्रद्धा और प्यार की कितनी सुनहरी रेखाएँ खिंची थीं। गालों पर लज्जा और कौमार्य की लाली की किरने फूट रही थीं।

इन्द्रा के विचारों में देश-राष्ट्र की महानता थी, मन में धरती के प्रति भक्ति थी, आत्मा में इन्सानियत की धड़कन और पुकार थी। रक्त में जगतपुर के प्रति श्रद्धा थी और अपनी धरती, समूची धरती के कण कण के लिए ममता थी।

इस तरह से इन्द्रा के शरीर और आत्मा का निर्माण जगतपुर के पानी, आग, हवा, धरती और गंभीर नीले आकाश से हुआ था।

उसने गोविन्द और ज़ैनब को सुना था, सोचा था पर अभी तक देखा न था। आज उसे लग रहा था कि वह गोविन्द को देख रही है एक नौजवान, पच्चीस, छब्बीस वर्ष का, धोती कुर्त्ते में बिखरे हुए घुघराले बाल, आँखों मेंमस्ती और पुतलियों में परेशानी लिए हुए कहीं दूर से उसे देख रहा है, पैरों में गंभीरता, पर एक तूफान सँभाले हुए कहीं दूर एकाकी चला जा रहा है।

वह ज़ैनब को भी देख रही थी—एक बीस वर्ष की शहज़ादी मानिन्द लड़की, रेशमी छीट की जगतपुरी शिलवार, बदन में कसी हुई

लम्बी चुस्तकुर्ती, उमदा जामदानी की फिरोज़ी ओढ़नी खामोश आँखें, परीशान चेहरा, सूखे हुए पतले पतले ओठ, बिखरेहुए लम्बे लम्बे, हवा में उड़ते हुए काले काले बाल।

इन्द्रा, मन्दिर के बरमदे में खड़ी होकर सोचती जा रही थी देखती जा रही थी;मानो वह कोई स्वप्न देख रही थी। उसी समय उसने सुना कुछ औरतें अपने करुण स्वर में कुछ गाती हुई कहीं जा रही हैं। इन्द्रा को अजीब कौतूहल हुआ। वह मन्दिर के दरवाजे के सामने बढ़ गई और उसने देखा औरतों का एक खूबसूरत झुंड, हाथों में प्रसाद लिए मन्दिर की ओर बढ़ता चला जा रहा है। उनके सम्मिलित स्वर में आकर्षण का जादू था और गीत में करुणा स्पष्ट थी। इन्द्रा ने इस गीत को कभी न सुना था—

"अचरन सुरज मनैइबै,
तबै अपने राजा के पइबै।"

गीत के स्वर में जितनी गति थी, जितना सुन्दर उतार चढ़ाव था; उनके साथ चलते हुए पैरों में उतना ही सुन्दर संगीत और जीवन था।

मन्दिर के समीप आकर उनका गीत बन्द होगया। इन्द्रा इस गीत को अनवरत सुनना चाहती थी; इसलिए उसने यह सोचकर कि उसी की वजह से औरतों ने गीत को समाप्त किया है; वह मन्दिर के दूसरी ओर चली गई और वहीं से वह गीत को जीभर कर सुनना चाहती थी। लेकिन औरतों ने गाना बन्द कर दिया और शांत्तिपूर्वक ठाकुर जी को प्रसाद चढ़ाने लगीं, अपनी अपनी मनौतियाँ दुहराने लगीं, आँखों में आँसू ला ला कर कुछ बुदबुदाने लगीं, दर्द भरी आवाज़ और डबडबाई हुई आँखों से दिल की बातों को कहने लगीं।

इन्द्रा मन्दिर के बाहर से, अपने को छिपाती हुई, इस अलौकिक दृश्य को देख रही थी। उसी समय इन्द्रा ने चौंककर पीछे देखा, उन

औरतों में से एक अल्हड़ दूल्हन सी, ओंठो पर अमिट, बच्चों की सी मुस्कराहट, और आँखों में मासूमियत का भोलापन लिए हुए, उसके पास आकर पूछ रही थी—"यहाँ की पुजारिन आप ही हैं ?"

इन्द्रा चुप थी, उसकी ज़बान और आँखें जैसे दोनों शर्मा गई थीं।

इतने में एक दूसरी कली सी दूल्हन उसके सामने आ गई। इसके ओठों पर और अधिक लाली लिए हुए मुस्कराहट की रेखायें खिंची थी। इसका मुख और भी खूबसूरत, अंडाकार था। और भी अधिक गोरी थी, भरे हुए मुख पर और भी अधिक मासूमियत की सुर्ख-सुर्ख किरनें फूट रही थीं, लम्बी काली-कली आँखों में और भी अधिक भोलेपन की गहराई थी। खूबसूरती की खामोशी थी।

उसने लँहगा पहना था, इसने घाँघरा, जिसमें नीचे की मुड़ाव के ऊपर छत्तीस फेरन चमक रहे थे। उसका लहँगा धानी रंग का था जिस पर गुलाबी बूटे और सफ़ेद सितारे चमक रहे थे। इसका घाँघरा बैगनी रंग का था जो अपनी सिकुड़नों में डूबते सूरज की मुस्कराहट की लाली बिखेर रहा था। उसकी कसी चोली का रंग सुर्ख़ था, जिसके अन्दर से चाँदनी बरस रही थी। इसकी और भी कसी हुई चोली का रंग धानी था, जिस पर लाल सितारे झलक रहे थे। इसके अन्दर से लाखों सितारों की मुस्कराहट और हजारों चाँद की रोशनी छिपी थी। उसकी ओढ़नी का रंग पियाज़ी था, जिसके गुलाबी आँचल में पवित्रता छिपी थी। इसका दुपट्टा फिरोज़ी रंग का था जिसके पीले आँचल में सैकड़ों दीपक चल रहे थे। इसके सिर पर बहुत थोड़ा शर्माता हुआ घूँघट सा था।

लेकिन पहली जहाँ, कल खिलने वाली कली थी, वहाँ यह दूसरी एक जँगली गुलाब के फूल की तरह थी। पहली जहाँ अल्हड़ थी, वहाँ दूसरी मुग्धासी कुछ शान्त थी। पहली से कमल की सुगन्धि आती थी, दूसरी से धरती की खुशबू।

पहली किशन की भोली बहन सब्बो थी, गोविन्द की मानी हुई राजकुमारी, राज बहन। दूसरी किशन की दूल्हन थी और गोविन्द की मीठी भाभी, गोइयाँ भाभी; जिसको गोविन्द ने गौने के दूसरे दिन ही बीस आने का लड्डू और दो बीड़े पान देकर देखा था।

हाँ, तो सब्बो ने इन्द्रा से पूछा—"यहाँ की पुजारिन आप ही हैं?"

इन्द्रा उसे देखती हुई चुप थी, मानी शर्मा गई थी, और कुछ उत्तर के लिए सोचने लगी। उसी समय किशन की दूल्हन, सब्बो की भाभी ने आकर, सब्बो की पीठ पर प्यार की थपकी देकर, मुस्कराकर कहा—"पगली बीवी! यह पुजरिन नहीं हैं, यह पुजारी बाबा की पतोहू है, पहचानती नहीं?"

इन्द्रा के ओंठो पर बरवस मुस्कराहट फैल गई, आँखे लज्जा के बोझ से, क्षण भर के लिए, भोलेपन को समेटे हुए नीचे झुक गईं। सब्बो ने खिलखिला कर हँस दिया; जैसे उसे कोई शंका भी नहीं थीं कि यह लालसाहब की राजकुमारी इन्द्रा हैं। उसी समय सब्बो की भाभी ने फिर मुस्कराकर कहाँ, "देखो बीबी रानी! मैंने इन्हे कैसे पहचान लिया।" सब्बो और हँसने लगी। उसी समय इन्द्रा ने शर्माकर बताया—"मैं न पुजारिन हूँ, न पुजारीबाबा की पतोहू; मैं....मैं.....इन्द्रा हूँ।"

सब्बो अपने हँसने के लिए क्षमा माँगने लगी। भाभी फौरन ही सिकुड़कर नीचे, इन्द्रा के पाँव के समीप बैठ गई और अपने आँचल से, इन्द्रा के पाँव को अपनी आँखों में श्रद्धा से स्पर्श करने लगी।

इन्द्रा ने प्यार से, दोनो के हाथों को पकड़ कर कहा—

"बड़ी प्यारी हो तुम लोग—किस पट्टी की रहने वाली हो?" इन्द्रा ने स्नेह से पूछा।

"हम लोग छोटी पट्टी की रहने वाली हैं।" सब्बो ने कहा, "यह मेरी भाभी है।" और उसकी आँखो में शरारत भर आई।

"छोटी पट्टी" इन्द्रा सोचने लगी, "जिसमें गोविन्द का भाई किशन रहता है।"

"हाँ, हाँ, ठीक है"—सब्बो ने बीच ही में इन्द्रा की बात को उठा लिया, "किशन मेरा भइया है, गोविन्द भी मेरा प्यारा भइया है—यह मेरी दूल्हन भाभी है।"

इन्द्रा के ओठों पर मुस्कराहट की लहरें दौड़ गईं। सब्बो की भाभी के शशि मुखपर घूँघट थोड़ा बलखाकर नीचे खिसक आया, आँखे भी सूमियत की बोझ से नीचे झुक गई। सब्बो मुस्कराने लगी।

"अब किशन कैसे है ?" इन्द्रा ने पूछा।

"ठाकुर जी की कृपा से अब अच्छे हो रहे हैं।" भाभी ने उत्तर दिया।

"उन्ही के अच्छे होने के लिए, भाभी ने ठाकुर जी को प्रसाद माना था।" सब्बो ने बताया।

"और तुम किसके लिए प्रसाद चढ़ाने आई थी ?" इन्द्रा ने सब्बो से पूछा।

" मैं अपने गोविन्द भइया के लिए......।"

सब्बो अपना प्यारा वाक्य पूरा ही करना चाहती थी, भाभी ने मुस्कराकर बीच में उसे टोक दिया, "इन्द्रा बीबी !....गोविन्द बाबू से इनसे शादी होने वाली है, ! इसी से बहुत प्रसाद चढ़ा रही हैं।" सब्बो ने बढ़कर भाभी का भरा हुआ मुख प्यार से मीच लिया और तिर्छी चितवन से कहा, "ऐसी बातें तुम्हारे जगदीशपुर में होती हैं, जगतपुर में नहीं।"

सब की सम्मिलित हँसी ने मन्दिर को गुँजा दिया। ऐसी गूँज, जो मन्दिर में सैकड़ो घंटों और घड़ियाल बजने से कभी नहीं उभरती। इसी समय मन्दिर के भीतर से तमाम औरतों ने इन्द्रा को घेर लिया और सब एक दूसरी को देखनें लगी। सब्बो ने इन्द्रा से बताया, "ये

सब छोती पट्टी कीं हैं, यह मेरी भाभी हैं। यह भी मेरी भाभी हैं, यह मौसी हैं, यह चाची हैं, यह सखी हैं, यह मेरी रानी हैं," सब्बो तमाम खड़ा हुई औरतों का भोला परिचय देती जा रही थी और सब के ओठों पर भोला मुस्कान उभरता जाता था। उसी समय सब्बो ने बताया, "इन सब के.....घर वालों को उस दिन चोटें आई थी। ठाकुरजी की कृपा से वे सब अच्छे हो गए हैं।"

"बहुत खुशी की बात है!" इन्द्रा ने प्रसन्नता से कहा और उसकी आँखो में कुछ घोल उठा। सब स्त्रियाँ एक इन्द्रा को देख रही थीं और अकेली इन्द्रा सब औरतों को, रानियों को, लड़कियों को देख रही थी, जिनके बीच बीच में, सब के आगे, गोविन्द की छाया, ज़ैनब की तस्वीर रह रह के नाच उठती थी।

* * *

सन्ध्या हो चली थी, लगता था कि जगतपुर अभी थोड़ी देर में सो जायगा क्योंकि बड़ी पट्टी का शेर बड़ी पट्टी का संगीत; गोविन्द का कहीं पता न था; इसलिए अब इस पट्टी में बहुत रात तक मीठी बातें, राजनीतिक, ऐतिहासिक घटनाओं की ज़िन्दगी भरी कहानियाँ सुनाने वाला कोई न था।

शेख़-पट्टी की ज़बान पथरा गई थी। उसका दिल शाम होते ही डर से काँपने लगता था, क्योंकि इस पट्टी की इज़्ज़त, निस्वानियत की खूबसूरती—ज़ैनब; जिसके पतले पतले लबों पर न जाने कितने नग़मे, स्वयं गुनगुनाया करते थे, जिसकी बाँकी हँसी से अँधेरी रात उजेली हो जाती थी, वह डर से चुप हो गयी थी। अब ज़ैनी भी बहुत धीरे से ही .कुरान और रामायण की चौपाइयों को दुहरा लेती थी और बहुत जल्द ख़ामोश हो जाती थी। अब शेख़ पट्टी में बहुत शाम होने तक कोई हिन्दू लड़की, कसीदे बूटे, गजल, दादरा और शहाने सीखने के लिये नहीं रुक पाती थी।

छोटी पट्टी में अब रात को बाँसुरी नहीं बजती थी, बिरहे और बारहमासे नहीं उड़ते थे, जैसे चनैनी और बारहलखन्दर के गीत भूल गए थे क्योंकि छोटी पट्टी का शेर धरती का लाड़ला; किशन हरदम अपनी चिन्ता में न जाने क्या सोचता रहता था।

नीची पट्टी की आत्मा ख़ूखार हो गई थी, इसलिए उसकी ज़बान में भी कोई जीवन नहीं रह गया था, राजासाहब—शिवप्रसाद सिंह की भी आत्मा उनके राजकुमार, विजयप्रतापराणाबहादुर के हाथों बिक गई थी। राजकुमार का क्रोध राजा का क्रोध था उसकी ख़ुशी राजा की ख़ुशी थी।

इसलिए जगतपुर बहुत जल्दी सो जाता था, लगता था शाम होते-होते। पहले जगतपुर रात के तीन पहरों तक गाता था केवल पिछले पहर में सोता था।

हाँ, तो संध्या हो चली थी और इन्द्रा मन्दिर में दीपक जलाकर ठाकुर जी की आरती उतार चुकी थी, कुछ भजन गा चुकी थी और मन्दिर के दरवाजे के सामने चुप खड़ी थी। उसके दिमाग़ में गोविन्द, ज़ैनब और विजय का तिकोना रूप रहरह के नाच रहा था, जगतपुर पर, पैदाकार कम होने के नाते; एक तूफान लाने वाली समस्या भी भी उसके वस्तिष्क में न जाने क्यों एक टीस सी बनकर उभरने लगी थी। दिल में छोटी पट्टी की दूल्हनो और कुमारियों का वह सम्मिलित स्वर—'अचरनसुरज मनेइबै तबै अपने राजा कैं पइबै' स्वयं लहरें ले रहा था। सब्बो और भाभी का भोलापन, हृदय में अमृत की वर्षा कर रहा था; उसका दिल रहरह के, उस सूने मन्दिर में कह उठता था कि एक बार फिर गाती हुई वे छोटी पट्टी की औरतें आ जातीं; तब इन्द्रा उनके साथ ज़ैनब के घर जाती, फिर राजाशिवप्रसाद जी के घर जाती और विजय की सारी बदमाशी स्वयं कह डालती! कभी-कभी दूसरी तरह से सोचने लगती कि वह केवल सब्बो और भाभी को लेकर;

गोबिन्द को ढूढ़ने निकल जाती और जगतपुर में लाकर छोड़ती; ना जाने क्या-क्या करती।

इन्द्रा खड़ी हुई सोचा ही रही थी, तब तक उसने देखा विजय मस्ती से झूमता हुआ सामने से चला आ रहा था। आज उसका चेहरा बहुत तमतमाया था, लेकिन उस तमतमाहट की लाली में किसी अच्छे विचार-परिवर्तन की सुगन्धि न थी वरन उससे शराब की भीनी-भीनी बदबू आ रही थी, जिसे जिन, हिस्की, रम आदि पीने वाले, .खुशबू कहते हैं। इन्द्रा, विजय को देखते ही मन्दिर में चली गयी और ठाकुर जी के सामने खड़ी होकर न जाने क्या बुदबुदाने लगी।

विजय ने बाहर बरामदे से ही इन्द्रा को पुकारा। इन्द्रा को समाने देखकर बिजय ने आज विनय से नमस्ते किया और मुस्करा उठा। इन्द्रा चुप थी। उसने विजय के मुखपर न जाने कितनी बदलती हुई, बनकर-मिटती हुई अजीब-अजीब तरह तरह की रेखाएँ देखीं। वह, बिना कुछ बोले ही, बिजय के मुख से बदबू पाकर मन्दिर के पूरब तरफ चली गई, बिजय उधर भी उसके सामने खड़ा था और हाथ जोड़कर इन्द्रा से कहने लगा—"इन्द्रा बहन! क्यों इतनी नाराज़ हो?...मुझे बचाओ नहीं तो मैं मर जाऊगाँ।"

"मर जाते तो अच्छा ही था।" इन्द्रा ने गंभीरता से कहा, "एक राज्यवंश का सम्मान रह जाता, उसकी इज्ज़त रह जाती, जगतपुर रह जाता, सब रह जते।"

"एक बात और कह दो, इन्द्रा बहन।" विजय ने कुछ मस्ती में कहा।

"क्या कह दूँ?"

"कह दो कि, तुम ज़िन्दे रहो और मैं तुम्हे ज़ैनब को गोबिन्द के हाथ से दे दूँगी।"

"ज़रा होश में आके बातें करो," इन्द्रा ने गँभीरता से कहा,

"यह देवता का मन्दिर है और तुम एक बहन के सामने बातें कर रहो हो।"

"लेकिन मैं ज़ैनब से प्रेम करता हूँ बहन !"

"विजय ! मुझे आज से तुम बहन कहकर न पुकारो !" इन्द्रा क्रोध में आकर कह रही थी, "मुझे मालूम है तुम्हारा प्रेम क्या है कितना भयानक और बदबूदार है जिससे एक जगतपुर क्या कितने जगतपुर टोले बन सकते हैं।"

"अच्छा नाराज़ न हो, मैं ऐसी बातें नहीं करूँगा।" विजय ने कहा, "सुना है आज छोटी पट्टी की तमाम दूल्हनें और लड़कियाँ ठाकुर जी को प्रसाद चढ़ाने आई थी !"

"हाँ, आई थीं तो क्यों, ?" इन्द्रा ने पूछा।

"तब तो देखा होगा किशन की बहन सावित्री कितनी अच्छी है।"

"इन्द्रा का सिर घूम गया, उसकी आँखें खुली ही रह गईं। एक और आशंका ने उसे कँपा दिया। उसकी इच्छा हुई कि विजय की जबान खीचले।

उसी समय विजय ने फिर दुहराया, "क्या सोचने लगी, इन्द्रा बहन ?···सब्बो कितनी अच्छी है, राजकुमारी सी !"

"विजय !" इन्द्रा चिल्ला उठी।

"हाँ, बहन ! वह प्रेम करने लायक है।"

"नीच विजय !····तू मुझे बहन न कह," इन्द्रा जैसे पागल हो रही थी, "मुझे फिर बहन न कह, नहीं तो एक दिन तू मुझसे भी अपने बदबूदार प्रेम की चर्चा करने लगेगा।"

इन्द्रा क्रोध से चुप हो गई थी, पर उसके ओंठ फड़क रहे थे। उसे लग रहा था कि उसके सामने धुआँ उठ रहा है, जिससे उसका दम घुटने वाला था। बदबू से वह पागल हो जाने वाली थी।

"विजय ! तू यहाँ से चला जा, निकल जा !" इन्द्रा ने डाँट कर कहा।

"अगर न जाने की तबीयत हो तो ?" विजय ने अपनी मस्ती में कहा।

"मैं तुझे डण्डों से मार कर यहाँ से निकाल दूँगी।"

"ख़ामोश इन्द्रा।" विजय ने डाँटते हुए कहा, "मुझसे बग़ावत करने वाला गोली मार दिया जाता है।"

"और मेरी बेइज़्ज़ती सोचने वाला खुद जल जाता है, भाग जाओ यहाँ से।" इन्द्रा ने ललकारा।

"नहीं भागता," विजय ने बढ़कर इन्द्रा के दाएँ हाथ को मीचकर पकड़े हुए खड़ा था। इन्द्रा ने चीखकर उसको झटक दिया। विजय बरामदे से बाहर लड़खड़ा कर सँभल गया और क्रोध से इन्द्रा की ओर झपटा। इन्द्रा घूमकर मन्दिर के दरवाजे के सामने बढ़ने लगी थी। विजय ने उस पर आक्रमण करना ही चाहा था, कि इन्द्रा के मुख से एक आर्त्त चीख़ निकली और उसने उसी क्षण देखा कोई बाँका नौजवान झपटकर विजय को अपनी बाहुओं में जकड़ चुका था, और विजय दूसरे ही क्षण गिड़गिड़ाने लगा था।

"ले जाओ इसे बाहर फेंक दो।" इन्द्रा तड़प रही थी। युवक बिना बोले चाले विजय को अपनी बाहुओं में उठाए हुए मन्दिर के बाहर कर दिया। जैसे विजय का अब नशा उतर चुका था और वह चुपचाप महल की ओर लौट आया।

युवक ने लौटकर असीम श्रद्धा से इन्द्रा का अभिवादन किया। इन्द्रा अपलक उसे देखने लगी, मानों वह सब्बो की बातों को देख रही थी।

"आप कौन हैं ?" इन्द्रा ने पूछा।

"मैं छोटी पट्टी का किशन हूँ।"

"तुम्ही किशन हो !" इन्द्रा के मुख से बरबस प्यार भरी एक पुकार निकल गई और उसके पैर आगे, किशन के समीप बढ़ गए।

"तुम मेरे भी किशन भाई हो !" इन्द्रा ने प्यार से कहा। किशन इन्द्रा के स्नेह-भार से सिकुड़ चुका था उसे लगरहा था कि उसके ऊपर अमृत की वर्षा हो रही थी और यह भीग रहा था। उसका हृदय भर चुका था इसलिए उसकी वाणी मूक हो गई थी।

"कैसे तुम यहाँ एकाएक आगए किशन ?" इन्द्रा को उत्सुकता होने लगी थी।

"मैं आपसे ज़ैनब को मिलाने आया था।" किशन ने धीरे से कहा।

"कहाँ है ज़ैनब ?" इन्द्रा उससे मिलने के लिए आतुर हो उठी थी। वह शीघ्र चाहती थी कि ज़ैनब को अपने गले से चिपका ले और किशन उन्हें देखता रहे।

"कहाँ है ज़ैनब ?" इन्द्रा ने फिर पूछा।

"अभी ला रहा हूँ, मैं संयोगवश यहाँ पता लगाने अकेले चला आया था कि इस समय ज़ैनब का आना यहाँ ठीक है या नहीं।"

"ठीक है, ज़ैनब को यहाँ जल्द लाओ।" इन्द्रा ने कहा। और किशन ज़ैनब को लाने चला गया।

* * *

अँधेरी रात थी और चार घँटे बीत चुकी की। इन्द्रा कभी आसमान को देख रही थी और कभी धरती को। वह बहुत बातें सोचरही थी पर कोई निश्चित बात उसकी पकड़ में नहीं आ रही थी। उसी समय उसने देखा किशन की छाया में ज़ैनब मन्दिर की ओर चली आरही थी।

ज़ैनब आज शिलवार में नहीं थी, उसने भी आज छत्तीस फेरः का घाँवरा पहन रक्खा था फिरोजी दुपट्टे से अपने को खूब ढक लिय था, जिससे उसे कोई पहचान न पाए।

दूर ही से ज़ैनब ने इन्द्रा को झुककर आदाब किया। इन्द्रा उस स्वागत में आगे बढ़ कर उसके समीप आ गई। वह आँखें भर ज़ैनब को देखना चाहती थी। कितनी तारीफ़ें, कितनी बड़ाइय

कितनी तरह-तरह की बातें उसने कब से सुन रक्खी थी। इन्द्रा ने बढ़कर ज़ैनब के प्यारे-प्यारे हाथों को अपने हाथों से सीने से चिपका लिया।

इस समय ज़ैनब का दुपट्टा उसके सरसे स्वतः नीचे खिसक आया था। उसके ओंठ, जो कब से चुप थे, सूखे थे उस समय कुछ गाने लगे थे, उन पर अमृत की नमी आगई थी। काली-काली सहमी हुई आँखों में मुस्कराहट आगई थी। उसका सारा बदन फड़क रहा था कि वह इन्द्रा से गले मिल ले और इतनी जोर से दवाए कि उसके हाथ थक जाएँ।

उसी क्षण, इन्द्रा ने उसे अपने गले लगा लिया, लगता था कि किसी जन्म की दो बिछुड़ी हुई बहनें आज अचानक मिल रही हैं। किशन को लग रहा था कि जैसे गंगा और यमुना का पवित्र संगम हो रहा था जिसमें हिन्दुस्तान की सारी बदबू, सारी मैल, धुल सकती है, सूखे हुए कितने रेगिस्तान सींचे जा सकते हैं; कब की सूखी हुई वजंर और कितनी परती जमीन और नीरस धरती सर सब्जबन सकती है। जगतपुर क्या सारे भारत की धरती शस्यश्यामला हो सकती है, अन्न, फूल, फलों से धरती ढक सकती है।

इन दो मिलती हुई पवित्र नदियों से निकलती हुई एक धारा में इतनी ताक़त थी कि उसमें हिमालय बह सकता था।

इन्द्रा, ज़ैनब के साथ मन्दिर के बाहरी चबूतरे पर बैठी थी। वे दोनो बातें कर रही थीं और किशान पहरेदार की तरह मन्दिर के बाहर टहल रहा था।

"विजय कितना बड़ा मक्कार है! सारे जगतपुर को उसने गुमराह कर दिया है।"

"कुछ ईश्वर की भी नाराज़गी थी," ज़ैनब चिन्ता प्रकट कर रही थी, "नहीं तो इस साल जगतपुर की पैदावार क्यों मारी गई; यह धरती

को मंजूर था और इसने विजय को अपनी बात साबित करने का अच्छा मौक़ा दे दिया।"

"फिर भी चाहे जो कुछ हो," इन्द्रा ने कहा, "गोविन्द का अब जगतपुर में आ जाना बहुत आवश्यक है।"

"यही मेरी भी आपसे आरज़ू है।" ज़ैनब ने कहा।

"मैं इससे लोहा लूँगी," इन्द्रा ने कहा, "जगतपुर के सामने तीन गंभीर प्रश्न आए हैं।"

"कौन, कौन ?" किशन ने पास आकर, डर से पूछा।

"तीन प्रश्न हैं, इन्द्रा ने कहा, "पहला जगतपुर की भूख और इस वर्ष के अन्नाभाव की समस्या, दूसरी सबसे जबरदस्त चाल, विजय एक तरह से और चल सकता है !"

"वह क्या ?" दोनो के मुँह से एक साथ प्रश्न हुआ।

"विजय..साम्प्रदायिकता की आग से जगतपुर को भस्म कर सकता है। तीसरे यह जगतपुर की राजशाही, विजय खुद सबसे बड़ी समस्या है।"

इन्द्रा गंभीर होकर ज़ैनब को देख रही थी और ज़ैनब, इन्द्रा के फूल ऐसे पैरों को। वह डर रही थी पर उसमें आज आसीम चिन्तना आगई थी। उसी समय किशन ने ज़ोर से कहा।

"ठाकुर जी की जै।"

ज़ैनब, फौरन दौड़ कर किशन के मुँह पर अपना हाथ रख दिया और उससे पूछा, "इस तरह से शोर करोगे ?"

जैनब मुस्कराने लगी थी। इन्द्रा हँसने लगी और बेचारा किशन चुप होगया। उसी समय ज़ैनब ने किशन का हाथ प्यार से पकड़ कर धीरे कहा, "बोलो, इन्द्रा बहन की जै !"

इस समय इन्द्रा ने ज़ैनब के मुँह पर अपना हाथ रखकर चुप कर दिया और तीनो मुस्कराने लगे।

"ज़ैनब, तुमसे और किशन से मिल कर बड़ी खुशी हुई" इन्द्रा गद्-गद् हो उठी थी, "तुम लोगो से न जाने कब से मिलने की इच्छा थी।"

"यह हम लोगों की क़िस्मत है, इन्द्रा बहन।" ज़ैनब की आँखों में प्यार और मुहब्बत के आँसू छलछला उठे। वह डबडबाई हुई आँखों से मन्दिर की ओर देखने लगी थी।

"यह जगतपुर की क़िस्मत है।" किशन ने कहा।

"यह धरती की किस्मत है।" जैसे आकाश ने कह दिया हो।

उसी समय, अन्धेरे में टार्च की कितनी रोशनियाँ मन्दिर की ओर आने लगीं। ज़ैनब ने उसी क्षण डर से कहा, "विजय अपने आदमियों को लेकर, यहाँ छापा मारने आ रहा है।" उसने विजय की टार्च की रोशनी पहचान ली थी।

"अब क्या होगा ?" ज़ैनब ने कहा।

"तुम इन्द्रा के साथ मन्दिर के उस उत्तरी घेरे से अपने घर चली जाओ, मैं यहाँ अकेले विजय को उत्तर दे लूँगा।" किशन की वाणी में अपूर्व बल था।

"नहीं, नहीं हम लोग तुम्हारे साथ रहेंगीं, " इन्द्रा ने साहस से कहा, "देखें विजय क्या करता है !"

तीनो एक दृष्टि से दक्षिण ओर, विजय की आती हुई पार्टी को देख रहे थे। उसी समय पीछे से किसी ने मधुर स्वर में पुकार कर कहा, "बेटी ! इन्द्रा बेटी !! चलो घर चलें।"

तीनो ने पीछे घूम कर देखा; लाल साहब अपने चार सिपाहियों के साथ पीछे आ गए थे। उस समय इन्द्रा ने शीघ्रता से किशन से कहा, "अब तुम शीघ्र उस उत्तरी दरवाजे से बाहर निकल जाओ।"

किशन, ज़ैनब के साथ उत्तर की ओर मुड़ा, और तेज़ी से बाहर निकलने लगा। विजय अपने आदमियों के साथ इन्द्रा के सामने आ

पहुँचा था। इन्द्रा अपने पिता जी से सटी हुई खड़ी थी, तब तक विजय की आवाज़ गूंज उठी—"कहाँ है किशन?"

विजय इन्द्रा के समीप आकर, लाल साहब को देखकर रुक गया, नहीं तो जैसे लग रहा था वह अपने क्रोध तथा आवेश में इंद्रा का गला घोंट देगा। उसने फिर एक ऊँची आवाज़ में पूछा, "किशन को कहाँ छिपा कर रक्खा है?"

"कैसा किशन!" लाल साहब ने इन्द्रा को पीछे करते हुए पूछा।

"मैं आज उसका ख़ून करूँगा," विजय ने कठोर स्वर में कहा, और मैं आप से भी प्रार्थना करूँगा कि आप जल्द से जल्द अपनी लाड़ली इन्द्रा को जगतपुर से बाहर कर दें।"

"आख़िर बात क्या है? कुछ शान्त होकर बातें करो।" लाल साहब ने कहा।

"क्या शान्त होऊँ!" विजय ने कहा, "अगर मैं बात बताने के पहले सदा के लिए शान्त हो जाता तो अच्छा था।"

"तो सदा के लिए शान्त क्यों नहीं हो जाते?" इन्द्रा ने कहा।

"लेकिन मैं शान्त नहीं हो सकता, हमारे राज्य-रक्त पर तुम धब्बा नहीं लगा सकती।" विजय की वाणी में आवेश था।

"कैसा धब्बा?" लाल साहब गंभीर हो गए थे।

मैं हत्यारे गोविन्द का साथी, जगतपुर का दुश्मन—आवारा किशन को, सूनी रात में इन्द्रा के साथ नहीं देख सकता।

इन्द्रा क्रोध से तिलमिला उठी, उसे लगा कि उसके सीने में किसी ने बन्दूक मार दी हो। उसने उसी क्षण, अपने गुस्से की बेहोशी में, अपनी सारी पवित्रता की शक्ति से विजय के तमतमाए हुए मुख पर खींच कर एक चाँटा मार दिया और स्वयं चीख उठी।

विजय ने बढ़ कर इन्द्रा को पकड़ना चाहा, लाल साहब ने विजय को रोक लिया। विजय ने अपने आदमियों को ललकारा; और कहा,

"देख लो यह अन्याय ! जगतपुर की धरती पर कितना पाप लादा जा रहा है।"....

"इसके साक्षी..इस मन्दिर के भगवान होंगे।" इन्द्रा ने कहा, "एक दिन धरती को स्वयं बोलना पड़ेगा कि अत्याचार क्या है ! ज़्यादती और पाप क्या है ?"

"लेकिन मैं इसका बदला लूँगा !" विजय ने कड़क कर कहा।

"इससे बढ़कर तुम और क्या बदला ले सकते हो ?" लाल साहब ने कहा, तुम जगतपुर को क्या, अपने को अपना दुश्मन बना रहे हो।"

"इसे भविष्य बताएगा, लेकिन मैं इतना कह देता हूँ कि अब लड़ाइयाँ बढ़ेंगी, खून-खून से लड़ाई होगी, जात-जात से लड़ाई होगी, जात बेजात से लड़ाई होगी, जिन्दगी और मौत से लड़ाई होगी।"

हमें इसकी परवाह नहीं है विजय ! इन्हीं लड़ाइयों से तो इतिहास बनता है और बिगड़ता है, बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ होती हैं।" लाल साहब ने कहा।

"लेकिन जगतपुर में ये लड़ाइयाँ नहीं होने पाएँगी।" इन्द्रा ने गंभीरता से कहा। और वह मन्दिर की ओर बढ़ने लगी। और उसके पीछे लाल साहब अपने सिपाहियों के साथ बढ़ने लगे। विजय बहुत आवेश में मन्दिर के अहाते से बाहर निकल गया।

५

जिस समय गोविन्दने रोनी को पार करके, समीप के जंगल में प्रवेश किया, उस समय रात थी। वह जंगल में बहुत दूर तक न जा सका। उसके पैर न जाने क्यों भारी हो रहे थे, उसका दिल बैठ रहा था, दिमाग़ में एक दर्द हो रहा था। उसे बारबार लग रहा था कि ज़ैनब भी उसके साथ इस जंगल तक आई है और वह गोविन्द को ढूढ़ रही है।

जब गोविन्द एक क़दम और आगे बढ़ा तब उसे पता लगा कि कि उसके पैर में कहीं घाव हो गया है।

वास्तव में रोनी पार करते समय गोविन्द के बाएँ पैर के तालू में एक टूटी हुई हड्डी चुभ गई थी, और घाव करके दर्द फैला रही थी। गोविन्द को यह पता तब चला जब वह अँधेरे जंगल में एक साखू के पेड़ से चिपका हुआ कुछ सोचते सोचते थक गया था। वह बार-बार बाएँ पैर को उठा कर अपने दोनों हाथों से साखू के पेड़ को अपने सीने में चिपका लेता था और धीरे से कराह उठता था।

इस तरह से गोविन्द ने उस बची हुई रात को साखू के पेड़ को अपनी भुजाओं में कसे हुए काट दी।

सबेरा होते ही, गोविन्द जमीन पर बैठ गया और अपने पैर के घाव को देखा—उसमें अब भी बहते हुए खून की तरी थी। गोविन्द ने एक गर्म साँस भरी और साखू के पेड़ से अपना सिर टेक कर, धरती पर क्षणभर के लिए लेट गया। उसकी आँखे ज्योहीं ऊपर गईं, उसने देखा, साखू की दो पतली टहनियों के बीच में चार मोटे मोटे तिनके रक्खे हुए हैं, और उन तिनकों पर जँगली कबूतरों की एक जोड़ी, अब तक प्यार से एक दूसरे के दामन में छिपे हुए गोविन्द को देख रही थी।

"कितना प्यारा आशियाना है !" गोविन्द, धीरे से कहकर साखू के पेड़ से फिर लिपट गया। उस समय कबूतरों की जोड़ी अलग हो गई और वे कुछ बोलने लगे। गोविन्द ने उसी क्षण एक ज़ोर की ताली बजाकर, दोनो को उड़ा दिया, और लंगड़ाता हुआ राजापुर की तरफ बढ़ने लगा।

जिस समय गोविन्द, जंगल को पारकर एक हरे से दूरतक फैले हुए मैदान में आया, उस समय सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था और गोविन्द को दर्द, थकान के अलावा भूख लगने लगी थी। वह थोड़ी दूर और चलकर आगे एक कदम नहीं चल सकता था। उसकी इच्छा हो रही थी वह बहुत जोर से एक बार अपनी विधवा बहन सूरा (सरस्वती) को पुकारता, जो गोविन्द को अब तक एक बार गाय का दूध पिला चुकती थी, दूसरी बार चबैना के लिए प्रार्थना करती थी। गोविन्द उदास था, तबतक उसने दायीं ओर कुछ दूर पर, एक बैल-गाड़ी को देखा जो सम्भवतः राजापुर की ही ओर जा रही थी। गोविन्द ने खड़ा होकर, गाड़ीवान को जोर से हाँक की और वह विश्वास से गाड़ी की ओर बढ़ने लगा। पास पहुँचने पर गोविन्द ने देखा-गाड़ी में पीली साड़ी पहने हुए एक दूल्हन सी युवती बैठी थी, जिसकी अवस्था प्रायः सोलह बर्ष से अधिक न थी, शर्माती हुई गाड़ी में बैठी थी। गोविन्द ने यह देखकर, गाड़ीवान से हिचकिचाते हुए प्रार्थना की, "भाई गाड़ीवान ! मेरे पैर में चोट आ गई है, अगर तुम मुझे उस गाँव तक पहुचाँ देते तो मैं तुम्हारा बड़ा एहसानमन्द होता।"

"देखते नहीं, गाड़ीवान ने झुँझलाकर उत्तर दिया, "गाड़ी में मेरी दूल्हन बैठी है; तुझे कहाँ से बैठा लूँ ?"

गोविन्द गाड़ीवान को देखता ही रह गया। गाड़ीवान की अवस्था कमसे कम पचास वर्ष की थी, उसको देखने से लग रहा था कि यह डाकू है और उस मासूम लड़की को कहीं से चुरा लाया है।

गाड़ीवान बड़बड़ाता हुआ अपनी गाड़ी को आगे बढ़ा रहा था

और गोविन्द लँगड़ाता हुआ पीछे पीछे प्रार्थना कर रहा था कि वह उसे अपनी गाड़ी पर बिठा ले। गाड़ीवान गोविन्द की तरफ देखता भी न था, पर लड़की गोविन्द की दशा को देखकर दर्द और प्यार से सिहर उठती थी। उसने आखिरकार अपनी सारी हिम्मत बटोर कर गाड़ीवान से कहा, "सुनिए! आप इन्हें गाड़ी पर बिठा लीजिए मैं पैदल चलूँगी।"

"क्यों?" गाड़ीवान ने गाड़ी रोकते हुए कहा।

"क्योंकि गाड़ी पर मुझे चक्कर आ रहा है।" लड़की ने कहा।

"कि इस जवान को देखकर चक्कर आ रहा है।"

गाड़ीवान ने हँसते हुए यह कहकर गोविन्द से पूछा, "गाड़ी चलाना जानते हो?"

"नहीं, मैं तो नहीं जानता।" गोविन्द ने संकोच से कहा

"नहीं जानते तो कहाँ बैठोगे?" गाड़ीवान ने चिढ़ते हुए कहा।

"हाँ, हाँ जानता हूँ।" गोविन्द ने स्वीकार किया और वह बैलों के पास बैठकर गाड़ी हाँकने लगा।

गाड़ीवान बड़े प्यार से अपनी दूल्हन से सिमट कर बैट गया, और गोविन्द से पूछा, "जी, कहाँ के रहने वाले हो?"

"जगतपुर रहता हूँ।" गोविन्द ने बैलों को हांकते हुए कहा।

"और जा कहाँ रहे हो?"

"यह पता नही है।"

"यह तुम्हारे पैरों में चोट कैसे आ गई?" गाड़ीवान ने पूछा।

"शीशा लग गया है।" और गोविन्द ने एक ठन्ढी साँस ली जिसमें पीड़ा थी।

गाड़ी राजापुर की ओर चुपचाप चली जा रही थी, गोविन्द ने एक बार पीछे मुड़कर देखा। गाड़ीवान उसकी ओर पैर फैलाए, लड़की की गोद में सर रखकर आराम करने लगा था। उसी समय गोविन्द ने गाड़ीवान से पूछा—

"गौना लेकर आ रहे हो, क्या गाड़ीवान ?"

"नहीं, इसे मैं बैठाने ले जा रहा हूँ।" गाड़ीवान ने अँगड़ाई लेते हुए कहा।

"बैठाने ! बैठाने क्या भाई ?" गोविन्द ने आश्चर्य से पूछा।

"बैठाना नहीं जानते ?" गाड़ीवान ने कहा, "यह पारसाल विधवा हो गई थी, इसके माँ-बाप काफी तंगी में हैं, और मेरे पास अकेले काफी खेती-बारी है। मैंने सोचा इसे रख लूँ, इसके माँ-बाप की भी गुजर हो जायगी और यह भी........।"

इसके बाद गाड़ीवान चुप हो गया। गोविन्द ने फिर घूमकर देखा—लड़की रो रही थी गाड़ीवान उसे चुप कराने लगा था।

गोविन्द चुपचाप गाड़ी हाँक रहा था और सोचता जा रहा था—ईश्वर ! तू कितना बड़ा अन्यायी है। तुझे सोचना चाहिए कि जब तू किसी हिन्दू लड़की के पति को मारता है, तब तू उस बेगुनाह, भोली लड़की को क्यों ज़िन्दा छोड़ देता है ? बदअक़्ल ! या तो तू भारत को इँगलैण्ड अमेरिका बना दे या तो तू ही मर जा।

गोविन्द सोच रहा था, उसी समय गाड़ीवान ने पूछा, "क्या सोच रहे हो जी ! तुम्हें भूख तो नहीं लगी है ? मेरे पास ससुराल की पूड़ियाँ और ठोकवे हैं। क्यों भूख लगी है ?"

"भूख थी पर अब नहीं है।" गोविन्द ने बात बदलते हुए पूछा, "राजापुर वह दिखाई दे रहा है न ?"

"हाँ, वही है," गाड़ीवान ने कहा, "इसके आगे तुम कैसे जाओगे ?"

गाड़ी राजापुर पहुँच गई। लेकिन गोविन्द अब तक चुप था। उसके मस्तिष्क में कितने प्रश्न नाच रहे थे। उसके पैर का दर्द, भूख थकान के साथ और बढ़ गया था।

जिस समय गोविन्द गाड़ीवान के घर के सामने गाड़ी से उतरा उसकी आँखों के सामने तारे चमकने लगे। सर में चक्कर आ रहा

था। पास ही कच्चे, बैठकखाने में एक चारपाई पड़ी थी। गोविन्द ने उधर संकेत करके गाड़ीवान से पूछा—"क्या मैं यहाँ आराम कर सकता हूँ ?"

"हाँ, हाँ कर सकते हो !" गाड़ीवान ने यह कह, अपनी दूल्हन को गाड़ी से उतारा और घर में चला गया। उसके दरवाज़े पर तमाम गाँव की लड़कियों, औरतों की भीड़ थी।

गोविन्द की आँखें चारपाई पर लेटते ही पीड़ा और थकान से मुंद गईं। थोड़ी देर के बाद बैठकखाने में तीन चार लड़कियाँ आ गईं और गोन्दि को देखने लगीं। उसमें से एक ने गोविन्द से मुस्कराकर पूछा, "क्यों जी तुम दूल्हन के भाई हो ?"

"नहीं, मैं एक राहगीर हूँ," गोविन्द ने आँखें खोलते हुए कहा।

"मुझे रास्ते में चोट आ गई है।"

"यह पैर में चोट !" लड़कियाँ असीम संवेदना से एक साथ कह उठीं और झुककर गोविन्द के पैर के घाव देखने लगीं। लड़कियों की पतली पतली अँगुलियों का स्नेह स्पर्श, गोविन्द को घाव पर इस तरह लग रहा था जैसे कोई उसके जलते हुए घाव पर बर्फ के टुकड़े रख रहा हो।

"तुम्हें भूख और प्यास भी तो लगी होगी !" एक ने पूछा।

इस बार गोविन्द की आँखें अनायास डबडबा आईं। उसे उसी क्षण एक दृष्टि में उसकी बहन सरस्वती, सब्बो, किशन, भाभी ज़ैनब—सब याद आ गए। उसने कुछ उत्तर न दिया। दो लड़कियाँ, फौरन अपने अपने घर दौड़ गईं और क्षण भर में गोविन्द के सामने मीठी मलाई से भरा हुआ कटोरा और पानी आ गया।

खाने पीने के बाद गोविन्द को नींद आगई और वह बेखबर सो गया। इस समय दिन का तीसरा पहर था और हवा गर्म हो चली थी। लेकिन गोविन्द बेसुध सो रहा था।

उसकी आँखें, एक बार तभी खुलीं जब डूबते हुए सूरज की किरनें उस पर पड़ीं और आँखें मलते हुए उसने अपनी चारपाई को दूसरी जगह

खींच ली। और वह फिर सोने लगा। और सोते सोते दूसरी बार उसकी आँखें तब खुलीं, जब गोविन्द को सहसा महसूस हुआ कि उसके पैर का घाव कोई गर्म पानी से, रुई द्वारा धो रहा है।

आधी रात बीत चुकी थी। चारों ओर अँधेरा था। गोविन्द ने यह देखकर कि गाड़ीवान की वही दूल्हन उसके घाव को धो रही है; आश्चर्यचकित रह गया।

"तुम यह क्या कर रही हो?" गोविन्द ने हिचकिचाते हुए पूछा "धीरे बोलो;" उसकी दूल्हन ने बहुत धीरे से समझाया, "तुम्हारे पैर में दवा बाँध दे रही हूँ। और लो यह खाना खा लो।"

गोविन्द के दिल और जबान; जैसे दोनों पर किसी ने अमृत की मिठास भर दी हो। वह बोल न सका, और जल्दी से भोजन समाप्त कर डाला।

"मुझे माफ़ करना, तुम आज दिन भर अकेले यहीं भूख और दर्द में पड़े रह गए।" लड़की ने कहा।

"नहीं, कोई बात नहीं," गोविन्द ने कहा, " अब मेरे घाव में दर्द नहीं है; तुम अब जाकर सो जाओ।"

"नहीं गाड़ीवान सो गया है।" लड़की ने अपनी मासूमियत से कहा और चारपाई पर बैठकर गोबिन्द के पैर मलने लगी। गीबिन्द हिचकिचाने लगा। बारबार पैर को खीचने लगा, लड़की को समझाने लगा—लेकिन दूसरे क्षण गीबिन्द ने देखा लड़की को आँखो में आँसू भर आए हैं; फिर गोबिन्द बिबश हो गया।

लड़की अपनी ख़ामोशी में गोबिन्द के पैर को मलती जाती थी और गोविन्द की इच्छा हो रही थी कि वह लड़की के पैरों को अपनी जवान से चूम ले; उसके पवित्र हाथों से अपनी दोनो आँखें बन्द कर ले। उसकी आँखों में आए हुए आँसुओं को गंगा-जल की तरह पी जाय। हश्र तक उस बेक़सूर धरती की आँख को देखता रहे।

"तुम्हारा क्या नाम है?" लड़की ने पूछा।

"मेरा नाम गोविन्द है !"

"कहाँ, जा रहे हो, यह तो तुमने बताया ही न था।"

"क्या बताता ?...मैं एक अजीब मुसीबत का मारा हुआ हूँ ।" गोविन्द ने कहा, "मेरे गाँव के राजा का लड़का मेरा दुश्मनहो गया है क्योंकि उसकी बदमाशी पर मैंने गाँव वालों की ओर से विरोध किया था, वह मेरी जान का भूखा बन गया है। इसलिए मैं दो चार दिन के लिए कहीं बाहर चला जा रहा हूँ।"

"तब तक यहीं क्यों नहीं रह जाते ?" लड़की के स्वर में दीनता थी।

"नहीं, मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं है, किसी हालत में भी नहीं," गोविन्द ने घबड़ाकर कहा, "मैं बहुत सुबह यहाँ से चला जाऊँगा और मैं तुम्हें कभी न भूल सकूँगा।"

लड़की की आखों से आँसू टपक रहे थे। उसी समय गोविन्द ने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम सुभागी है, लड़की ने आँसू पोछते हुए कहा, "लेकिन मैं दुनियाँ में सब से बड़ी अभागिन हूँ।"

गोविन्द ने उसे बहुत समझाया और आखिर में उसकी आँखे फिर लग गईं।

गोविन्द की आँखे तीसरी बार तब खुलीं जब भोर में उसके जाने का वक्त हो गया था और सुभागी उसे विदाई देने के लिए चारपाई के पास खड़ी थी।

गोविन्द जाने के लिए तैयार हो गया। उसी समय सुभागी ने गोविन्द को एक कपड़े की पोटली थमाते हुए, अजीब भोलेपन से, आँखो में आँसू लाकर पूछा—"गोविन्द बाबू ! फिर कब आवोगे ?"

"बहन, कभी आऊँगा।"

यह कहकर गोविन्द बहुत तेज़ी से मुड़ा और राह पर चलने लगा। उसे चलते हुए लग रहा था कि सामने सुभागी के आँसुओ से एक गहरा

सागर लहरा रहा है और गोविन्द उसमें डूबता जा रहा है। "गोविन्द बाबू !" सुभागी का दिया हुआ यह प्यारा खजाना उस सागर में तैर रहा था और गोविन्द इसी के सहारे रास्ता चलता जाता था।

सूरज के थोड़े ऊँचे आते-आते, गोविन्द राजापुर के आठ मील की दूरी तै कर चुका था। वह उस कच्ची सड़क के किनारे-किनारे चल रहा था जो सुभावाँ स्टेशन को जाती थी। दूसरी ओर रुधौली, बनगवाँ, जगतपुर आदि होती हुई लखनऊ की ओर निकल जाती थी।

आगे रास्ते में, इसी सड़क से थोड़ो दूर हटकर एक लम्बी और खूबसूरत झील पड़ी। इसका उत्तरी किनारा एक हरेभरे ऊँचे टीले के दामन में छिपा था, जिसपर खजूर के घने पेड़ खड़े थे। पूरब की ओर साखू जामुन और जमुनी का घना जंगल फैला हुआ था। सूरज अभी तक इस घने और ऊँचे जंगल के ऊपर नहीं आ पाया था। इसी जंगल के ऊँचे साखू के पेड़ों से, उसकी किरने छन-छन कर नीली झील में पड़ रही थीं। पश्चिम और दक्खिन की ओर हरे घास का खूबसूरत मैदान छुटा हुआ था। गोविन्द सड़क से उतर कर, पश्चिम से घूमता हुआ झील के उत्तरी किनारे पर पहुँचा और झील के किनारे एक रक्खे हुए पत्थर पर बैठ गया और झील को देखने लगा।

फिर उसने सुभागी की दी हुई पोटली खोली उसमें एक तरफ ताज़े पराठे और उम्दा खोवा और गुड़ रक्खा था, दूसरी ओर एक छोटी सी गाँठ खोलकर गोविन्द ने देखा उसमें पाँच रुपए का एक नोट बँधा था।

गोविन्द हाथ में नोट लिए हुए गहरी झील में सुभागी को देखने लगा। जैसे सुभागी बहुत गहराई में खड़ी हुई, मुस्करा कर गोविन्द से कह रही हो, "गोविन्द बाबू !...बाबू गोविन्द !!...बाबू !... गोविन्द !! जल्दी पराठे खालो, नहीं तो तुम्हे देर हो जायगी; अभी मैं तुम्हारे थके हुए पाँव भी मलूँगी।"

गोविन्द को एक मीठी हँसी आ गई, शायद इतनी मीठी कि जिसका अनुभवन कभी स्वर्ग के देवताओं ने भी न किया हो। दूसरे क्षण, उसने पाँच रुपए के नोट को देखा, उसमें से प्यार की आवाज़ आ रही थी, कि यह मैं वह पाँच रुपया हूँ, जिसको कि 'एक माँ अपनी लड़की को ससुराल बिदा करते समय, सँभाल कर उसके आँचल के छोर में बाँध देती है।'

दूसरे क्षण गोविन्द ने अपने पैरों को देखा और ढूँढ़ने लगा कि इन पैरों में सुभागी की पवित्र हथेलियां के कहीं निशान तो नहीं। उसने बहुत ढूँढ़ा, दूसरे क्षण उसे अनुभूति हुई कि वे पवित्र निशान गोविन्द के दिल पर पड़े है, उनकी छाया उसकी आँखों में पड़ी है।

तब गोविन्द ने अपना हाथ मुँह धोकर खाना शुरू किया। वह खाता जाता था और झील के पानी में देखता जाता था—सुभागी पवित्रता से चौके में, चूल्हे के पास बैठी है और गोविन्द को प्यार से हँस हँसकर खिलाती जाती है।

इसी बीच सामने सड़क पर एक बहुत ख़ूबसूरत नयी कार, हार्न देती हुई रुकी। गोविन्द का स्वप्न भंग हो गया और वह सशंकित उस रुकती हुई कार को देखने लगा। उसमें से एक ऊँचे क़द की, आसमानी जार्जेट की साड़ी पहने हुए, आँखों पर काला धूप का चश्मा लगाए हुए, खुले बाल, गर्व की रेखाओं से खिंची हुई कोई युवती उतर रही है। और आँखों पर से चश्मे को उतारकर झील की ओर देखने लगी। एक नौकर भी बाहर खड़ा था।

दूसरे ही क्षण, उसने अपनी कार से, कैमरा लेकर, टीले की ओर फिर देखा और झील की ओर बढ़ गई। गोविन्द जल्दी जल्दी भोजन समाप्त कर चुका। और उसने देखा, लड़की उसी की ओर 'व्यू' लेकर केमरे को ठीक कर रही थी। गोविन्द को अजीब लगा और वह दौड़ता हुआ टीले पर चढ़ने लगा। उसी समय लड़की ने पुकार कर कहा—"आदमी ज़रा वहीं रुक जाओ।"

गोविन्द ने वहीं से घूमकर उत्तर दिया, "इस खूबसूरती में मेरा चित्र नहीं लिया जा सकता।"

गोविन्द दौड़ता हुआ टीले पर चढ़ चुका था और वहाँ से उसने देखा कि लड़की अजीब लापरवाही से घूमकर इस पार टीले की ओर आ रही है। गोविन्द ने सोचा कि यह क्या आफत आने वाली है। लड़की नीचे झील के किनारे आ चुकी थी और उसने नीचे से गोविन्द को देखते हुए पूछा, "जी, तुम कैसे आदमी हो!"

"जी! मैं आँसू और मुस्कान से बना हुआ एक आदमी हूँ, जो दिल भर कर न रो सकता है न मुस्करा सकता है।" गोविन्द ने टीले पर से उत्तर दिया।

"मैं ऐसे ही आदमी के साथ इस टीले की तस्वीर लेना चाहती हूँ।" लड़की ने कहा।

गोविन्द नीचे उतर आया और लड़की के पास आकर खड़ा हो गया।

"आप तो कवि या लेखक लगते हैं!" लड़की ने कहा।

"शुक्रिया!" गोविन्द ने कहा," आप मुझे चश्मा लगाकर देख रही हैं; इसलिए मैं आपको कवि या लेखक लग रहा हूँ—वरना मैं सिर्फ एक आदमी हूँ।"

"सिर्फ आदमी ही तो आदमी के काम आते हैं।" लड़की ने कहा।

"लेकिन वह काम क्या है, मैं जानना चाहता हूँ।"

"मैं अपने अलबम के लिए इस झील के किनारे की दो एक तस्वीरें लेना चाहती हूँ"

"और आप आ कहाँ से रही हैं?" गोविन्द ने पूछा।

"मैं नैनीताल से आ रही हूँ।" लड़की ने अजीब शान से कहा।

"फिर भी आपके अलबम खाली रह गए हैं!"

"आपसे मतलब!" लड़की ने झुँझला कर कहा, और अपने केमरे को झील की ओर ठीक करने लगी।

"आप नाराज़ न होइए," गोविन्द ने प्रिय शब्दों में कहा, "मैं जानना चाहता हूँ कि आप इस टीले और झील की तस्वीर के साथ एक आदमी या मेरी तस्वीर क्यों चाहती है ?"

"यहाँ का दृश्य मुझे बहुत अच्छा लग रहा है, लड़की ने कहा,

"मैं इस दृश्य को लेकर अपने घर पर इसे और बढ़ाती, फिर इसको बड़े तैल-चित्र का रूप देती।"

"मेरे ?" गोविन्द ने बीच ही में टोक दिया।

"और मैं इस तस्वीर के नीचे लिख देती—'टीले पर चढ़ता हुआ एक ग़रीब चरवाहा।'

गोविन्द को हँसी आगई और उसने कहा, "तभी आपको एक आदमी की खोज है, जिसकी ग़रीबी आपकी कला का आधार बनता। लेकिन अफ़सोस है कि न तो मैं चरवाहा ही हूँ न ग़रीब ही।"

"तो ?" लड़की ने गम्भीरता से कहा।

"आइए, मैं इस झील और टीले की तस्वीर में आपकी तस्वीर खींच दूँ।"

"और ?" लड़की लड़की आश्चर्य के साथ तिलमिलाहट हो रही थी।

"और,····आप तस्वीर के नीचे लिख लीजिएगा कि 'प्रकृति और राजकुमारी।"

"आपको मालूम होना चाहिए कि मैं राजकुमारी ही हूँ, जिससे आप बातें कर रहे हैं।" लड़की ने गर्व से कहा।

"जी हाँ, मेरे गाँव में भी एक राजकुमारी हैं," गोविन्द ने कहा, "बिल्कुल आपकी तरह, लेकिन वे इस समय नैनीताल गई हुई हैं।"

"आप जगतपुर के तो रहने वाले नहीं ?" लड़की ने पूछा।

"हाँ, हूँ तो !" गोविन्द ने कहा।

"अच्छा, वहाँ की राजकुमारी तारामती मैं ही हूँ।"

"आप ही हैं !" गोविन्द ने आश्चर्य से कहा और टीले की ओर मुड़कर झील के किनारे-किनारे बढ़ने लगा। तारामती को इस युवक पर अजीव आश्चर्य हो रहा था। उसने पुकार कर कहा, "तो आप कहाँ भगे जा रहे हैं ?"

गोविन्द चुप था, वह मुड़कर देख भी नहीं रहा था। उसके मस्तिष्क में झट से नाच गया कि यह तारामती विजय की बहिन है, हिम्मत सिंह के खून की है। यह नैनीताल से लौट रही है, यह इलाहाबाद युनिवर्सिटी में बी० ए० द्वितीय वर्ष में पढ़ रही है। इसकी आँखों में रूप धन, अमीरी का नशा है, शरीर के अणु-अणु में रोमांस है। विचारों में मस्ती है।

उसी समय तारामती ने बढ़कर पुकारा—"आप क्यों इतनी तेज़ी से भगे जा रहे हैं ? मैं भी उसी ओर चल रही हूँ।"

"क्यों ?" गोबिन्द मुड़कर खड़ा हो गया।

"आइए, आपही मेरी तस्वीरों के साथ, यहाँ की तस्वीर खींच दीजिए।

गोविन्द लौट आया और उसने केमरा लेकर झील, जंगल के दृश्यों के साथ, तारामती की विभिन्न मुद्राएँ लेने लगा और झटझट उसने कई तस्वीरें खींच दी।

गोविन्द गंभीर था पर तारामती के ओंठो पर मुस्कान खेल रही थी। उन्होंने गोविन्द को धन्यवाद दिया और गोविंद ने कहा, "अब आप मुझे आज्ञा दीजिए !"

"आप इतनी जल्दी में जा कहाँ रहे हैं !" तारामती ने पूछा।

"कह नहीं सकता, वैसे फिलहाल सुभांवाँ स्टेशन की ओर जा रहा हूँ।" गोविंद ने कहा और सड़क की ओर बढ़ने लगा। साथ-साथ तारामती भी चलती जा रही थी और कह रही थी, "अपने गाँव की बड़ी पट्टी में गोविंद एक ब्राह्मण का लड़का है, उसने शायद इस

वर्ष इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से बी० ए० किया है। क्या आप उसे जानते हैं ?"

गोविंद चुप था और उसके पैर सड़क की ओर बढ़ते जा रहे थे।

"बोलिए, आप उसे जानते है ? तारामती पूछ रही थी, "सुना है, जगतपुर में अजीब खुराफ़ात कर रहा है।"

"तो क्या आप उसकी खुराफात को शांत करने जा रही है ?" गोविन्द ने रुककर पूछा।

"नहीं, मैंने वैसे कहा, क्या आप गोविन्द को नहीं जानते ?" तारामती ने पूछा, "आप किस पट्टी के रहने वाले हैं ?"

"मैं कुछ नहीं जानता, ।" और गोविन्द सड़क पर आचुका था। उसमे अशांति थी। उसी समय तारामती अपनी कार के पास आकर पूछा, "आप क्यों इतना परेशान है ?, चलिए, मैं आप को जगतपुर ले चलूँ !"

"धन्यवाद ! मैं जगतपुर फिर जाऊँगा ।" गोविन्द ने यह कहकर तारामती को आदर से अभिवादन किया और आगे बढ़ गया।

तारामती की कार जगतपुर की ओर दौड़ गई और गोविन्द थोड़ी दूर आगे जाकर सड़क की उड़ती हुई धूल को देखने लगा।

गोविन्द के दिमाग़ में नक्सा बनता जा रहा था—'तारामती जगत पुर पहुँच रही है, वह अपने महल में प्रवेश कर रही है, राजा शिव प्रसाद जी से अभिवादन कर रही है।

अपने भाई विजय से हँसती हुई मिल रही है। नैनीताल की रंगीनियों के बारे में बातें कर रही है। विजय, जगतपुर के बारे में सब बातें कह रहा है, इन्द्रा को कह रहा होगा, ज़ैनब और किशन का नाम ले रहा होगा। गोविन्द को न जाने कितनी गालियाँ देता होगा। उसका भागना, छिपना बताता होगा। उसी समय तारामती ने कहा होगा—मैंने ऐसे-ऐसे एक जगतपुर के नौजवान को रास्ते में देखा है

वह अजीब युवक था। उसकी बातों से विजय ने सिद्ध कर लिया होगा कि वही गोविन्द था, वही बदमाश था।

उसी समय गोविन्द के कानों में सुनाई दिया जैसे उसके नज़दीक कोई बाँसुरी बजा रहा है। वह घूमकर झील, फिर आगे सड़क की ओर देखने लगा, कोई न था। वह फिर आगे बढ़ने लगा, सहसा उसे सुनाई दिया कि झील के पूर्वी किनारे के सघन जंगल से कुछ औरतों के गाने का सम्मिलित स्वर आ रहा है। उनके गीत के संगीत और मृदुल लहरियों में जैसे असंख्य वाद्य-यंत्रों की मीठी ध्वनि मिली थी। गीत के उतार चढ़ाव में जैसे जंगल के प्रत्येक पत्ते, पत्ती घूँघुर, पहनकर नाच रहे हों। इसमें इतना अपूर्व आकर्षण था कि गोविन्द घूम घूमकर जंगल की ओर निहारता और खड़ा होकर इस सम्मिलित गीत की लहरियों में बह जाता।

गोविन्द से रहा नहीं गया उसके पैर सड़क से नींचे, जंगल की ओर बढ़ गए। गीत के साथ साथ, अब बाँसुरी की तान और भी उभरती आ रही थी। क्षण में उसने दूर से देखा, जंगल के एक छायादार, कुछ खुले हुए भाग में कुछ लड़कियाँ नृत्य कर रही हैं, कुछ गा रही हैं, और कहीं कोई छिपकर बंशी बजा रहा था। गोविन्द की हिम्मत न वह सहसा उस स्थान पर पहुँच जाय। वह एक पेड़ की छाया से यह अनुपम दृश्य देख रहा था और उनकी स्वतंत्र कला पर मुग्ध हो रहा था।

सहसा गोविन्द चौंक उठा, उसके पास ही कहीं पायल की झन्कार आ रही थी। उसने घूमकर पीछे देखा गाँव की ओर से एक नौजवान, दूल्हन सी औरत सर पर एक काली सी मेढुकी लिए हुए, बसंती घाघरे और नीले दुपट्टे में, अजीब अदा से पायलों को बजाती हुई गोविन्द के पीछे पहुँच चुकी थी और उसने सहसा गोविन्द से पूछा "क्या देख रहे हो जी?"

"कुछ नहीं।" गोविन्द ने घबराकर कहा और पीछे मुड़ने लगा। औरतों को हँसी आ गई और वह गोविन्द को देखती हुई खिलखिला कर हँस पड़ी।

"डर गए क्या जी?" औरत ने कहा, "देखना हो तो, चलो पास से देखो आज हम लोगों का यहाँ 'रास त्योहार' हो रहा है।"

"रास त्योहार!" गोविन्द को आश्चर्य हुआ और वह चुपचाप औरतों के साथ आगे बढ़ गया।

नृत्य और गीत चल रहा था पर, बंशी बजाने वाले का कहीं पता न था। गोविन्द की आखें उसी छिपकर बंशी बजाने वाले कृष्ण को ढूँढ रही थीं। गोविन्द और वह आई हुई औरत दोनो जामुन के पेड़ के नीचे बैठे थे। थोड़ी देर के बाद नृत्य समाप्त हुआ, गीत बंद हुआ। सब औरतें हाथ जोड़कर, नतमस्तक चुप हो गईं। और फिर गोविन्द ने देखा जंगल के एक सुन्दर झुरमुट से एक अल्हड़ लड़की कृष्ण बनी हुई, हाथ में बाँसुरी और सर पर मुकुट और कटि में पीत काछनी बाँधे हुए, साथ में एक लड़की लिए हुए औरतो के गोल में प्रकट हो रही है।

"ये कौन हैं?" गोविन्द को बिना पूछे रहा नही गया।

"ये कृष्ण और राधा हैं, गोपियों के बीच में प्रकट हो रहे हैं!" औरत ने उत्तर दिया।

उसी समय तमाम औरतें, कृष्ण और राधिका से मिलकर दिल खोल कर हँसने लगीं और क्षण भर में जंगली फूलों को तोड़ तोड़कर अपने अंचल में बटोरने लगीं।

"यह क्या है?" गोविन्द ने पूछा।

"अब हम लोगों की 'रास पूजा' समाप्त हुई," औरत ने कहा, "आज शाम को हमारे गाँव गनेशपुर में एक प्रसन्नता मनाई जायगी, उसी समारोह के लिए ये फूल इकट्ठा किए जा रहें हैं।"

गोविन्द अपने मन में अपूर्व प्रसन्नता छिपाए, इन बन-देवियों को अनन्य कामना देता हुआ उठ खड़ा हुआ और जाने लगा। उसी समय गोविन्द ने एक सम्मिलित आवाज़ सुनी—"इसे पकड़ो ! पकड़ो, यह कौन जा रहा है ?"

गोविन्द मुस्कराता हुआ रुक गया और उसके पास घिर आई हुई लड़कियों को देखने लगा।

"तुम कौन हो ? और क्यों यहाँ आए ?" कृष्ण ने पूछा। गोविन्द मुस्कराता हुआ चुप था।

"इसे सजा मिलनी चाहिये।" राधा ने कहा।

"नहीं, नहीं इसे भरपेट दही खिलाकर नाच नचाया जाए।" सब सखियों ने कहा।

"नहीं, नहीं, इसके पैर में शायद चोट लगी है !" उस औरत ने कहा।

गोविन्द, बन देवियों से घिरा था। वह कितनी क्षमा माँगने पर भी जा नहीं पाता था। उसे दही और गुड़ भर पेट खाना पड़ा और यह वादा करना पड़ा कि वह गनेशपुर आज शाम को ज़रूर आएगा।

* * *

उस शाम को गनेशपुर में जैसे दिवाली थी। सब की झोपड़ियों, कुरियों तथा खपरैलों में दीपक जल रहे थे। सारा गाँव साफ़ सुथरा था। गाँव के बीचो-बीच एक मैदान में सारा गनेशपुर, सजधज कर बैठा था। बूढ़ों, साठसालों के सर पर पगड़ी, शरीर पर फेरन और मिर्जई, कमर में लपेटन ,और ओठों पर मुस्कराहट थी। जवानों के सर नंगे, बदन पर कुर्त्ते, दो कच्छी धोतियाँ, वदन में मस्ती और बाहुओं में फड़कन थी। बच्चों के शरीर पर नंगापन, पैरों में धूल और ओठों पर गीत बह रहे थे।

बूढ़ी औरतों के शरीर पर झुल्वे, बारहगजी साड़ियाँ और मुख पर ज़िन्दगी थी। दूल्हन और नवजवान लड़कियाँ घाघरें, लंहगे

और कब की रक्खी हुई साड़ियाँ पहन रक्खी थीं। बदन पर चोली, अँगियाँ, और सर पर ओढ़नी दुपट्टे और घूंघटों में दीपक जल रहे थे। इनके ओठों पर मुस्कराहट थी आँखों में बाँकी चितवन और मुख पर खुशी की लाली थी।

बीचो बीच में थोड़ी चौकोर भूमि खोद दी गई थी और खेत की तरह बना दिया गया था। खुदी हुई धरती पर फूल बिखरे हुए थे। इसके किनारे बूढ़े बैठे थे फिर नौजवानों की ग़ोल बैठी थी, किनारे-किनारे घरों के दरवाजों पर दूल्हने खड़ी थीं, बरामदों में लड़कियाँ खड़ी थीं, बाहर बच्चों की हँसती हुई कतार लगी थी। लगता था अभी सब के सब एकस्वर में गाने वाले हैं, एक ताल पर नाचनेवाले हैं।

उसी समय गोविन्द वहाँ दिखाई पड़ा और सारे गनेशपुर का अभिवादन किया। और अश्चर्य चकित खड़ा रह गया।

"आज हमारी धरती की पूजा है।" बूढ़े मुखिया ने गर्व से आगन्तुक को बताया।

"धरती का समारोह है।" नौजवान सरपंच ने मुस्करा कर कहा।

"किस संबंध में है?" गोविन्द ने पूछा, "गनेशपुर स्वर्ग तो नहीं?"

"रुकिए! मैं बताता हूँ!" मुखिया ने हाथ में अखबार ले लिया। और ज़ोर से कहने लगा—"गनेशपुर! गनेशपुर के नौजवान!! इस अखबार की इस मोटी लाइन को पढ़कर इन्हे सुनादो!"

बूढ़े नौजवानों को देखते रह गए। नौजवान बच्चों को देखने लगे और दूल्हने अपने-अपने को देखने लगीं। लड़कियाँ गोविन्द को देखने लगी। सारे गनेशपुर में एक जोश उठा, सब मुस्कराए, फिर सब एक दूसरे को देखने लगे। फिर सब अपने-अपने पर तिलमिला उठे और कोई अपना सर मीचने लगा कोई हाथ मलता रह गया। जैसे गनेशपुर की आँखों से आँसू बहने लगे थे और पथराई हुई

जबान धीरे से कह रही थी—"हममें से कोई नहीं पढ़ सकता, सब की आँखे फोड़ दी गई हैं।"

गोविन्द ने झट आगे बढ़ कर। बूढ़े के हाथ से अखबार ले लिया और उसकी आँखे क्षणभर के लिए अखवार की मोटी पंक्ति पर स्थिर हो गईं। ओंठ बरबस मुस्कराने लगे, गालों पर बरबस जवानी उठने लगी। उसी क्षण गोविन्द ने पढ़ा—"धरती के मालिक किसान।"

"जमींदारी का उन्मूलन।"

गनेशपुर एक स्वर में चिल्ला उठा—" फिर से पढ़ो, फिर से दुहराओ।" गोविन्द नौजवानों से घिर गया और उसे लाखवार इन्ही दो पक्तियों को दुहरानी पड़ी। इसके बाद गोविन्द को सरकार की पूरी घोषणा, सम्पूर्ण निर्णय को पढ़ना पड़ा। गोविन्द को लग रहा था जैसे उसे कहीं स्वर्ग मिल गया उसके सुनहरे स्वप्न सत्य हो गए। धरती, धरती पर रहने वालों की हो जायगी !, धरती, धरती पर मरने वालों की हो जायगी ! धरती किसानों की हो जायगी, अपनी धरती, अपनी हो जायगी। गोविन्द के शरीर के अणु-अणु से पुकारे आने लगी। उसके ओठों पर उसके अरमान तड़पने लगे। उसकी इच्छा होने लगी कि वह इस खोदी हुई, सजाई हुई धरती में घुस जाय, नाचते-नाचते बेहोश हो जाय।

"यह अख़बार, आप लोगों को कहाँ से मिला?" गोविन्द ने हँसते हुए पूछा।

"यह अखबार हमें कलक्टर साहब ने दिया है!" एक ने कहा,

"नहीं, हमें तो यह अखबार गाँधी बाबा ने दिया है।"

दूसरे ने कहा। "नहीं, यह अखबार सरकार ने बँटवाया है।"

तीसरे ने कहा "नहीं, इस अखबार को मैंने एक रुपए में स्टेशन पर खरीदा है।" अन्य ने कहा और सब के सब अपने अखबार दिखाने लगे।

गोविन्द प्रसन्नता से पागल हो उठा, वह शीघ्रातिशीघ्र अपने

जगतपुर लौट जाना चाहता था। वह इससे बड़ा समारोह, धरती का इससे भी बड़ा श्रृगाँर करना चाहता था। सब गावों में उत्सव, इन्ही ख़ुशियों से, इन्हीं वन के फूलों से, इन्हीं गानो से; गोविन्द एक नयी सुबह बन जाना चाहता था। सारी धरती की पूजा करने को सोचने लगा था।

गोविन्द, गनेशपुह के नौजवानो की नाच देख रहा था। गाती हुई लड़कियों की स्वर लहरियों में डूबता जा रहा था। लग रहा था कितने दिनों के संगीत, कबसे सोए हुए गीत, पैरों में कब की मुरझाई हुई नृत्य की मुद्राएँ आज स्वतः अपना-अपना प्रदर्शन पर रही थीं।

गोविन्द की आँखें अखबार की उन्ही दो मुख्य पक्तियों पर फिर रही थीं; सहसा उसकी आँखें दाएँ स्तभँ की मुख्य पक्तियों पर और एक बार फिर स्थिर हो गई। गोविन्द पढ़ने लगा—ज़मींदारी सदा के लिए लुप्त होगी किसान भूमिधर बनेंगे, लगान का दसगुना देकर, किसान अपनी धरती का मालिक, राजा, भूमिधर।

गोविन्द इन पक्तियों को धीरे-धीरे से ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने लगा। धीरे-धीरे नौजवानों का नृत्य बँद हो गया। दूल्हन और लड़कियों के गीत रुक गए। सारा गनेशपुर चिन्तित होकर सोचने लगा—भूमि-धर! लगान का दसगुना—फिर किसान अपनी धरती का मालिक।

गनेशपुर क्षणभर के लिए, चुप होकर गोविन्द की ओर देखने लगा। और गोविन्द ने समझाया "अपनी धरती को अपनी धरती बनाओ और इसी धरती से दसगुना क्या सौगुना कमाकर सब का पेट भर दो'''महादानियों के लिए क्या? अपनी धरती तो अपनी मिली-कब की बिकी हुई निधि, अपना धर्म फिर हाथ तो आया।"

सारा गनेशपुर अपने उत्सव में, अपने अपूर्व समारोह में नाचकर, गाकर सो गया। गोविन्द को नींद नहीं आ रही थी, उसे उसका जगतपुर बुरी तरह से याद आ रहा था।

सुबह होते-होते गोविन्द गनेशपुर से, जगतपुर की ओर आठ

मील चल चुका था। वह अब भी बहुत उदास था परउसके पैरों में मस्ती थी, ओठों पर मुस्कराहट थी; लेकिन वह अब भी इस उधेड़बुन में पड़ा था कि उसका जगतपुर में जाना ठीक होगा कि नहीं। लेकिन उसके पैर बहुत तेज़ीसे अपने गाँव की ओर बढ़ रहे थे।

उसी समय अचानक गोविन्द ने देखा, उसके पिता-पं० महेशदत्त जी और बहन सूरा उसकी ओर बढ़े चले आ रहे थे।

गोविन्द दूर ही से उन्हे पहचानकर खड़ा हो गया और चिन्ता करने लगा। सहसा पिता जी की आर्त्त-पुकार आई—"गोविन्द।" गोविन्द ने आगे बढ़कर पिता जी के चरण को स्पर्श किया और फिर बहन सूरा के पवित्र-चरणों को अभिवादन दिया। पिता जी की आँखें डबडबा आई थीं, बहन सूरा बहुत प्रसन्न थीं। गोविन्द क्षणभर के लिए चुप रहा। फिर उसने पूछा—

"सब आनन्द है न!"

गोविन्द को कोई उत्तर न मिला। उसने फिर बहन को पकड़कर पूछा—"जगतपुर आनन्द से है!"

"इसका उत्तर मैं क्या दे सकती हूँ?" सूरा ने कहा," गोविन्द भइया, तुम्हे स्वयं जगतपुर में चलकर देखना है कि जगतपुर कैसे है, तुम्हारे छोटी पट्टी कैसे है! और सब कैसे हैं।"

"तुम कहाँ थे अब तक?" पिता जी ने पूछा।

"मैं इधर उधर चल फिर रहा था।" गोविन्द ने कहा।

"अच्छा, चलो, जगतपुर चलें।" पिता जी ने गोविन्द की बाँह को पकड़ते हुए कहा।

गोविन्द, सूरा दीदी और पिता जी बराबर-बराबर सड़क से चल रहे थे। गोविन्द अचानक प्रसन्नता से सिहर उठा और पिता जी को पकड़कर कहा—"पिता जी! ज़मींदारी खत्म होने जा रही है।"

"सच! ज़मींदारी खत्म हो जायगी?" पिता जी प्रसन्नता से

अन्वाक् रह गए। गोविन्द वहीं बैठकर पिता जी और दीदी को सामने के अखबारों को दिखाने लगा और स्वंय ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने लगा।

"इस खबर को तुम्हे जगतपुर को शीघ्र देना है, बेटा!" पंडित जी में जीवन आ रहा था।

"गोविन्द! तुम्हें जल्द जगतपुर चलना है।" दीदी ने कहा।

"लेकिन जगतपुर तो अभी अन्धा है दीदी!" गोविन्द ने उठते हुए गंभीरता से कहा। "उसे अपने धर्म का क्रोध होगा गुमराह दोस्तों के दिमाग़ में अपनी विजय की बातें, विजय से उत्पन्न किया हुआ क्रोध उबल रहा होगा। अभी जगतपुर मेरी खोज में होगा कि कहीं गोविन्द मिलता तो उसे एक दिन चुपके से अपने रूठे हुए देवता को बलि दे दी जाती।"

उसी समय गोविन्द के मस्तिष्क में ज़ैनब यकायक आ पड़ी और उसने बच्चों की तरह पूछा—

"पिता जी! ज़ैनब कैसे है?"

"ज़ैनब अच्छी तरह है!" पिता जी ने कहा, "लेकिन जगतपुर की उलझने बढ़ गई हैं, और बढ़ती जा रहीं हैं, तुम्हे जगतपुर पहुँचने पर सब मालुम हो जायगा।"

"लेकिन गोविन्द भइया! तमाम परिस्थितियों के अतिरिक्त, "सूरा दीदी ने कहा, "तुम्हें एक बहुत बड़ा सहायक मिल गया है।"

"वह कौन दीद!" गोविन्द ने आश्चर्य से पूछा।

"इन्द्रा, लाल साहब की लड़की हृदय से तुम्हारा, ज़ैनब का पक्ष ले रही है।"

गोविन्द के चलते हुए पैरों में और मस्ती आ गई। उसके फड़कते हुए ओंठ चाह रहे थे कि वे कोई गीत गाएँ। उसी समय गोविन्द को फिर अपनी कटु वास्ताविकता याद आ गई, और उसने पिता जी से पूछा, "पिता जी, में क्रोधित जगतपुर को कैसे समझाऊँगा? उनकी हिंसा की प्यास कैसे बुझेगी?..मैं कैसे उन्हें समझाऊँगा?"

पिता जी सोचते हुए चल रहे थे, गोविन्द अपने हाथों को मीचता हुआ चल रहा था। सूरा दीदी दोनों को देखती हुई चल रही थी।

"देव-मन्दिर में गंगा जल उठवा दिया जायगा।" पिता जी ने—सोचते हुए कहा।

"नहीं, पिता जी! विजय गंगा जल उठाने को कौन कहे, वह अपने षड्यंत्र की पुष्टि के लिए न जाने क्या-क्या कर सकता है!"

"लेकिन तुम तो सच्चे हो, गोविन्द भइया!" सूरा दीदी ने उत्साह से कहा, "तुम खुद कोई रास्ता निकाल सकते हो, फिर तो तुम्हे आज कल में जगतपुर को एक अपूर्व सन्देश देना है—जिसमें युगों कि दुश्मनियाँ धुल सकती हैं, जिसमें आपस का द्वेष और कलह स्वयं नष्ट हो सकता है, जिसमें प्रसन्नता और खुशी का इतना बड़ा खजाना भरा हुआ है कि जगतपुर विजय के उत्पात को भूल जायगा।"

"वह कौन सा सन्देश है, सूरा दीदी!" गोविन्द ने रुक कर पूछा।

"इतनी देर में भूल गए!"

"ज़मीदारी उन्मूलन का सन्देश! धरती, धरती वाले की हो जायगी, इसका सन्देश!"

गोविन्द ने बढ़कर सूरा दीदी का हाथ चूम लिया और चलते चलते सोचने लगा और क्षणभर के बाद, गोविन्द मज़बूती से सूरा दीदी के हाथ को पकड़ कर तथा पिता जी को रोककर चुप हो गया और न जाने क्या सोचने लगा।

"क्या सोचने लगे?" सूरा दीदी ने पूछा।

"बहन, मेरे दिमाग में, कभी कभी सोचते सोचते जो शंकाएँ उठा करती थीं, वे इस समय न जाने क्यों, बहुत तेज़ी से मेरे मस्तिष्क को कुरेद रही हैं। लग रहा है, मेरी शंकाएँ सत्य होंगी!"

"आख़िर बात क्या है, मुझे भी बताओ बेटा?" पंडित जी ने पूछा।

"पिता जी," गोविन्द ने अपूर्व गम्भीरता से सोचते हुए कहा,

"मुझे लगता है कि राजा साहब, और राजकुमार को ज़मींदारी उन्मूलन की ख़बर मालूम थी, और यह भी शायद मालूम था कि लगान का दसगुना जमाकर किसान अपनी भूमि का राजा बन जायगा। इसलिए पिताजी, आपको याद होगा कि कितने दिन हुए राजा ने जगतपुर में अख़बार नहीं आने दिया,...... और मुझे," गोविन्द सोचते सोचते फिर चुप हो गया, और पागलों की तरह बहुत दूर देखने लगा फिर उसने और गंभीरता से कहना शुरू किया, "और मुझे यह लगरहा है कि राजा ने ही समझ बूझकर जगतपुर की फस्ल नष्ट करा दी होगी—ताकि किसान भूमिधर न बन सकें।"

लेकिन कैसे नष्ट करायी होगी?" पिता जी ने पूछा।

"शासक और राजा का दिमाग़ मामूली नहीं होता पिता जी!"

गोविन्द गम्भीरता से कहता जाता था, "जिस राजकुमार ने एक मामूली सी बात को इतना भंयकर रूप दे दिया इतना बड़ा झूठ, पाप किया है....उसे फसल नष्ट कराने में क्या है—उसने इस बर्ष खेत बोने के लिये बीज के बिसार में, जानबूझ कर कमजोर बीज दिया होगा। हमारे देवताओं, को अप्रसन्न किया होगा।"

"ये बातें सत्य हो सकती हैं!" दीदी और पिता जी ने गम्भीरता समर्थन किया।

"मैं जगतपुर के पागलपन को दूर करने के लिए, इन्ही शंकाओं को उनके सामने रक्खूँगा—इस अखबार के ऐतिहासिक पंक्तियों को पढ़ूँगा और अगर मेरी बातों में सच्चाई होगी; मैं सत्य हूँ...तब जगतपुर अपना दुश्मन स्वयं पहचान लेगा नहीं तो मृत्यु से क्या डर? इससे कोई कहाँ भाग सकता है?"

गोविन्द एक अजीब जीवन के साथ फिर आगे बढ़ने लगा। उसके पैरों में मस्ती के साथ गम्भीरता थी। उसमें धीरे धीरे सत्य का उत्साह आ रहा था।

गोविन्द पिताजी, सूरा दीदी तीनों सोचते हुए गम्भीरता से आगे बढ़ते जा रहे थे। गोविन्द को लगा रहा था कि वह कोई प्रकाश लेकर जगतपुर लौट रहा है वह बहुत तेज़ नहीं चल रहा था फिर भी रास्ता। खूब तेज़ी से खत्म हो रहा था।

रोनी नदी के किनारे आकर एक बार गोविन्द ने अपने उस जगतपुर को देखा जो उसकी मातृ-भूमि है, फिर उस जगतपुर को देखा जो उसके जीवन का प्यासा बनकर, खूँखार जानवर की तरह, गोविन्द को खाने के लिए दौड़ा था। गोविन्द ने जगतपुर के दोनों रूपों का अभिवादन किया।

इस समय संध्या हो आई थी। रोनी मुस्कराती हुई बह रही थी। पंडित महेशदत्त इस पार से घाट पर खड़े होकर नाव वाले को पुकारने लगे। उधर से कोई आवाज़ नहीं आ रही थी; यद्यपि उस पार मल्लाह तम्बाकू पीं रहा था। गोविन्द ने फिर जोर से पुकारा, "मल्लाह! क्यों नहीं इस पार नाव लाते?"

"पंडित जी, मैं आप लोगों को नहीं उतार सकता।" मल्लाह की आवाज़ आई। गोविन्द को इस पर लगा जैसे कोई मज़ाक कर रहा हो।

"क्यों नही उतार सकते?" पंडित जी ने पूछा।

"राजा साहब की आज्ञा है!" उधर से आवाज़ आई।

"इसके अलावा भी, उन्होंने कोई और आज्ञा दे रक्खी है!" गोविन्द ने पूछा।

"जी हाँ, मल्लाह ने खड़े होकर आवाज़ दी, "उन्होंने तो यहाँ तक आज्ञा दी है कि उन लोगों को उस पार देखते ही यहाँ खबर देना!"

"और भी कुछ!" गोविन्द गम्भीर होता जा ा था। "गुमराहो! अपने दुश्मन की वफ़ादारी कब तक करोगे!" यह कह कर गोविन्द ने अपना कपड़ा उतारा और सिर्फ एक अंगोछा पहनकर रोनी में कूद पड़ा और क्षण भर में इस पार आ गया। उसने अपूर्व विश्वास और हिम्मत से नाव पकड़ी और इस पार लाने लगा। मल्लाह चिल्लाता

हुआ नीची पट्टी, राजा साहब के यहाँ भागने लगा और रास्ते भः ज़ोर ज़ोर से चिल्लाकर कहने लगा—"पंचो! जगतपुर का दुश्मन पापी गोविन्द गाँव में आ रहा है।" "गोविन्द आ गया! पकड़ लो उसे पंचो!... रोनी को पार करते हुए आ रहा है।"

गोविन्द उसकी तूफानी आवाज़ को सुन रहा था और जल्दी-जल्दी किश्ती पर पिताजी और दीदी सूरा को बैठाए हुए इस पार आ रहा था।

सूरज मुस्कराता हुआ डूब रहा था और उसकी अन्तिम अरुणाई गोविन्द के मुख पर पड़ रही थी। गोविन्द का चेहरा पसीने की बूँदों से तर था; उस पर, डूबते हुये सूरज की गुलाबी किरनें इस तरह से लग रही थीं जैसे प्रभात में कोई फूल खिल रहा हो।

गोविन्द इसपार आचुका था। गाँव में शोर मचने लगा। कुछ अस्पष्ट पुकारें भी सुनाई देने लगी। गोविन्द रोनी की तलहटी को पारकरके जगतपुर के मैदान से गाॅव की ओर बढ़ रहा था। सहसा उसने सामने देखा कि बड़ी पट्टी के ब्राह्मण लोग—जिसमें से कोई गोविन्द का काका था, कोई भइया था, कोई मौसिया था कोई भाई था कोई और सम्बन्धी था—सब के सब शोर करते हुए गोविन्द के सामने आ पँहुचे। गोविन्द सूरा दीदी और पिता जी को अपने पीछे करके गंभीरता से खड़ा हो गया। गाँव से आवाज आती जा रही थी इसके बाद नीची पट्टी के लोग दौड़ते हुए घिर रहे थे। शेख पट्टी के भी नौजवान आ पहुँचे थे। लोगों की जबान पर सिर्फ दो बातें आ रही थी—"पकड़ो! पकड़ो!!

मारो! मारो!!"

गोविन्द जगतपुर से घिरा हुआ खड़ा था उसकी खामोश आँखें दो बातों को ढूढ़ रही थी—विजय और राजा साहब आ गए की नहीं! उसकी छोटी पट्टी का किशन और उसके दोस्त आगए कि नहीं! लेकिन गोविन्द इन दोनो बातों को नहीं देख पा रहा था। इसलिए बहुत देर तक चुप खड़ा था। उससे घिरे हुए लोग गोविन्द को मारने के लिए

चिल्ला रहे थे, लोग गविन्द का बुरी बुरी बातें भी सुना रहे थे। उसी समय कुछ लोगों ने बढ़कर गोविन्द को पकड़ना चाहा। गोविन्द ने उसी क्षण उन्हे दूर करता हुआ हाथ जोड़ने लगा। लेकिन उसने फिर देखा कि उसके पिता जी के हाथ को उसके दो पट्टीदारों ने पकड़-लिया था। ज्यों ही वह पिता जी की ओर बढ़ने लगा, उसे पता लगा कि पीछे से कोई मज़बूत हाथों से उसकी कमर को कसकर खड़ा हो गया है। उस दम गोविन्द के ओंठ कपँ गए और वह अपनी दोनो मुट्ठियों को हवा में बाँधते हुए कड़क उठा—"जगतपुर के दोस्तो ! मेरी एक बात सुनकर मुझे गालियाँ दो ! गुमराह दोस्तो, मैं तुम लोगों के लिए एक चीज़ लाया हूँ; उस चीज़ को लेने के बाद, अपने ख्वाब को सच देखने के बाद मुझ पर लाठियाँ बरसाओ ! जी भरकर अपने क्रोधित देवता की ओर से मुझे सज़ा दो !......उनके सामने मेरी बलि दे दो ! लेकिन मेरी सिर्फ एक बात सुनते जाओ ! नही तो एक गोविन्द के मरने के बाद तुम लोग और अंधेरे में डाल दिए जाओगे।"

शोर करते हुए, चिल्लाते हुए लोग शान्त हो रहे थे और लोगों ने सम्मिलित स्वर में पूछा—"बताओ ! वह कौन सी बात है !"

उस समय गोविन्द ने अपना अख़बार निकाला और जगतपुर के सामने फैला दिया- और कहा," पढ़ लो अपनी गुमराह आँखों से, अख़बार की यह दो मोटी पंक्तियाँ !"

गोविन्द के कमर से वे दो कैसे हुए हाथ दूर हो गए थे। लोग अख़बार को देख-देख मौन हो जाते थे। अभागे जगतपुर की उतनी भीड़ में कोई उन दो मोटी पंक्तियों को पढ़ने वाला नहीं था। जैसे सब की आँखे थीं, पर रोशनी नहीं थी, जैसे सब जी रहे थे पर ज़िन्दगीं मर चुकी थी, जैसे सब शोर करते हुए चिल्ला रहे थे पर जबान नहीं थी। जैसे जगतपुर के राजा ने इस दृष्टिकोण से सब की आँखे अशिक्षा से फोड़ रक्खी थी, सब को अंधकार में रक्खा था कि एक दिन

अख़बार में सुर्ख़ रंग से एक खबर छपेगी, सरकार की एक घोषणा निकलेगी जिसे जगतपुर का कोई देख कर भी न पढ़ पाए।

सारी भीड़ गोविन्द को देखने लगी थी; गोविन्द ने उस क्षण सब को देखते हुए कहा—"भोले दोस्तों! तुम लोगों की आँखों की छीनी हुई उस पाक रोशनी को प्यार उस तालीम को प्यार जिससे तुम कम से कम अपने सत्य हुए सुनहरे स्वप्न को तो पढ़ लेते!"

"तुम्हीं क्यो नहीं पढ़ देते?" लोगों से कड़ी आवाज़ आई, जिसमें पराजय की तिलमिलाहट थी।

"बुलाओ! अपने राजकुमार को! अपने राजा को, और उन्ही से पढ़वा लो, अख़बार की इन पक्तियों को!" गोविन्द ने कहा। "राजकुमार अपने आदमियों के साथ छोटी पट्टी को घेर कर खड़े हैं!" गोविन्द के कानों में यह आवाज़ आई। और वह कुछ क्षणों तक चुप रह गया। लोग सम्मिलत स्वर में चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे "तुम्ही पढ़ दो!" जल्दी पढ़ दो।"

गोविन्द जैसे कुछ सुन ही नहीं रहा था, उसके मस्तिक में यह वाक्य—'राकुमार अपने आदमियों के साथ छोटी पट्टी को घेर कर खड़े हैं।' नच रहा था। गोबिन्द अपने विचारों में तब आया जब उसने देखा कि कोई उसको झकझोर कर कह रहा था "जल्दी पढ़ दो।"

गोविन्द ने कहा, "क्या अख़बार मैं ही पढ़ूँ! क्या मुझपर आप लोगों का विश्वास होगा।"

"होगा!" एक सम्मिलित आवाज़ आई। और गोबिन्द अख़बार की उस ऐतिहासिक पंक्ति को पढ़ने लगा—"ज़मींदारी खत्म होने जा रही है अब धरती-धरती वालों की हो रही हैं! यह घोपणा सरकार ने की है।"

जगतपुर की भीड़ एक क्षण चुप रहकर प्रसन्नता से चिल्ला उठी और गोविन्द से सटकर बार-बार कहने लगी—'फिर से पढ़ो!! और पढ़ो!! समझाकर पढ़ो!"

अँधेरा हो गया था। गोविन्द अखबार की बातें दुहरा सकता था पर अँधेरे में अखबार नहीं पढ़ सकता था। गोविन्द आगे बढ़ने लगा, उसी दम उसने देखा कई आदमी हाथ में रोशनी लिए हुए गोविन्द के पास आ पहुँचे थे। उसने आगे बढ़ते हुए कहा, "आवो; छोटी पट्टी में, राजकुमार के सामने अखबार पढ़ेंगे।"

गोविन्द अपार भीड़ और कोलाहल को लिए हुए छोटी पट्टी पहुँचा। किशन तथा किशन के साथियों को अपूर्व बल मिला। वे सब किशन के दरवाज़े पर विजय तथा विजय के आदमियों से घिरे थे। उस समय अकेले किशन में इतना उत्साह और बल आया कि वह अपने घेरे को तोड़कर गोविन्द से मिलने के लिए आगे बढ़ आया। गोविन्द दौड़-कर अपनी छोटी पट्टी के दोस्तों से लिपट गया। विजय क्रोध से लाल हो रहा था। उसके कँपते हुए ओंठ से गालियाँ निकल रहीं थीं, उसी समय विजय तथा उसके आदमियों से एक ललकार आई—"क्या देख रहे हो, दुश्मन को पाकर कुछ सोचना पाप है!......अपनी इच्छा पूरी कर लो!"

जगतपुर की भीड़ से सिर्फ यह सम्मिलित आवाज़ आरही थी—
"अखबार को फिर पढ़ दो।
उन पंक्तियों को फिर से दुहरा दो!
हमें उस बात को समझा दो!"

गोविन्द जगतपुर की जनता की पुकार भी सुनता था; पर इससे ज़्यादा विजय, तथा विजय के आदमियों की आती हुई ललकार को सुन रहा था। गोविन्द के पिता और सूरा दीदी उसी क्षण किशन के घर चले गए और गोविन्द तथा किशन की आँखें घूरती हुई विजय को देख रहीं थीं।

"क्या देख रहे हो! विजय ने क्रोध से गोविन्द को देखते हुए कहा," मैं तुम लोगों की आँखें फोड़ दूँगा।"

"नहीं सरकार !" जगतपुर की भीड़ के किसी अगुये ने कहा, "हम लोगों की आँखों फूटी ही हैं, इसकी आँखें अभी न फोड़िये, हमें फिरसे इस अखबार की छपी हुई बातें सुननी हैं।"

"सरकार चुप हो जाइए ! हमें गोविन्द की बात सुननी है !" कोई सम्मिलित स्वर में चिल्ला कर कह रहा था।

छोटी पट्टी के दोस्त, गोविन्द को घेरे हुए उत्साह से खड़े थे। वे किसी के हाथ का स्पर्श भी गोविन्द पर नहीं होने देना चाहते थे। सारी भीड़ गोविन्द की बात सुनने की आतुर थी। विजय आश्चर्य्य से इधर-उधर घूम रहा था।

गोविन्द ने सब को समझाते हुए स्नेह से कहा, "भाइयो ! मुझे प्यास लगी है ! अगर आप लोग मुझे दो मिनट की क्षमा देते···तो मैं अभी आप लोगों को सब बातें सुना देता !"

गोविन्द की आँखें, उस क्षण उठकर किशन के दरवाज़े पर टिक-गईं। बहन सावित्री, आँखों में अपूर्व स्नेह और हाथ में कटोरा भर मलाई लिए हुए खड़ी-खड़ी गोविन्द को देख रही थी। दूल्हन भाभी मस्तक पर झीने घूँघट का बल दिए हुए हाथ में गिलास लिए अपने प्यारे गोविन्द को, झट चले आने का मौन इशारा कर रही थी।

गोविन्द किसी तरह दरवाज़े तक आकर झट से मलाई खाकर भर पेट पानी पिया और एक नवीन उत्साह से फिर कोलाहल करते हुए जगतपुर के सामने खड़ा हो गया। उसके आगे पीछे कितनी रोशनी हो रही थी। उस समय उसने लोगों को शान्ति से बैठ जाने की प्रार्थना की और स्वयं खड़ा होकर कहने लगा—"जगतपुर की धरती ! तू सुन ले, आज मैं तेरे सुहाग लौटने का सन्देश सुना रहा हूँ ! जगतपुर के दोस्तो ! धरती के लाल ! सरकार ज़मीदारी तोड़ रही है। जो जिस धरती पर पसीना गिरा रहा है, वह उसकी धरती हो जायगी। अब जगतपुर के राजा किसान होंगे, अब अपनी धरती के मालिक वही होंगे।"

जगतपुर प्रसन्नता से पागल हो रहा था। गोविन्द ने उसी दम एक अख़बार को, क्रोध से टहलते हुए विजय—राजकुमार के पास फेंक दिया और ललकार कर कहा—"अब आप भी पढ़कर जगतपुर को सुना दीजिए।"

विजय ने रुककर अख़बार को देखा और उसके कँपते हुए पैर एक जगह पर स्थिर हो गए। लोगों ने विजय को देखा मानो उसकी आँखें और ज़बान दोनों पथरा गई थीं।

गोविन्द अपनी तेज़ वाणी में कहने लगा, "अब जगतपुर पर उठाए गए तूफ़ान के बारे में जो सच्चाई हो सकती है, उसे सुनिए...और मेरे जगतपुर के भाइयो! फिर मुझे दिल चाही हुई सज़ा दीजिए।"

भीड़ अपनी प्रसन्नता को दबाए हुए चुप थी और अपलक सब गोविन्द को देख रहे थे। गोविन्द कह रहा था, "हमें इतने अंधकार में रक्खा गया था, कि हमें इसका पता न था कि ज़मीदारी टूट रही है। और इधर जब ज़मीदारी टूटने को आ गई तब किस ख़ूबी के साथ राजा ने जगतपुर को एक भारी तूफ़ान में फँसा दिया—और इधर गाँव में अख़बार भी आना बन्द करवा दिया—क्योंकि राजा को रेडियो से, अख़बार से यह ख़बर मालूम हो गई थी कि ज़मीदारी तोड़ दी जायगी—अब राजा भी एक किसान हो जायगा। हर किसान अपनी लगान का दसगुना जमाकर अपनी भूमि का राजा बन जायगा।"

जैसे-जैसे गोविन्द कहता जाता था, वैसे ही जगतपुरवालों पर प्रसन्नता के पागलपन का जादू फिरता जाता था। कब के सूखे हुए ओंठों पर बरबस एक अपूर्व मुस्कान छाती जा रही थी—लग रहा था कि कब की सूखी हुई परती भूमि पर हरियाली आ रही थी। सब के सूखे हुए मन में कुछ लहराता हुआ ओंठों पर गीत बनता जाता था। कब से मरे हुए गुमराह किसानों में ज़िन्दगी आ रही थी। जैसे सब की

उदास आँखों में सौभाग्य के दीपक जलने लगे। सबके मुख अनन्य प्रसन्नता और कौतूहल से इस तरह खुले थे जैसे सीप में गोविन्द की बातें स्वाती की बरसती हुई बूँदें थीं।

गोविन्द कहता जाता था—"एक तो राजा ने ज़मींदारी उन्मूलन की ख़बर जगतपुर में आने नहीं दी। और इसके पहले, किसान जिस फ़सल के आधार पर भूमिधर बन सकता था, उस फ़सल को इन्होंने ही दुश्मनी से नष्ट कराई होगी, जिससे किसान भूमिधर न बन सकें, भूखों मरें और······।"

गोविन्द अपनी बात कह ही रहा था कि कहीं से गति से फेंका हुआ एक पत्थर आकर उसकी छाती पर लगा। सहसा किशन गोविन्द के सामने चिल्लाता हुआ आगया। पत्थर अब भी कहीं से बराबर आ रहे थे। लोगों की शान्ति भंग हुई। किशन के गोल के साथ जगतपुर के और भी, हर पट्टी के नौजवानों का ख़ून खौल गया। हर एक आदमी में क्रोध आ गया कि पत्थर फेंकने वाले, सभा को भंग करने वाले की पसली तोड़ दी जाय।

लोगों को पता चला कि विजय ने अपने आदमियों से सभा को भंग करने के लिए गोविन्द पर पत्थर फेंकवाया है। किशन ने बहुत ढूँढ़ा; विजय वहाँ से चला गया था। नीची पट्टी का कोई भी वहाँ नहीं था। लेकिन गोविन्द की प्रसन्नता और बढ़ गई थी जैसे किसी ने उसे जीत के पुष्पों से मारा हो। विजय की यह चाल उसे मंगलमय लगी।

अब जगतपुर का कुछ भाग फुसफुसाता हुआ राजा और राजकुमार को गालियाँ देने लगा, लोग गोविन्द से घिरे हुए और मंत्र-मुग्ध हो गए। गोविन्द ने किशन को अपने पास बुलाकर धीरे से उसके कान में कहा—"तुम जल्दी शेख़ पट्टी जाओ !••जाकर ज़ैनब को देखो•••वहीं उसके घर रहो।"

किशन कुछ आदमियों को लेकर शेख पट्टी चला गया। और गोविन्द फिर कहने लगा—"हाँ, दोस्तो। इस समय तुम लोग अपनी आँखों से देख रहे हो, जगतपुर का दुश्मन कौन है ?..राजा और राजकुमार की दिली इच्छा है, कोशिश है कि मैं मर जाऊँ..मुझे मार दिया जाय, ताकि मैं अपनी बात को जगतपुर से न कह पाऊँ..लेकिन दोस्तो ! एक और बात कह लेने के बाद अगर मेरी मौत हो जाती है तो मुझे अपनी ज़िन्दगी की कोई परवाह नहीं।"

"अत्याचारी का नाश हो !" भीड़ से एक आवाज़ आई, लोगों ने सम्मिलित स्वर में कहा—"हमें सब बातें सुनाओ !"

गोविन्द गंभीरता से कहने लगा, "मुझे लगता है कि जगतपुर की यह फ़सल राजा ने नष्ट कराई होगी !...जिससे जगतपुर अपनी विपत्तियों में पड़ा रहे..कोई अपनी धरती का राजा न बन जाए ! इसी के लिये इन्होंने हमको और शरीफ़ ज़ैनब को बदनाम भी किया है। हमें और ज़ैनब को बदनाम करने के पीछे इनके दो दृष्टिकोण रहे होंगे। पहला हिन्दू मुसलमान में साम्प्रदायिक दंगे हो जायँ, दूसरा जगतपुर में दो क्रान्तिकारी विचार वाले ज़िन्दा न रहें।"

"ओ, ओह ! हमारी फ़सल को राजा ने नष्ट कराई होगी ! लोगों ने करुणा के निःस्वास भरे और आश्चर्य से पत्थर की तरह चुप हो गए।

गोविन्द कहने लगा, "हाँ, दोस्तो ! राजा ने किस चालाकी से अपने राजकुमार द्वारा, हमें और ज़ैनब को नष्ट करने के लिए..जगतपुर को एक जीता-जागता टीला बनाने के लिए; तुम लोगों के धार्मिक विश्वास का नाज़ायज़ फ़ायदा उठाया है।...दोस्तो ! जगतपुर की फ़सल, मुझे लगता है की राजा ने ही नष्ट की होगी "

लोग पत्थर की मूर्तियों की तरह मुख खोले हुए, उन्मुक्त पलकों से गोविन्द को देख रहे थे। गोविन्द कहने लगा—"आदमी ही राक्षस बनकर हमारी फ़सल को खा सकता है, जिससे हम अपनी धरती के

राजा न बन सकें और यदि बन भी सकें, भूख से जी भी सकें तो राजा के कर्ज़ से, राज्य के उधार अन्न से; जीवन भर जगतपुर उनके पैरों का कीड़ा बना रहे।"

भीड़ चुप थी। जैसे सब गोविन्द को स्वीकार कर रहे हों।

लेकिन दूसरे क्षण, भीड़ के कुछ भाग से एक दूसरी आवाज़ उठी—"लेकिन राजा ने फ़सल कैसे नष्ट कराई होगी?"

इस आवाज़ में बहुत गंभीरता थी। गोविन्द को अपने अन्दाज़ पर भय लगने लगा। वह कुछ क्षणों के लिए चुप रहा फिर हाथ मलते हुये कहने लगा—"दोस्तो, मैं कैसे का उत्तर, निश्चित रूप से नहीं दे सकता, लेकिन मेरे अन्दाज़, चिन्तन और विश्वास को पार कर आते हैं।..क्या मैं आप लोगों से पूछ सकता हूँ कि आप लोग अपने खेतों में बोने के लिए बीज कहाँ से लेते हैं?"

"हम लोग बीज, राजासाहब के यहाँ से बिसार में लेते हैं।" भीड़ से कुछ लोगों ने कहा।

"तो इस बार बीज का अन्न ख़राब दिया गया है।" गोविन्द ने कहा।

"कैसे, यह बात दिमाग़ में नहीं आ रही है," भीड़ से एक आदमी ने खड़ा होकर कहा।

"ख़राब बीज की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसकी बुराई फ़सल कटने के बाद प्रकट होती है।"

"नहीं, कुछ नहीं, हमारे देवता अवश्य रूठे हैं! जगतपुर पर धरती माता का कोप हो गया।"

यद्यपि यह आवाज़ धीरे से उठी थी लेकिन इस आवाज़ में गंभीरता से अधिक क्षोभ की भावना थी। और इससे भी अधिक इस आवाज़ में समस्त भीड़ के विश्वास का सम्बल था। इस विरोध भरी आवाज़ में एक सामुहिक विश्वास की दृढ़ता थी, एक परंपरा की चेतना थी एक अंधे धर्म-विश्वास का पागलपन था।

गोविन्द चुप हो गया। उसको समस्त बातें, समस्त तर्क एक-एक करके भूल रहे थे। आखिर में उसने अपने हाथों को ज़ोर से मींचते हुये, अपूर्व गंभीरता से कहा, "यदि मैं दोषी हूँ, तो देवताओं और, धरती को प्रसन्न करने के लिये अपनी बलि स्वयं दे सकता हूँ।"

लोग चुप हो गये और फिर आपस में धीरे-धीरे स्फुट स्वर से बातें करने लगे। गोविन्द लोगों से उत्तर के लिये, बीच में बार-बार पूछता रहता था, अंत में बड़ी पट्टी के एक ब्राह्मण अगुए ने गंभीर स्वर में पूछा—"लेकिन ज़ैनब क्यों हमारे मंदिर के खंडहर में गई? हमारे देवता इसे किस तरह क्षमा कर सकते हैं?"

"आप लोगों ने कभी अपने खंडहर के देवता को पान-फूल भी पूछा है?" गोविन्द ने कहा, "कभी सोचा है कि उस खंडहर में भी अभी तक देवताओं का निवास हैं?"

"इसमें सोचने की क्या बात; वह हमारा देवस्थान है, वहाँ के देवता को हमारा जगतपुर वार्षिक पूजा देता है।"

"तो शेष वर्ष भर वहाँ के देवता भूखे रहते हैं; सिर्फ उन्हें एक दिन भूख लगती है?" गोविन्द के तर्क में बहुत गंभीरता थी।

"हमारे देवता आदमी नहीं हैं कि उन्हें हरदम भूख लगती रहे, वे समुद्र की तरह गंभीर और आकाश की तरह उदार हैं!"

"इसी बात को मैं आप लोगों की ज़बान से सुनना चाहता था," गोविन्द ने कहा, "वास्तव में हमारे देवता समुद्र और आकाश की तरह गंभीर और उदार हैं, इनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान दो नहीं हैं; हमारी तरह इन्हें छोटी-छोटी बातों पर क्रोध नहीं आता—हमारे देवता दया और कल्याण के प्रतीक हैं; विध्वंस के नहीं! ऐसे देवता को, ज़ैनब उस रात को फल और फूल चढ़ाने गई थी—यह कौन-सा अक्षम्य अपराध है? फिर तो आप लोगों का विश्वास ही है कि हमारे देवता आदमी नहीं उनकी उदारता कितनी असीम है, उनकी सीमा कितनी व्यापक है।"

"नहीं, बिल्कुल नहीं, हम यह नहीं सुन सकते !" लोग उठकर जाने के लिए मुड़ रहे थे और असन्तोष की वाणी से कहते जा रहे थे, "हम पर देवताओं के क्रोध का चक्र गिरा है, जगतपुर पर अन्याय हुआ है, तुम लोगों ने बहुत बड़ा अपराध किया है।··हम कुछ नहीं सुन सकते !"

भीड़ असन्तोष की पीड़ा लिए हुए अपने-अपने घर जाने के लिए, तितर-बितर हो रही थी; उसी समय गोविन्द ने फिर कहा "लेकिन इस सचाई का प्रमाण भी दिया जा सकता है !"

"यह कैसे ?"

"हम लोग भदईं फ़सल नए बीज से बोएँगे और फिर उसको भी देखेंगे, अगर हमारी धरती क्रोधित है तो इसी तरह वह फ़सल नष्ट हो जायगी; और मैं स्वयं अपनी बलि देवताओं को दूँगा। और अगर नयी फ़सल सफल हुई—तो राजा का अपराध, उनकी दूर की चाल सिद्ध हो जायगी।"

भीड़ के लोग इधर-उधर तितर-बितर होकर भी गोविंद की बात सुनते जा रहे थे। विद्रोह की झुंझलाहट लिए भी, इस अपूर्व जादू भरे संदेश को सुनते-सुनते लोग चुप होकर एक बार फिर गोविंद को देखने लगे थे।

इन देखने वालों में बड़ी पट्टी के ब्राह्मण अगुए थे, पंडित थे, ज्योतिषी थे, जिन्हें बिना पढ़े-लिखे इतनी उपाधि परम्परा से मिलती चली आ रही थी। इनके मन में गोविन्द के प्रति द्वेष था, परंतु गोविंद के दिए हुए संदेश के प्रति उनकी आत्मा में प्रसन्नता थी। इन देखने वालों में शेख़ पट्टी के बाँके सरदार भी थे, मियाँ लोग भी थे, हल जोतने वाले भी थे, कारीगर भी थे। इन अपलक देखने वालों में, छोटी पट्टी के बाँके पहलवान दंड और मुग्दर भाँजने वाले थे, धरती को चीड़फाड़ कर उसकी अन्न पूजा करने वाले थे। ये सब किसान थे,

जिन्हें एक तरह की भूख लगती थी, एक तरह से हँसते थे और एक तरह से मरते थे। इन सब में क्रोध की एक तरह की भावना थी। अंध-विश्वास का एक तरह का आवरण इन सब की आँखों पर पड़ा था। परंतु ज़मीदारी उन्मूलन की प्रसन्नता और धरती के प्रति नई श्रद्धा, इन सब की आत्मा में तैर रही थी।

उस समय आधी रात बीत चुकी थी। किशन के घर उसे भूख लगी थी पर उसे उसकी खबर नहीं थी। उसकी इच्छा हो रही थी, कि वह कहीं बहुत तेज़ी से दौड़कर एक बहुत ऊँची छलाँग मारता और एक बहुत बड़े जलते हुए अँगारे को अपनी आँखों के पास रखकर उसे घंटों अपलक देखता।

वह चिन्तित अपनी जगह पर खड़ा हुआ कहीं बहुत दूर देख रहा था। सब्बो उसके दाएँ हाथ को पकड़ कर, मचलती हुई कह रही थी, "भइया! चलके कुछ खाना खा लो।"

भाभी उसके बाएँ हाथ को पकड़ कर गुदगुदाती हुई कह रही थी, "बाबू चलके आराम करो न!"

सूरा बहन आँखों में आँसू लाकर कह रही थी—"भइया! अब यहाँ क्यों खड़े हो? चलो अपने घर चलें!"

गोविन्द कभी-कभी उन्हें देखकर, बरबस मुस्करा देता और फिर चुप हो जाता था। उसके थके हुए पैर धरती पर स्थिर थे। उसी समय उसने सुना नीची पट्टी से कुछ ऊँची आवाज़ उठ रही थी और गोविन्द सब को वहीं छोड़कर बाहर अंधेरे में बढ़ गया।

शेख पट्टी में सन्नाटा छागया था। गोविन्द चुपचाप, निर्भीक ज़ैनब के घर जा रहा था। जिस समय वह ज़ैनब के घर के पास पहुँचा, उसके पैर आगे बढ़ने से रुक गए। वह वहीं सोचने लगा—'इस समय मेरा ज़ैनब के घर जाना ठीक है कि नहीं!' इसी को लेकर वह सोच ही रहा था कि उसने सुना जैसे ज़ैनब को कोई पकड़े हुए है और ज़ैनब उससे हाथ छुड़ाकर कहीं दौड़ जाना चाहती है। गोविन्द की उत्सुकता

बढ़ी, उसने सुना ज़ैनब किसी से हाथ छुड़ाती हुई कह रहीथी—"मुझे छोड़ दो, मैं गोविन्द को देखना चाहती हूँ—तुम लोग क्यों उसे अकेला छोड़कर यहाँ चले आए ? . . गोविन्द....को....।"

गोविन्द सोचते-सोचते, ज़ैनब के घर जाकर भी लौट आना चाहता था, लेकिन अब उसके पैर बरबस ज़ैनब की ओर बढ़ गए। गोविन्द ने दूर से देखा, ज़ैनब किशन से अपना हाथ छुड़ाकर कहीं भागना चाहती है। गोविन्द सामने आकर ज़ैनब की दशा देखता हुआ, मुस्करा कर खड़ा हो गया। किशन ने ज़ैनब के हाथ को छोड़ दिया; ज़ैनब गोविन्द को अपलक देखती ही रह गई।

"गोविन्द तुम पागल हो !" ज़ैनब ने कुछ क्षणों के बाद कहा।

"हाँ, लेकिन यह तो पुरानी बात है !"

"नहीं, तुम नए पागल हो,....इस समय यहाँ तुम कैसे आए ?"

"किशन को बुलाने आया था।" गोविन्द ने धीरे से कहकर किशन को घर चलने के लिए संकेत किया।

गोविन्द ज़ैनब को देखता हुआ, किशन के साथ चलने को हुआ। उसकी आँखें उदास हो आईं थीं, पैर में शिथिलता आ गई थी। गोविन्द के पैर आगे बढ़ने लगे; उसी समय ज़ैनब दौड़कर गोविन्द से लिपट गई और उसकी आँखों को देखने लगी "ज़ैनब, तुम भी तो पागल हो।" गोविन्द ने धीरे से कहा।

ज़ैनब उससे लिपटी हुई चुप थी। उसकी आँखें डबडबा आईं थीं। किशन उनसे दूर, चारो ओर घूम-घूम कर जैसे पहरा दे रहा था।

"मुझे माफ़ करना, गोविन्द !" ज़ैनब ने प्यार से कहा। गोविन्द फिर मुस्कराने लगा। और ज़ैनब अपनी बेक़रारी में प्रश्न करने लगी—"गोविन्द ! तुम ख़ैरियत से थे न !......कहाँ चले गए थे ?.....कैसे थे ? .....तुम्हारे पैर की चोट कैसी है ?...."

ज़ैनब नीचे बैठकर गोविन्द के पैर की चोट देखने लगी और फिर ऊँचे आसमान की ओर अपना आँचल उठाकर ख़ुदा से दुआ

माँगने लगी—"या ख़ुदा! तू गोविन्द को ख़ैरियत से रख, इसे राहत दे!"

गोविन्द ने ज़ैनब के दोनों हाथों को पकड़कर अपने सामने खड़ा कर लिया और मुस्कराते हुए कहा—

"ज़ैनब, मैं ख़ैरियत से हूँ, सिर्फ़ तुम्हें देखने के लिए बेक़रार था!"

"और इस समय कहाँ जा रहे हो!" ज़ैनब ने पूछा।

"घर जाकर कुछ सोचने जा रहा हूँ!"

"अकेले सोचोगे?..यहीं मेरे घर क्यों नहीं रहकर सोचते!"

"अब तुम पागल बन रही हो, ज़ैनब!"

"हाँ, मैं इसे मानती हूँ, लेकिन मेरे घर रहने में हर्ज़ क्या है? हम सब लोग बातें करेंगे, सोचेंगे..।"

"जिस जगतपुर में, मन्दिर के खंडहर में दो क्षण खड़े रहने से इतना बड़ा पाप लगाया जाता है, वहाँ..तुम्हारे घर में..तो..।"

ज़ैनब, चुप होकर चिन्तित हो गई। मानो एक क्षण भावना की ऊँचाई पर जाकर वास्तविकता की कठोर भूमि पर पछाड़ खाकर गिर गई हो।

"तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं, गोविन्द!" ज़ैनब ने गम्भीरता से कहा।

"करते ही रहेंगे!" गोविन्द ने कहा और मुड़कर अपनी पट्टी की ओर जाने लगा।

"मैं भी तुम्हारी पट्टी चलूँगी, गोविन्द!" ज़ैनब ने बढ़ते हुए कहा।

"नहीं ज़ैनब, तुम्हें अपने घर रहना है!"

"अच्छा!" ज़ैनब ने गोविन्द का हाथ पकड़ते हुए कहा—"लेकिन तुम मेरी एक बात तो सुन लो..तुम..ज़ल्द से ज़ल्द कुमारी इन्द्रा से मिल लो..संकोच की बात नहीं..।"

"कुमारी इन्द्रा !" गोविन्द यह कहकर न जाने क्या सोचने लगा।

"हाँ, हाँ, कुमारी इन्द्रा !..जो इलाहाबाद में तालीम पाती हैं, ..तुम भी तो उसी यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे न गोविन्द !...फिर भी तुम्हारा उनसे परिचय नहीं ?"

"तो तुम्हें यह भी मालूम हो गया कि मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पढ़ता था।" गोविन्द ने मुस्कराते हुए कहा।

"जी हाँ, मुझे तो यहाँ तक मालूम हो गया है कि तुमने वहीं से बी० ए० पास किया है।"

"हाँ ..गोविन्द नें इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से बी० ए० पास किया है।" गोविन्द ने असीम दुःख से कहा—"ज़ैनब !..तू इस बात को बार बार दुहराती जा......गोविन्द ने बी० ए० पास किया है और.. ।"

"और क्या..गोविन्द !.. कहो न..बोलो ! तुम क्यों इतने दुखी हो गए ? बोलो..कहाँ..बिना बताए हुए..चले जा रहे हो ?"

"फिर बताऊँगा..ज़ैनब !—अभी उधर न सोचने दो.. ।"

यह कहकर गोविन्द तेज़ी से अँधेरे में बढ़ गया। ज़ैनब अपनी जगह पर खड़ी खड़ी सोचती ही रह गई।

६

सुबह होने में थोड़ी-सी रात शेष थी। आकाश के तारे एक-एक करके मुस्कराते हुए डूब रहे थे। ठाकुर जी के मन्दिर की सीढ़ियों पर कितने मुर्झाए हुए फूल बिखरे थे। उत्तर की ओर, पहली, ऊँची सीढ़ी पर कोई युवक अस्त-व्यस्त सो गया था, जैसे कोई अबोध बालक, धूल और कीचड़ में खेलता हुआ स्वतंत्रता से वहीं सो गया हो। युवक के नीचे मुर्झाए हुए फूल नहीं थे,... पत्थर के ऊपर धूल के कण थे। सूखे बिखरे हुए बालों में वायु का स्पर्श स्पष्ट होता जा रहा था। खुले हुए चौड़े वक्षस्थल पर पुरुषत्व की मंगल-ज्योति जल रही थी। मुँदी हुई आँखों के भीतर चिन्तन के सपने, मौन पलकों के बीच जीवन की मुस्कान, बाहर उभरी हुई स्पष्ट दिखाई दे रही थी। मिले हुए दोनों गंभीर ओंठों के बीच उत्साह की एक मंगल-रेखा उभरी थी।—इस तरह से एक युवक पागलों की भाँति ठाकुर जी के मन्दिर की सीढ़ियों पर बेख़बर सो गया था।

ठाकुर जी को जगाकर नित्यक्रिया करने का समय आ गया। पुजारी ने मन्दिर का पूर्वी दरवाज़ा खोला और थोड़ी देर के बाद सुरीले वाद्ययंत्र पर, प्रभाती गीत गाया जाने लगा। युवक अब भी अपनी नींद की बेहोशी में बाहर सीढ़ी पर पड़ा था। क्षणभर के बाद, पुजारी आरती जलाकर मन्दिर की परिक्रमा करने लगा। वह अपनी रतनारी आँखों से. अपलक आरती को देखता हुआ घूम रहा था। सहसा उसके पैर से युवक की खुली हुई बायीं हथेली कुचल गई। पुजारी डर और आश्चर्य से उछल पड़ा, उसके हाथ की आरती गिरते-गिरते बची। युवक अब भी बेख़बर सो रहा था, जैसे उसकी हथेली पर कहीं से फूल का गुच्छा गिर पड़ा हो।

पुजारी ने झुककर असीम जिज्ञासा से युवक को देखा। आरती के प्रकाश में युवक का मुखमंडल अजीब तेजमय प्रतीत हो रहा था, उसकी मुदी हुई आँखें जैसे कुछ कह रहीं थीं, उसके पतले-पतले ओंठ जैसे कुछ गाके चुप हो गए थे। उसी समय आरती के प्रकाश में युवक ने अँगड़ाई ली और उसकी आँखें खुल गईं। युवक झट से सहमकर बैठ गया और पुजारी को देखने लगा।

"आप कौन हैं ?" पुजारी ने खड़े होते हुए पूछा।

"मैं..मैं.. बड़ीपट्टी का हूँ।" युवक ने खड़े होते हुए कहा।

"गोविन्द !" पुजारी को असीम कौतूहल हुआ।

"जी हाँ,..हाँ..मैं गोविन्द हूँ..."युवक ने कहा, "और आप ?"

"मैं..इन्द्रा हूँ।"

"आप इन्द्रा हैं !" गोविन्द मानो जी गया और असीम प्रसन्नता से कहने लगा, "बड़ी खुशी हुई आप से मिलकर; मैं आप ही से मिलने के लिए इस मन्दिर पर आया था और आप को सोचते-सोचते यहीं इसी सीढ़ी पर सो गया।"

उषा की लाली से, कुमारी इन्द्रा की जलती हुई आरती अब मद्धिम पड़ने लगी थी। इन्द्रा ने सहसा, आरती को ठाकुर जी के समीप रखकर, गोविन्द के हाथ को अपूर्व विश्वास से पकड़ते हुए पूछा—

"गोविन्द ! तुम्हारी हथेली में चोट तो नहीं आई ?"

"क्यों, चोट कैसे आती ?"

"तुम्हारी बायीं हथेली मेरे पैर से अनजान में कुचल गई थी।"

"वह मेरे किसी जन्म के पुण्य का फल रहा होगा, "गोविन्द ने गंभीरता से कहा, "और मुझे आपका दर्शन भी इस उषा की लाली और पवित्र आरती के प्रकाश में मिला, मैं इस नए प्रभात में कितना भाग्यशाली हूँ, राजकुमारी !"

"बड़ी मीठी बातें करते हो, गोविन्द !"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं; हाँ, आप ठाकुर जी की पूजा तो समाप्त कर लें!"

" पूजा समाप्त हो चुकी है," इन्द्रा ने कहा, "गोविन्द, तुमसे मिलने की मेरी बड़ी इच्छा थी!"

"यह मेरा सौभाग्य है।"

"रात को जगतपुरवालों को तो तुमने बहुत ही मंगल-संदेश दिया है।"

"तभी तो मेरे प्राण भी बच पाए हैं, नहीं तो विजय के उठाए हुए तूफ़ान से बचना मुश्किल था। लोगों ने मेरी जान ले ली होती!"

"लेकिन, फिर भी जगतपुरवालों ने क्या सोचा?" इन्द्रा ने पूछा।

"विजय द्वारा भड़काया हुआ तूफ़ान अब भी उनके दिमाग़ में चल रहा है, उनके धार्मिक अंधविश्वास के आगे दुनिया के सारे तर्क, उनकी अशिक्षा के आगे ज्ञान की तमाम रोशनी बुझ-सी जाती है; फिर तो विजय उनका अब तक अगुआ है।"

"विजय की मौत क्यों नहीं हो जाती!" इन्द्रा ने झुँझला कर कहा।

"आप ने कुछ सोचा है, गोविन्द ने पूछा, "जगतपुर की फ़सल क्यों एकाएक नष्ट हुई है?"

"इसमें सोचने की कोई बात नहीं है," इन्द्रा ने कहा, "इसका मुख्य कारण मुझे मालूम है।"

"क्या कारण है?" गोविन्द ने प्रसन्नता से पूछा।

"अबकी बार जगतपुर की धरती के बोने के लिए बीज, विशेष तरह से खराब दिया गया था......यह विजय के मस्तिष्क की योजना थी!"

"सच!" गोविन्द का मुख खुला ही रह गया।

"हाँ, तुम्हारा और ज़ैनब का मामला, उसमें अकस्मात जुड़ा हुआ मामला है.....वह विजय की क़िस्मत थी, और जगतपुर की बद-क़िस्मती थी!"

"तो मेरे दिमाग़ में उठी हुई सारी बातें सही हैं!" गोविन्द ने आश्चर्य से कहा।

"हाँ, बिल्कुल सही हैं।" इन्द्रा ने समर्थन किया।

"लेकिन, जगतपुरवालों को कौन समझाए?"

"जगतपुर इसे स्वयं समझ जायगा।"

"आपका ऐसा विश्वास है?" गोविन्द ने पूछा।

"सत्य पर सबका विश्वास होना चाहिए!"

पूरब से गोविन्द के मुख पर लाल किरनें पड़ने लगीं थीं। गोविन्द कुछ सोचता हुआ इन्द्रा के पैरों को देख रहा था और इन्द्रा अपलक गोविन्द के ऊँचे लिलाट को देख रही थी, मौन आँखों के भीतर उसकी परेशानियों को स्पर्श कर रही थी।

"आप जगतपुर की देवी हैं!" गोविन्द ने अपना मौन भंग करते हुए कहा।

"नहीं...मैं सिर्फ एक आदमी हूँ!" इन्द्रा ने मुस्कराते हुए कहा।

"आपसे मिलने में मेरी क़िस्मत थी," गोविन्द ने कहा, "आपने इस वर्ष बी० ए० किया है, किस विषय से एम० ए० करने का विचार है?"

"अर्थशास्त्र से करूँगी," इन्द्रा ने कहा, "गोविन्द, तुम ने भी तो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से बी० ए० किया है....?"

"आप को कैसे मालुम?" गोविन्द ने पूछा।

"मुझे पता चला है,..." इन्द्रा ने अपूर्व गंभीरता से कहा—"तुम ग़रीबी की रोशनी हो गोविन्द!"

"मैं, कुछ नहीं हूँ, राजकुमारी!' गोविन्द ने उद्विग्नता से कहा,

"मैं कुछ नहीं हूँ,......हाँ, गोविन्द......एक ख़्वाब देखता था, और वह बी० ए० तक ही पढ़ सका।"

इसके उपरान्त गोविन्द न जाने क्यों पेरशान-सा हो गया। उसे लगा कि जैसे वह धुएँ में खड़ा है और उसका दम घुटने लगा है।

सहसा बाहर से आवाज़ आई—गोविन्द, गोविन्द !! गोविन्द उत्तर देने ही जा रहा था कि किशन दौड़ता हुआ उसके सामने आगया और हाँफते हुए कहने लगा—"गोविन्द, तुम कहाँ थे !......कहाँ थे तुम !!"

गोविन्द मुस्कराने लगा, और फिर हँसते हुए कहा, "आनन्द से हूँ, किशन ! कहो, कोई नयी बात तो नहीं !"

इन्द्रा और गोविन्द गंभीरता से ऊँची सीढ़ी पर खड़े होकर किशन को देख रहे थे। किशन उनके सामने नीचे से कह रहा था—"जगत-पुर के लिए तुम्हीं नयी बात हो।···गोविन्द !······कुमारी इन्द्रा से आशीर्वाद लो...और चलो...अपनी पट्टी में, ज़मीदारी टूट जायगी, इसके लिए ...आज धरती की पूजा की जाय...और उसका उत्सव मनाया जाय।"

"क्या किशन, सारा जगतपुर उसमें भाग लेगा ?" गोविन्द ने असीम प्रसन्नता और आश्चर्य से पूछा।

किशन थोड़ी देर के लिए चुप हो गया फिर उसने गंभीरता से कहा—"नहीं, हमारी छोटी पट्टी और तुम !" फिर किशन उदास होकर उन दोनों को देखने लगा।

"और, मैं भी उस उत्सव में भाग लूँगी।" इन्द्रा ने उत्साह से कहा। गोविन्द और किशन मुस्कराते हुए इन्द्रा को देखने लगे।

"आप तो धरती की देवी हैं !" गोविन्द ने कहा।

"तब तो देवी को उसके उत्सव में और भी विशेष स्थान मिलना चाहिए !"

"हाँ, गोविन्द ! हम लोग उत्सव मनाएँगे।" किशन ने अपूर्व उत्साह से कहा।

"लेकिन, किशन ! यह उत्साह समूचे जगतपुर का उत्सव है···वह केवल हमीं लोगों से नहीं मनाया जा सकता !" गोविन्द गंभीरता से कह

रहा था, "यह धरती का अपूर्व उत्सव, आत्मा का उत्सव है; मन का असीम पर्व है !...इसमें जगतपुर की चारो पट्टियाँ भाग लेंगी। बड़ी पट्टी गाएगी, शेख पट्टी मुस्करायेगी, छोटी पट्टी नाचेगी और शायद नीची पट्टी के भी होंठों पर कुछ लहराकर चमक जाएगा। यह कुछ व्यक्तियों का पर्व नहीं है, किशन ! यह ऐतिहासिक पर्व है, धरती की सदियों की गुलामी नष्ट होने का उत्सव है।"

इसके उपरान्त गोविन्द सहसा चुप हो गया और इन्द्रा को देखते हुए किशन को देखने लगा।

"तब फिर कैसे होगा गोविन्द ?" किशन ने हार कर कहा।

"यह इस तरह होगा किशन, गोविन्द ने गंभीरता से कहा, "हम जगतपुर वालों के दिल में पैठने की कोशिश करेंगे, उनके दिल में इस उत्सव की प्रसन्नता की मुस्कान पैदा करेंगे, और सप्रेम जगतपुर को लेकर एक महोत्सव मनाएँगे—खुशियाँ मनाएँगे। किशन, जाओ जगतपुर से यह कहने या कहलाने का प्रयत्न करो कि धरती की पूजा, धरती का उत्सव हमें पहले मना लेना है, गोविन्द और ज़ैनब के मामले को फिर से उठाएँगे। यह समय दुश्मनी और क्रोध भूल जाने का है, सब को भूलकर केवल इसे याद रखना है कि एक बार धरती की पूजा करलें, खुशी से गाकर नाच लें।"

किशन अजीब गंभीरता से गोविन्द की बातों को सुनता जा रहा था, और जैसे ही गोविन्द ने अपनी बात कहकर पूरी की; किशन ने साहस और ज़िन्दगी के साथ कहा, "मैं जगतपुर के एक-एक किसान, हर बाशिन्दे से तुम्हारी ये बातें कहने का प्रयत्न करूँगा।"

किशन मुस्कराता हुआ बाहर चला गया। गोविन्द ने वहीं नीचे खड़े होकर अपूर्व स्नेह से कुमारी इन्द्रा को देखा। इन्द्रा ने असीम प्रसन्नता से गोविन्द के पास आते हुए कहा, "तो··तुम्हीं गोविन्द हो ?"

"हाँ, क्यों ?" गोविन्द ने हँसते हुए पूछा—

"कुछ नहीं !" इन्द्रा ने कहा, "मेरी एक बात मानोगे ?"

"क्यों नहीं; सर पलकों पर आपकी बातें ।"

"सुनो, आज तुम ठीक चार बजे, रोनी नदी के 'राजघाट' पर आ जाना, मैं ज़ैनब को लेकर वहाँ आ जाऊँगी..ठीक है न !"

"राजघाट पर गोविन्द !" गोविन्द ने आश्चर्य से पूछा, "यह क्या कह रही हो, कुमारी इन्द्रा !··वह तो सिर्फ राजा और आप का घाट है,··मैं प्रजा हूँ, कुमारी !...फिर विजय तो हमारे पीछे ही है।"

"घबड़ाओ नहीं !" इन्द्रा ने कहा, "कल रात ही से विजय बीमार पड़ गया है..सुना है, उसे एक सौ तीन प्वाइण्ट आठ डिग्री बुखार चढ़ा हुआ है । "

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े और फिर गोविन्द इन्द्रा का अभिवादन करके, तेज़ी से मन्दिर के बाहर हो गया।

गोविन्द तेज़ क़दमों से नीची पट्टी से होता हुआ बड़ी पट्टी चला जा रहा था, सहसा उसने दूर से देखा, तीन घोड़ों पर चढ़े हुए सवार चले आ रहे हैं। गोविन्द नीचे देखता हुआ, धीरे-धीरे चलने लगा।

सहसा उसने सामने, नज़दीक से देखा, राजकुमारी तारामती अगले घोड़े पर चढ़ी हुई सामने आ चुकी थीं और उनके पीछे राज्य के दो सिपाही घोड़े पर सवार थे।

गोविन्द आँखें बचाकर अपने रास्ते से दूर चला जाना चाहता था। उसी समय तारामती ने कड़े स्वर में कहा, "सिपाही ! यह कौन है, जो मुझे बिना सलाम हुए चला जा रहा है ?" गोविन्द रुक गया और उसने गंभीरता से राजकुमारी को घोड़े पर देखा। वह कुछ बोलना ही चाहता था कि एक सिपाही ने कहा, "कुमारी !······यही गोविन्द है!"···

"यही व्यक्ति गोविन्द है !···"

तारामती ने घोड़े को रोकते हुए कहा, "इसे तो मैंने कहीं देखा है..तो यही गोविन्द है !"

"जी हाँ, मैं ही गोविन्द हूँ।" गोविन्द ने गंभीरता से कहा।

गोविन्द सर नीचा किए मुस्कराता हुआ आगे बढ़ने लगा। तारामती ने उसे रोकते हुए फिर कहा —"तुम्हीं गोविन्द हो !··· लेकिन तुमने मेरा अभिवादन नहीं किया !"

"मैं आपका अभिवादन करता हूँ, राजकुमारी !"

"गोविन्द आगे बढ़ा, उसके ओठों पर मुस्कराहट की लाली बिखर उठी, लेकिन उसने बड़ी सफ़ाई से उसे छिपा लिया।

"अजीब है यह व्यक्ति !"

तारामती ने यह कहकर, अपने घोड़े को बढ़ाया और अपने महल की ओर चली गई। गोविन्द सोचता हुआ, बड़ी तेज़ी से अपनी पट्टी पहुँच गया।

गोविन्द ने घर खाना खाया और सो जाने के लिए, आँखें बन्द करके अपनी चारपाई पर लेट गया, पर उसे नींद नहीं आ रही थी। इस समय दिन के ज़्यादा से ज़्यादा दो बजे थे। गोविन्द अकेले, गाँव के उत्तर रोनी नदी की ओर चलने लगा, और आज वह रोनी के उस शृँगारिक प्रदेश में जा रहा था जहाँ जगतपुर कभी नहीं जा सकता था, जिसे गोविन्द ने कभी नहीं देखा था। यह था राजघाट, यहाँ रोनी नदी—चौड़ी और गहरी होकर बहती थी। इसके दोनों किनारे पत्थर से सँवारे हुए थे। जगतपुर की ओर पत्थर की सीढ़ियों का सुंदर घाट बना था और किनारे पर एक तिमंजिला महल बना था, जिसे 'शीश महल' कहा जाता था। नीचे की मंज़िल में लालसाहब का परिवार हवा खाने, जल-विहार के लिए आता था। बीच की मंज़िल राजासाहब के लिए थी और सबसे ऊँची मंज़िल राजा साहब के अन्तःपुर के लिए थी।

महल के चारो ओर सुन्दर फूलों का बन लगा हुआ था। अच्छी-अच्छी बेलों और फूलों के कुँजों से, महल और राजघाट की सीमा घिरी हुई थी; ताकि जगतपुर से, या कहीं से उधर की ओर गुज़रता हुआ आदमी राजघाट के किसी हिस्से को न देख सके। कहते हैं कि वहाँ के कितने लोग राजघाट देखने की असीम कामना लिए हुए मर जाते थे—पर कभी नहीं देख पाते थे, राज्य का इतना आंतक था। रोनी के उस पार घाट तक सटा हुआ, करील, बेंत, साखू, जामुन, और करौंदे का सघन जंगल था। यह जंगल इतना विस्तृत, इतना घना, इतना हराभरा, रोनी तक फैला हुआ था कि इसकी छाया से रोनी का पानी हमेशा नीला रहता था। इसी से इस जंगल का नाम 'नील बन' पड़ा था। इसमें मयूरों की असंख्य टोलियाँ रहती थीं, हिरन और नीलगाय की कोई गणना नहीं थी। इस नीले जंगल ने तो, राजघाट को और घेर कर, साधारण आदमी के लिए अदृश्य बना रक्खा था।

गोविन्द आज बेख़बर इसी राजघाट की ओर बढ़ता चला आ रहा था। आज उसे इधर आने में डर या शंका नहीं थी; वरन् अतुल जिज्ञासा और कौतूहल के बोझ से दबा हुआ महल की ओर बढ़ब आ रहा था।

गोविन्द राजघाट पर आते ही, आश्चर्यचकित रह गया। इतनी रम्य जगह पर वह इसके पूर्व कभी नहीं आया था। वह रोनी को देखते ही रह गया। उस पार के नीले जंगल की छटा मानो उसकें मस्तिष्क में साकार होकर मुस्काराने लगी। उसे इस स्थान पर इतनी शान्ति मिली जैसे किसी नन्हें शिशु के लिए माँ की गोद! गोविन्द जिधर ही देखता उधर उसकी आखें और मन दोनों स्थिर से हो जाते। लेकिन उस समय राजघाट बिल्कुल जन-शून्य था और गोविन्द की इच्छा हो रही थी कि वह घने जंगल को, जिसपर फूली हुई लताएँ फैली थीं, अपने अंक में भरकर सो जाता।

शीशमहल के पास टहलते हुए गोविन्द ने उत्तर की ओर देखा, मौलश्री और अशोक की सुन्दर छाया में, सात रंग का सुन्दर चौकोर पत्थर, अत्यन्त कलात्मक ढंग से रक्खा हुआ था। गोविन्द ने उसे ध्यान से देखा और एकाएक समीप के झुरमुटों, और फूल के कुँजों तथा क्यारियों से विभिन्न रंग के फूलों को इकट्ठा करने लगा, और पत्थर के विभिन्न रंग पर उसके अनुरूप पुष्पों को बिछाने लगा। इस तरह गोविन्द ने क्षण भर में, सतरंगी पत्थर के, आसन को, सात रंग के फूलों से ढक दिया और वहीं पास बैठकर, प्रसन्न मुद्रा से देखने लगा।

थोड़ी देर के बाद गोविन्द को नींद आ गई और वह चौकोर, पत्थर के पास सो गया और वह एक ख्वाब देखने लगा—'एक दूध की गहरी नदी बह रही है, उसके किनारे-किनारे, दोनों तट पर सोने की अट्टालिकाएँ बनी हुई हैं; तमाम अट्टालिकाओं और प्रासादों के द्वार, वातायन; बहती नदी की ओर, उन्मुक्त खुले हैं। और सब दरवाज़ों पर, अपने पूर्ण शृंगार में, युवतियाँ खड़ी हैं। ऊपर अट्टालिकाओं पर विभिन्न प्रकार के मीठे सुरीले वाद्य-यत्र बज रहे हैं। उन्मुक्त वातायनों पर रमणियाँ अञ्जलियों में पुष्प लेकर मुस्कराती हुई नदी की ओर देख रहीं हैं।

नदी के तट पर गोविन्द और विजय में लड़ाई हो रही है। लोग गम्भीरता से दोनों की लड़ाई देख रहे हैं। विजय दौड़-दौड़कर गोविन्द पर चोटें कर रहा है, गोविन्द मुस्कराता हुआ, उसकी चोटों को सँभालता हुआ उस पर दाँव कर रहा है। उसी समय विजय के किसी सिपाही ने छिपकर गोविन्द को, नदी की ओर, धक्का न दे दिया। गोविन्द दूध की नदी में गिर गया। उसी समय ज़ैनब चिल्लाती हुई गोविन्द के साथ नदी में कूद पड़ती है।

इस तरह से दूध की नदी बह रही है उस पर एक चौकोर शक्ल में फूलों की सेज बिछी हुई है और उस फूल के सेज पर गोविन्द, ज़ैनब

के साथ लेटा हुआ नदी में बहता जा रहा है। अट्टालिकाओं से अनवरत् संगीत आ रहा है। वातायनों से रमणियाँ हँस-हँसकर बहते हुए गोविन्द और ज़ैनब के ऊपर फूलों की वर्षा कर रही हैं।'

गोविन्द उस चौकोर पत्थर के पास सोता हुआ, इस तरह एक रूमानी स्वप्न देखता जा रहा था। स्वप्न में, दूध की नदी में, फूलों की सेज पर सोता हुआ वह न जाने किस लोक बहता चला जा रहा था।

स्वप्न में गोविन्द थोड़ी देर के बाद और देखने लगा कि इन्द्रा चाँदी की किश्ती पर बैठी हुई, सोने की पतवार से उसे सँभालती हुई उसके और ज़ैनब से साथ-साथ चलने लगी है।

इसी तरह गोविन्द अपनी नींद की बेहोशी में स्वप्न देखता जा रहा था और उसी समय उसके कान में बहुत तेज़ ज़ैनब को पुकारने की आवाज़ आ रही थी। वस्तुतः चार बज गए थे, इन्द्रा और ज़ैनब राजघाट पर आकर गोविन्द को ढूँढ़ रहीं थीं। ज़ैनब रह-रह के, ऊँचे स्वर में पुकारती थी—"ओ पगले गोविन्द ! कहाँ चले गए जी !"

ज़ैनब की आवाज़, 'नीले बन' में गूँज उठती थी और उसकी प्रतिध्वनि, रोनी को स्पर्श करती हुई, सोते हुए गोविन्द के कान में टकराती थी। उस समय स्वप्न देखते हुए गोविन्द को लगता था कि दूध की नदी में फूलों की सेज पर ज़ैनब गीत गा रही है।

फिर इधर-उधर, परेशान होकर, गोविन्द को ढूँढ़ती हुई इन्द्रा बार-बार पुकारती थी—"गोविन्द ! ....ओ गोविन्द....बोलते क्यों नहीं जी !"

इन्द्रा की आवाज़, महल से टकराकर फूल पौधों की झाड़ियों और कुंजों को स्पर्श करती हुई गोविन्द के स्वप्निल कानों में सुनाई पड़ती थी—मानो स्वप्न में इन्द्रा गोविन्द से कह रही थी कि गोविन्द ! तुम मेरी नाव में बैठ जाओ ! तुम्हें भूख लगी होगी !

अंत में इन्द्रा ने परेशान ज़ैनब से कहा—"ज़ैनब ! एक बात सुनो ! मैं एक जगह गोविन्द को और ढूढ़ती हूँ।" यह कह कर इन्द्रा बाहरी ज़ीने से 'शीशमहल' के ऊपरी मंज़िल पर चढ़ने लगी और ज़ैनब महल के उत्तर ओर मौलश्री और अशोक की छाया कुंज की ओर बढ़ने लगी।

दूर ही से ज़ैनब, उस चौकोर पत्थर के पास एक अजनबी सूरत को पागलों की तरह सोते हुए देखकर चिल्ला उठी। और ज़ोर से इन्द्राको पुकारते हुए कहने लगी—"इन्द्रा बहन !....मैं तो मर गई आह !!"

"क्या है ज़ैनब !" इन्द्रा महल के ऊपरी मंज़िल से, रेलिंग के सहारे झुककर ज़ैनब को देखने लगी, ज़ैनब डर के मारे महल की ओर भाग कर चली आ रही थी।

बात यह हुई कि गोविन्द पत्थर के पश्चिम ओर, सटकर सोया था और रोनी की ओर से पूर्वी हवा बहने के कारण, पत्थर पर बिछे हुए फूल, उड़कर गोविन्द के ऊपर आ गए थे। इस तरह से दूर से, बेखबर सोया हुआ गोविन्द, लगता था जैसे कोई देवता या भूत फूलों का लिहाफ़ ओढ़कर सो गया हो !

सहमी हुई ज़ैनब, इन्द्रा के साथ चौकोर पत्थर की ओर बढ़ रही थी। इन्द्रा, सावधानी से पैर आगे बढ़ा रही थी लेकिन सहसा चौंककर रुक गई और सहम कर ज़ैनब से कहने लगी—"यह कोई आदमी इस तरह छिपकर सोया हुआ है !"

"विजय तो नहीं है !" ज़ैनब ने डरकर कहा।

"वही हो सकता है !"

ज़ैनब ने यह सुनते ही पास से एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर उस पर मारना चाहा, उसी समय गोविन्द ने अँगड़ाई ली और उसपर पड़े हुए फूल नीचे गिर गये। ज़ैनब उसी तरह पत्थर को हवा में ताने हुए गुमसुम खड़ी रह गई और इन्द्रा ने खिलखिला कर हँसते हुए कहा—"ज़ैनब ! गोविन्द पर पत्थर न मारो।"

गोविन्द आँखें मीचता हुआ उठ बैठा और गंभीरता से इन्द्रा और ज़ैनब को देखा, फिर चौकोर पत्थर से अपने ऊपर उड़े हुए फूलों को देखकर मुस्करा दिया।

"यहाँ क्यों इस तरह पागलों की भाँति सो गए थे ?" ज़ैनब ने ज़ोर से पत्थर को रोनी में फेंकते हुये, कहा।

"भई, माफ़ करना," गोविन्द ने खड़े होते हुए कहा, "मैं बहुत पहले यहाँ आ गया था। समय काटने की इच्छा से मैं इसी सतरंगी पत्थर को सातरंग के फूलों से ढ़कने लगा, ढ़कने के बाद मैं इसकी अपूर्व सुन्दरता को देखता-देखता याहीं पास ही सो गया। और एक अजीब सा ख़्वाब देखने लगा।"

"लेकिन फूल से तो तुम ढके हुए थे ?" ज़ैनब ने बीच ही में बात काटते हुए कहा।

"मैंने ख़ुद तो नहीं, हवा से उड़कर ये सारे के सारे फूल मुझपर आ ढके थे।"

यह सुनते ही ज़ैनब हँसते-हँसते लोटपोट होने लगी और उसके साथ इन्द्रा और गोविन्द भी हँसने लगे। क्षणभर में सम्पूर्ण राजघाट एक बहते हुए संगीत के वातावरण की तरह भर गया।

"इस चौकोर पत्थर पर फूलों की सेज लगाकर क्या सोच रहे थे ?" इन्द्रा ने हँसते हुए पूछा।

"इस फूल के सिंहासन पर राजकुमारी तारामती बैठती !" ज़ैनब ने मुस्करा कर मज़ाक किया।

"नहीं,..इन फूलों पर राजकुमार विजय बहादुर राणाप्रताप सिंह को बैठाता।" गोविन्द एक साँस में कह गया, "....इस फूल के सिंहासन पर, ज़ैनब मैं तुझे बैठाने को सोच रहा था !" यह कहकर गोविन्द, बच्चों की तरह एक लटकती हुई मौलश्री की डाली से लटककर झूल गया।

"गोबिन्द, देखो पागलपने की बात मत करो !" ज़ैनब ने रूठकर कहा, और मुड़कर पीछे देखा; कुमारी इन्द्रा रोनी के किनारे एक नाव को ठीककर रही थी।

ज़ैनब ने हँसते हुए गोविन्द से फिर कहा, "तुम पागल हो ! तुम पागल हो !!"

इस तरह से ज़ैनब कहती जाती थी और गोविन्द के इकट्ठा किए हुए फूलों को मुट्ठी में भर-भर के, जोर-ज़ोर से गोविन्द पर फेंकती जाती थी।

गोविन्द मौलश्री की लचकती हुई डाल पर झूलता हुआ कहता जाता था—"ज़ैनब, मैंने एक ख़ूबसूरत सपना देखा है, एक दूध की गहरी नदी बह रही है। उसके किनारे-किनारे सोने के ऊँचे-ऊँचे महल बने हैं। हम और तुम नदी के ऊपर ख़ूबसूरत फूल के सेज पर सोते हुए न जाने कहाँ बहते हुए चले जा रहे हैं !"

"गोविन्द, ख्वाब की बातें न करो," ज़ैनब ने फूलों को मुट्ठी में मसलते हुए कहा, "सच्ची दुनियाँ की बातें करो; विजय तुम्हारा कितना ख़ूँख़्वार दुश्मन है।"

"सच ! ज़ैनब !!" गोविन्द ने लचकती हुई डाली को छोड़ते हुए कहा, "इस बात को भी मैंने ख़्वाब में देखा है, विजय से और मुझ से उसी दूध की नदी के किनारे लड़ाई हो रही है। किसी ने मुझे धोखे से धक्का देकर उस नदी में गिरा दिया था और मैं फूलों पर तुम्हारे साथ उस नदी की सतह पर बहने लगा था।"

उसी समय इन्द्रा ने, नाव पर बैठकर ज़ैनब और गोविन्द को पुकारा। गोविन्द ज़ैनब के साथ आकर धीरे से नाव पर बैठ गया।

"गोविन्द; तुम्हें ज़ैनब ने सचमुच मार दिया क्या ?" इन्द्रा ने बात को बढ़ाते हुए कहा, "क्यों तुम इतने गंभीर हो गए ?"

"नहीं, कोई बात नहीं।" गोविन्द ने बनावटी हँसी हँसते हुए कहा, "आप लोग आराम से इधर बैठिए मैं नाव खेता हूँ।"

यह कह कर गोविन्द ने इन्द्रा से डाँड़ ले लिया और मुस्कराते हुए नाव को रोनी की धार में ले जाने लगा।

"राजघाट कितना रमणीक है!" गोविन्द ने कहा, "लगता है, जगतपुर की प्रकृति और शोभा इसी एकान्त में अपना रूप सँवारती है।"

"ज़ैनब! तुम्हें यह जगह कैसी लगी?" इन्द्रा ने पूछा।

मैंने तो इससे अच्छी जगह कहीं देखी नहीं," ज़ैनब ने कहा, तबियत हो रही है कि इसी 'नीले बन' में छिप जाऊँ और हमेशा के लिए ग़ायब हो जाऊँ।"

"क्यों ऐसी क्या आफ़त आगई!" गोविन्द ने कहा, "—क्यों, ज़ैनब मेरा ख्वाब तुझे अच्छा नहीं लगा?"

"बिल्कुल नहीं, या खुदा तू ऐसा ख्वाब किसी को न दिखा," ज़ैनब ने चिढ़ते हुए कहा, "यहाँ कुछ काम की बातें करो; बेकार बातें मत करो!"

गोविन्द मुस्कराता हुआ, किश्ती को तेज़ी से आगे बढ़ा रहा था। इन्द्रा और ज़ैनब दोनों गंभीर थीं।

उस पार पहुँचकर, तीनों रोनी के कगार से ऊपर जाकर, एक झुर-मुट में बैठ गए। और तीनों एक दूसरे को देखने लगे।

"गोविन्द, क्या तुम और ज़ैनब पहले से ही परिचित थे?" इन्द्रा ने पूछा "नहीं," गोविन्द ने कहा, "मेरी और ज़ैनब की पहली भेंट, पहला परिचय इतने नाटकीय ढंग से हुआ था कि जिसकी अनुभूति मुझे है, या उस टूटे हुए मन्दिर के खंडहर को होगी; जिसकी छाया में पहली बार, हम लोगों ने एक दूसरे को देखा था।"

"तुम वहाँ अकेले पूजा करने गए थे!" इन्द्रा ने आश्चर्य से पूछा। गोविन्द ने शरमा कर उत्तर दिया, "हाँ, पूजा ही समझिए। पिता जी और दीदी बार-बार मंदिर में पूजा करने के लिए विवश करते थे, कहते थे कि बेटा! इसी मंदिर की पूजा और भगवान ने तुम्हें बी० ए० कराया है। अगर एम० ए० हो सकोगे तो सिर्फ़ इन्हीं देवताओं से भीख

माँग कर ! लेकिन मुझे न जाने क्यों गाँव के मंदिर में जाने से लज्जा लगती थी...इसीलिए उस रात को सब से छिप कर, सबसे अलग खंडहर के देवता के पास गया था।"

ज़ैनब सहसा उठकर गोविन्द के पास आकर बैठ गई और सब की बातों कों छीनती हुई, असीम जिज्ञासा से कहने लगी, "आह ! मैं कितने दिनों से एक बात पूछने के लिए सोचती थी, पर बार-बार भूल जाती थी...गोविन्द, मुझे आज बता दो !"

"आख़िर वह बात क्या है ?" गोविन्द ने कौतूहल से पूछा।

"उस दिन या उस दिन के बाद मैंने पूछा भी नहीं, न तुमने बताया..गोविन्द, तुम किस लिए, किस आरज़ू को लेकर उस दिन—मन्दिर के खंडहर में पूजा करने गए थे ?"

गोविन्द गंभीर होकर चुप हो गया। वह अभी नहीं चाहता था कि ज़ैनब उससे यह प्रश्न करती। गोविन्द अपनी उदास आँखों से रोनी की ओर देखने लगा था। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह धीरे से ज़ैनब को कहीं अकेले में ले जाता और धीरे से उसके कान में अपनी आरज़ू को कह देता। उसी समय ज़ैनब ने फिर कहा, "गोविन्द ! क्या सोच रहे हो ; क्या वह आरज़ू किसी से बताने लायक़ नहीं ?"

"सब से बताने लायक़ है," गोविन्द ने गंभीरता से कहा, "जैसा जगतपुर का विश्वास है कि उस खंडहर में दिल से पूजा करने पर आदमी की कोई इच्छा पूरी होती है, मैं भी एक इच्छा, अपना एक स्वप्न लिए हुए उस मन्दिर के खंडहर में गया था। और बताया न, वह मेरी इच्छा मेरा स्वप्न यह है कि मैं एम० ए० करूँ !"

"एम० ए० करूँ !" इन्द्रा ने आश्चर्य से कहा।

"जी हाँ, मैं उस दिन, देवता से यह भीख माँगने गया था कि वे मेरे रक्षक हों, मैं इसी जुलाई में एम० ए० प्रथम वर्ष में प्रवेश ले रहा हूँ।"

"किस विषय से एम० ए० करोगे ?" इन्द्रा ने पूछा।

"इतिहास से।"

गोविन्द ने पास ही से एक बड़े से फूल को तोड़कर अपनी मुट्ठी में लेकर मसल दिया और गंभीरता से इन्द्रा को देखकर, ज़ैनब की ओर मुस्करा दिया।

"गोविन्द तूने बड़ी ख़ुशी की बात सुनाई ; तुम ज़रूर एम० ए० करो," ज़ैनब की नर्गिसी आँखों में कुछ घुल उठा था, वह बुलबुल की तरह प्यार से कहती जा रही थी, "गोविन्द, तुम्हारी आरज़ू पूरी हो, लेकिन मैं तो समझती हूँ गोविन्द, कि तुम्हारी यह छोटीसी आरज़ू, महज़ इन्द्रा बहन के आशीर्वाद से पूरी हो सकती है !"

"ठीक कहती हो, ज़ैनब !" गोविन्द ने धीरे से कहा।

"ठीक नहीं कहती हूँ, सुनो गोविन्द !" ज़ैनब ने असीम विश्वास तथा अधिकार से कहा, "गोविन्द सुनो, तुम इसी समय बहन इन्द्रा के पैरों को छू लो; और एक बार इतनी ज़ोर से हँस दो कि सारा नीला वन तुम्हारी हँसी से गूँज उठे।"

गोविन्द ने असीम श्रद्धा से, बढ़कर चाहा कि वह इन्द्रा के पैरों को मस्तक से स्पर्श कर ले ; उसी क्षण इन्द्रा ने उठ कर गोविन्द को अपनी पवित्र बाहुओं में रोक लिया ; और फिर गंभीरता से मुस्कराते हुए कहा "गोविन्द भाई ! ईश्वर मालिक है। तुम जरूर एम० ए० करो...।"

उसी समय ऊपर डाली पर कोई पक्षी धीरे-धीरे गाने लगा। ज़ैनब ने पास की डाली से एक जंगली गुलाब के फूल को तोड़कर, ऊपर पक्षी के पास उछालते हुए कहा, "गाने वाले परिन्दे !..ले !! तेरे नग़मे के लिए तुझे यह फूल इनाम देती हूँ !"

पक्षी, फड़फड़ा कर उड़ता हुआ आकाश की ओर चला गया, ज़ैनब ने रोनी में दूसरा फूल तोड़कर फेकते हुए कहा—"अब चलो, उस पार चलें !"

गोविन्द अपलक इन्द्रा के पैरों की ओर देख रहा था। इन्द्रा मुस्कराती हुई ज़ैनब को देख रही थी और ज़ैनब अब गुलाब के फूलों को तोड़-तोड़ कर गोविन्द के ऊपर फेंकती जाती थी और बच्चों की तरह कह रही थी।

"गोविन्द,...समझ लो !...अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काज; दास मलूका कह गए, सबके दाता राम !"

इन्द्रा हँसती हुई ज़ैनब से लिपट गई ! गोविन्द शर्माता हुआ रोनी की ओर मुड़ गया और धीरे से कगार को पार करता हुआ नाव पर बैठ गया। गोविन्द को सचमुच लग रहा था कि वह अबभी अपने चौकोर पत्थर के पास वाला ख्वाब देख रहा है—वह दूध की नदी में, फूलों की सेज पर, ज़ैनब के साथ बहता-बहता एक ऐसी दुनियाँ में पहुँच रहा है जहाँ की धरती हमेशा फूल और फलों से ढकी रहती है, जहाँ का आकाश हमेशा गाता हुआ वहाँ के रहने वालों को मन चाहा बरदान देता रहता है। जहाँ कोई किसी को भी देख कर प्यार से शरमा जाता है। इन्सान-इन्सान से गले मिलकर हमेशा अमर रहता है।

इन्द्रा और ज़ैनब को बैठा कर, गोविन्द नाव को रोनी के उस पार ले जा रहा था और सोच रहा था—रोनी हमेशा इसी तरह बल-खाकर बहती रहती, गोविन्द ज़िन्दगी भर इस नाव पर बहन इन्द्रा और अच्छी ज़ैनब को बिठा कर खेता रहता और एक दिन उसकी किश्ती उस स्वप्नों की दुनियाँ में पहुँचती जहाँ धरती गाती है, चाँद मुस्कराता है, हवा मुहब्बत का पैग़ाम लाती है। इन्सान अपनी कमाई करता है और उसे अपनी कमाई का उचित इनाम मिलता है। जहाँ अगर इन्सान की आँखों में कभी आँसू आ जायँ; तो धरती फट जाय, वायुमंडल में तूफ़ान आ जाय; आसमान शरम से पिघल जाय।

गोविन्द रोनी को पारकर हँसता हुआ कगार पर खड़ा हो गया और उन्मुक्त पलकों से पश्चिम दिशा की ओर देखने लगा, तब तक

उसके दाएँ-बाएँ, जिज्ञासा से ज़ैनब और इन्द्रा खड़ी होकर, गोविन्द की दृष्टि की ओर देखने लगीं।

"क्या देख रहे हो, गोविन्द !" ज़ैनब ने पूछा।

"देखो, पश्चिम के उस कोने से काले-काले बादल उठ रहे हैं, यह आषाढ़ महीने की बाँकी घटा है !"

"तो इससे क्या हो गया ?..उन बादलों में क्या देख रहे हो ?" इन्द्रा ने पूछा

"उन बादलों में नयी खेती की नयी पुकार है, वे वर्षा के पहले बादल हैं। वे नए आकाश की नयी मुस्कान हैं, ज़ैनब, वे धरती के सुहाग हैं......बहन इन्द्रा,...मैं उन उठते हुए काले बादलों में सिन्दूर की इतनी लाली देख रहा हूँ कि जिससे जगतपुर की धरती क्या, सारी धरती की सूनी माँग रँग उठेगी।"

"तुम कितने भावुक हो उठते हो, कभी-कभी !" इन्द्रा ने कहा,

"लगता है कि कालिदास की तरह, इन पहले बादलों को देख कर कोई और 'मेघदूत' लिख डालोगे !"

"बहन ! मैं कालिदास की तरह अकेला नहीं हूँ, लगता है कि मैं कितने बड़े क़ाफ़िले के साथ चलता रहता हूँ।"

तीनों रोनी के कगार पर बैठ गए ,और पश्चिम की ओर उठते हुए बादलों को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। हवा का बहना बंद हो गया और धीरे-धीरे वायुमंडल में उमस बढ़ने लगी ! गरजते हुए बादल आकाश में फैलने लगे !

"कितना मगलकारी है !..आज अषाढ़ की वर्षा होगी !"

गोविन्द ने उठकर, मौलश्री की एक लचकती हुई टहनी को चूम लिया ! ज़ैनब, पास ही से फूल तोड़ कर इन्द्रा को देती हुई कहने लगी—"एक बादशाह था, वह इतना फ़ैयाज़ और खूबसूरत था कि वह जिधर देख लेता था, उधर एक जन्नत बस जाती थी। आसमान

उसे देख कर झुक जाता था, चाँद और सितारे, उसे देख कर शरम जाते थे, लेकिन,..आह ! वह बहुत जल्द पागल हो गया और उसने एक लोमड़ी से शादी कर ली !"

"और उसकी शादी में सिर्फ़ ज़ैनब ही एक चींटी पर चढ़कर बरात गयी थी !"

गोविन्द ने बीच ही में हँसते हुए कह दिया। ज़ैनब ने हँसते हुए एक बड़े से फूल को ज़ोर से गोविन्द पर फेंका, पर दूसरे ही क्षण वह डर से चीख़ उठी। फूल को ज़ोर से फेंकते समय उसके दाएँ हाथ में बँधी हुई तावीज़ न जाने कहाँ खुलकर गिर गई। ज़ैनब सहमी हुई गोविन्द को देखकर अपनी तावीज़ ढूढ़ने लगी।

"क्या हो गया तुम्हें ?" गोविन्द को आश्चर्य होने लगा।

"मेरी दुआ की तावीज़ न जाने कहाँ गिर गई ?··मैं अब मर जाऊँगी······मैं नहीं जी सकूँगी ?" ज़ैनब की वाणी में अधी-रता थी।

"ओह ! हो !!···क्या हो गया, एक पैसे की तावीज़ गिरने में··· फिर बन जायगी !"

इन्द्रा और गोविन्द दोनों ज़ैनब को समझाते हुए उसकी तावीज़ को ढूँढ़ने लगे। ज़ैनब डर से अधीर हो गई, इन्द्रा और गोविन्द दोनों मुस्करा रहे थे। उस समय ज़ैनब ने अशान्त होकर कहा—"वह मेरी तावीज़, बहराइच के एक फक़ीर की दी हुई थी; उस तावीज़ के रहते, राजकुमार विजय मेरा कभी कुछ नहीं बिगाड़ सकता था,··· लेकिन···आह !···अब क्या होगा···गोविन्द ? उस पर तो अम्मी ने मेरा नाम भी लिख दिया था !"

"कुछ नहीं होगा, क्या बच्चों की तरह परेशान होती हो, ज़ैनब ! इन तावीज़ों में क्या रक्खा है !··खो जाने दो !···"

"खो जाने दो ! खो जाने दो !!" ज़ैनब ने चिढ़ते हुए कहा।

"क्या हो गया, तुम्हें ज़ैनब !" गोविन्द ने कहा, "दूसरे की दी हुई दुआ और ताबीज़ पर भरोसा रखना, इन्सान की सबसे बड़ी कमजोरी है ! ज़ैनब तुम तो बहादुर हो !··देखना तुम्हारा कुछ भी नहीं होगा।" और गोविन्द ने धीरे से उसकी ताबीज़ उठाकर अपने पास रख लिया।

उस समय, आकाश में काले बादल छागए थे। जल्द से जल्द पानी बरसने वाला था। धीरे-धीरे हवा बहने लगी थी। तीनों जगत-पुर की ओर, तेज़ी से बढ़ने लगे थे। गाँव के पास पहुँचकर तीनों अलग-अलग रास्तों से चलने लगे थे लेकिन तीनो एक दूसरे को दूर से देख रहे थे। सहसा बड़ी-बड़ी बूँदे गिरने लगीं। तीनों तेजी से अपनी-अपनी पट्टी की ओर बढ़ गए।

७

दो दिन लगातार वर्षा होने के बाद तीसरे दिन नई सुबह हुई। आसमान में वर्षा के बादल नहीं थे, सिर्फ़ कहीं-कहीं सफेद और सुर्ख़ रंग के बादल रह गए थे।

गोविन्द अपने घर से निकल कर छोटी पट्टी की ओर जा रहा था। उसे अजीब-सी उदासी लग रही थी वह अभी बड़ी पट्टी में चल रहा था। वह बार-बार घरों के आगे-पीछे जाकर रुक जाता और थोड़ी देर चुप रह कर उद्विग्नता से बालों पर हाथ फेरकर आगे बढ़ जाता।

गोविन्द बड़ी पट्टी को पार करते-करते उदासी से एक जगह पर खड़ा हो गया और सोचने लगा, पहली वर्षा हुई है, आद्रा नक्षत्र दो दिनों तक बरसता रहा, फिर भी ये घर चुप क्यों हैं! इन घरों में चक्कियाँ क्यों नहीं चल रही हैं? बारहमासे क्यों नहीं गाए जा रहे हैं?···पहली वर्षा के स्वागत में क्यों सबके ओंठ चुप हैं?····इन तमाम घरों में बच्चे और लड़कियाँ, झूला डालने के लिए क्यों नहीं मचल रही हैं?

गोविन्द ने सोचते-सोचते, झटके से पृथ्वी की ओर देखा, उसमें आद्रता आ गई थी। पृथ्वी की हरी मुस्कान, में प्रकृति का अनुपम संदेश आ गया था। दूर खेतों की हरियाली, और बड़ी पट्टी की उदासी को देखता हुआ, गोविन्द खीझकर, तेज़ी से छोटी पट्टी की ओर बढ़ने लगा।

छोटी पट्टी में प्रवेश करते समय, गोविन्द की उत्सुक आत्मा फिर बैठने लगी। इस पट्टी में तो मौत की खामोशी थी। लगता था, जगतपुर सो गया है या कहीं चला गया है। गोविन्द मुट्ठी बाँधे, इधर-उधर देखता हुआ सोचने लगा—'इन नीम और आम की डालों पर

क्या हो गया ?···इन पर झूला डालकर पेंग मारने वाले, सावनी गाने वाली कहाँ चुप हो गई हैं ?'···गोविन्द सूने खेतों की ओर देखकर चिन्ता से सोचने लगा—'खेतों में दौड़ते हुए हल क्यों नहीं चल रहे हैं ?··वे पागलों की तरह दौड़ते हुए किसान भाई कहाँ हैं ?····क्यों चारो ओर सन्नाटा है ?····क्या अभी तक उनकी नींद नहीं टूटी है ?···क्या वे इतने बेखबर सो गए हैं ?····।'

गोविन्द तेज़ी से सोचता हुआ किशन के घर की ओर जाने लगा। उसे दुःख हो रहा था, 'आह !··वे सब अहीर और कुर्मी भाइयों की आवाज़ें कहाँ हैं ?····'

'वे संगीत भरी पुकारें क्यों नहीं सुनाई दे रही हैं—काका ! ओ काका !·····टेढ़वा खेत में पानी बाँध देना !······बड़का दादा··· हो !······बड़के गाटे में जल्दी बीज पहुँचा देना ।····पत्ती दीदी,·····सुन रही हो न !·····बीज को पानी में मसल कर किसी चीज़ से दबा देना ।...बड़की काकी ! ओ बड़की काकी !.....डीह बाबा को ज्योनार चढ़ा देना...देवतन बाबा को कुछ मनौती मान देना.....मैं उत्तर के मफिया की ओर हल लेकर जा रहा हूँ !'

गोविन्द इन आवाज़ों को सोचता जा रहा था और तेज़ी से किशन के घर की ओर बढ़ रहा था। उसे लग रहा था, वह जगतपुर में नहीं चल रहा है। वह एक ऐसे गाँव से गुज़र रहा है, जिसमें एक बहुत बड़ा तूफान आया था और अभी-अभी समाप्त हुआ है। गोविन्द ने किशन के दरवाज़े पर पहुँचते-पहुँचते, एक ऊँची आवाज़ से पुकारा—"किशन !.....किशन, यार कहाँ छिपे हो ?"

और गोविन्द बिना किशन के किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए हुए, उसके घर में सीधे प्रवेश कर गया। सामने से किशन आ रहा था।

"जगतपुर में क्या हो गया है, किशन ?" गोविन्द ने गंभीरता से पूछा।

"जगतपुर की हालत अच्छी नहीं है, गोविन्द !" किशन ने उदासी से कहा।

"क्यों बात क्या है ?"

"जगतपुर भूखों मरने जा रहा है !" किशन की वाणी में दर्द था।

लोगों को खाने के लिए अन्न नहीं है !" गोविन्द ने आश्चर्य से कहा, "लेकिन क्या जगतपुर के सब भूख से मर जाएँगे ?"

"सब तो नहीं,......लेकिन हाँ, अन्न की दशा, जगतपुर में खराब है। मानता हूँ कि नीची पट्टी में गेहूँ, जौ, मटर, धान कोदो, जड़हन वगैरह के बखार भरे हैं, लाल साहब की भी यही दशा हो सकती है। शेख़ पट्टी में लोग कारीगरी से जी रहे हैं। कुछ लोगों के पास थोड़ा अन्न भी है। बड़ी पट्टी में चार-छ घर वालों के पास अन्न हो सकता है। छोटी पट्टी में भी हमारे दो-चार घरों की इज्ज़त निबह सकती है; लेकिन और बाक़ी जगतपुर की हालत खराब है गोविन्द !....और..!"

"और नहीं, मेरी एक बात सुनो····किशन, !"·····गोविन्द ने गंभीरता से कहा, "अब क्या किया जाय ?····इधर आर्द्रा दो दिनों तक बरसता रहा है·····जगतपुर की नई फ़सल की तैयारी भी करानी है, बोलो किशन, तुम क्या कह रहे हो ?"

किशन गंभीर होकर नीचे देख रहा था। गोविन्द के दोनों कान जलने लगे थे। उसने किशन के दोनों कंधों को ज़ोर से हिलाते हुए फिर पूछा—"बोलो किशन क्या कह रहे हो ?·····क्या सोच रहे हो ?"

फिर दोनों चुप हो गए। सहसा बगल के कमरे से, गोविन्द की दूल्हन भाभी, अपनी ओढ़नी को, सर पर सम्हालती हुई, किशन और गोविन्द के बीच में आकर खड़ी हो गईं, और धीरे से कहने लगीं—"आप लोग मुझे जगदीशपुर, मेरे नैहर जाने दीजिए·····मैं वहाँ से कम से कम दो गाड़ी—धान, जड़हन, मक्का, कोदो, साँवा वगैरह के बीज ला सकूँगी।"

गोविन्द को लगा मानो उसके जलते हुए गले में, कोई अमृत बनकर बरस गया हो। उसने प्यार से भाभी को देखा और जी कर कहा, "कितनी अच्छी हो भाभी !·····तुम राधे के साथ सुबह जगदीशपुर जाओ !"

"हाँ, नैहर जाने का एक अच्छा बहाना मिल गया !" किशन ने अपनी चिन्ता से उकता कर, धीरे से मज़ाक कर दिया। "हाँ, बहाना ही समझो !·· ···" भाभी ने कुछ रूठते हुए कहा, "जिसे दो चार दिन भी अकेले घर न रहा जाय !·· ···वह अपनी दूल्हन के साथ चले·····या···एक औरत और रख ले !"

"नहीं, मेरी बहुत अच्छी भाभी !····कल सुबह··बहुत तड़के जगदीशपुर चली जायगी !" गोविन्द ने कहा, "और जैसे तुम अपनी बैलगाड़ियों के साथ, थकी जगतपुर लौटोगी···मैं तुम्हे शर्बत घोलकर पिलाऊँगा, सब्बो तुम्हें पंखा झलेगी और किशन भाभी के पैर दबाएगा !"

पारो (भाभी) लज्जा से घूँघट बढ़ाकर, मुस्कराती हुई अन्दर चली गईं। गोविन्द किशन को देखता हुआ फिर गंभीर हो गया।

"जगतपुर को भूख से मरने से कैसे बचाया जायगा ?" गोविन्द ने पूछा "इसी को तो मैं सोच रहा हूँ !" किशन ने धीरे से कहा।

"लेकिन तुम तो चिन्ता कर रहे हो, किशन !"

"हाँ····इसमें चिन्ता की एक बहुत बड़ी बात है गोविन्द !"

"वह क्या है ?" गोविन्द ने आतुर होकर पूछा।

"राजकुमार विजय कल ही से सब पट्टियों के सरपंचों को बुलाकर, जगतपुर को थोड़े से सूद पर खाने के लिए अनाज देने के लिए कह रहा है, और मुफ़्त में बोने के लिए फिर बीज देने को कह रहा है !"

"यह नहीं हो सकता ! जगतपुर को मैं अब नीची पट्टी का शिकार नहीं बनने दूँगा।"

गोविन्द आवेश में किशन के घर से बाहर हो गया। किशन ने अपनी लाठी उठाई और वह दौड़ कर गोविन्द के पीछे हो गया।

गोविन्द तेज़ी से छोटी मट्टी को पार कर रहा था। वह सब सूने घरों को देख नहीं रहा था ; किसी भी घर में कजरी-सावनी नहीं गाई जा रही थी, किसी घर से संगीत भरी चक्कियों की घुरघुराहट नहीं सुनाई दे रही थी। सब चुप थे ! बच्चे सो रहे थे, अधिकतर रो रहे थे, माँ से मचल रहे थे—खेलने के लिए नहीं, झूला डालने के लिए नहीं, रोनी को तैरने के लिए नहीं, बन में आँख-मिचौनी खेलने के लिये अखाड़ा खोद कर उसमें कुस्ती लड़ने के लिए नहीं; वरन् भूख मिटाने के लिए; सिर्फ़ पेट भरने के लिए।

गोविन्द तेज़ी से चला आ रहा था। कितने लोग दरवाज़ेपर खड़े होकर ऊँचे स्वर में गोविन्द को बुरी-बुरी गालियाँ दे रहे थे ! कितनी औरतें उसको बद्दुआ दे देकर उँगलियाँ फोड़ रहीं थीं। कितनी खामोश निगाहें गोविन्द को देख-देख कर दया से भर जातीं थीं, कितनी फाटक के पास, मुख पर शरमाता हुआ घूँघट डाल कर—गोविन्द को देखती जाती थीं। कितने उसे देख-देख क्रोध और झुँझलाहट से आँखें मूँद ले रहे थे। कितनी बद्दुआ, साथ ही साथ कितने मंगल आशीर्वाद भी उसे मिल रहे थे।

वे दोनों, नीचे धरती को देखते हुए चले जा रहे थे। सहसा कई बच्चों ने दौड़ते हुए, गोविन्द को घेर लिया और गोविन्द से लिपट कर कहने लगे—"हमें कहाँ से खाना मिलेगा?....लोग कह रहे हैं कि हत्यारे गोविन्द को मारकर उसी को खाया जायगा !"

गोविन्द ने बच्चों को प्यार से समझाते हुए कहा—"बच्चो !.. आदमी-आदमी को नहीं खाते !..घबड़ाओ नहीं..मैं शाम तक जगतपुर को खाने के लिए अन्न का प्रबंध करता हूँ।..मैं तुम लोगों को भूख नहीं लगने दूँगा..बच्चो..जाओ..मैं अभी लौट कर आऊँगा !"

गोविन्द बच्चों से दूर होकर, अब दौड़ने लगा और शीघ्र ही लाल

साहब की कोट पहुँचा। गोविन्द किशन के साथ कोट के पास खड़ा होकर कुछ सोचने लगा और फिर तेज़ी से मुड़कर ठाकुर के मन्दिर की ओर बढ़ने लगा।

मन्दिर के अहाते में पहुँचकर गोविन्द धीरे-धीरे ठाकुरद्वारे में प्रवेश करने लगा। ठाकुरद्वारा सूना था, गोविन्द ने इधर-उधर देखा। किसी ने अभी अभी भगवान की पूजा, आरती समाप्त की थी। गोविन्द ने यह सोच कर कि इन्द्रा अभी-अभी मन्दिर से अपने महल गई है; मन्दिर के बाहर निकल आया और बरामदे से महल की ओर देखने लगा, और फिर मन्दिर के सामने टहलने लगा।

फिर महल की ओर अपलक दृष्टि से देखता हुआ सोच रहा था कि वह तेज़ी से दौड़कर महल में घुस जाता और उस मंजिल पर चढ़ता हुआ इन्द्रा बहन को ज़ोर से पुकारता...फिर..फिर..।

सहसा इन्द्रा ने अपने महल से गोविन्द को देखा। गोविन्द अपनी उद्विग्नता में टहल रहा था और थोड़ी ही देर में इन्द्रा गोविन्द को पुकारती हुई मन्दिर में आगई। गोविन्द और किशन ने झुककर अभिवादन किया, फिर गोविन्द ने धीरे से कहा—"इन्द्रा बहन!"

"क्या है, गोविन्द कैसे आए?" इन्द्रा की वाणी में जिज्ञासा थी।

"मैं आपकी शरण में एक ऐसी पुकार लेकर आया हूँ, जिसमें जगतपुर की ज़िन्दगी है, गोविन्द की समस्या का एक मज़बूत पहलू है!"

"वह पुकार क्या है?" इन्द्रा ने पूछा।

"वह जगतपुर की धरती की पुकार है, बहन!" गोविन्द ने गम्भीरता से कहा, "जगतपुर को खाने के लिए अन्न नहीं है, फसल बोने के लिए बीज नहीं है।...उधर दूसरी ओर विजय का निशाना ठीक लग रहा है।..विजय जो चाहता था, उसे उसी तरह अनुकूल परिस्थिति मिल गई। वह भूखी जनता को ब्याज पर खाने से लिए अन्न देने क तैयार है, वह फिर इस फ़सल के लिए भी बीज देने को कह रहा है।"

"इसके लिए तुमने क्या सोचा है ?" इन्द्रा ने पूछा।

"बहन ! मैं चाहता हूँ कि जगत पुर सदा के लिए राजा के हाथों में न बिक जाए ! तुम इस समय किस तरह जगतपुर को भूख से मरने से बचा लो.....मैं नई खेती के लिए नये बीज का प्रबंध कर लूँगा।"

इन्द्रा गंभीरता से शून्य में देखने लगी। गोविन्द असीम करुणा से कहने लगा—"इन्द्रा बहन !...मैं इस वर्ष भी अपनी पढ़ाई का बलिदान दे सकता हूँ..लेकिन जगतपुर को भूख से बचाने के लिए मैं तुमसे भीख माँग रहा हूँ, बहन !"

"इतने अधीर क्यों हो रहे हो, गोविन्द !" इन्द्रा ने मुस्कराते हुए पूछा।

"अधीरता इस बात की है, कि कितने जगतपुरवालों के मस्तिष्क में विजय की बात अब भी तैर रही है। उनका विश्वास है कि अन्न संकट का मूल कारण मैं हूँ। मैंने ही उनके देवताओं को अप्रसन्न किया है, और मेरे ही कारण जगतपुर पर यह आफ़त आई है। इसलिए...

है...तो उसकी आत्मा तड़पती हुई मुझे, शायद हम सब लोगों को शाप देगी। हमारी सच्चाई उनके अंध-विश्वास के आगे क्या उत्तर दे सकेगी ?"

"क्यों सच्चाई में शक्ति नहीं ?" इन्द्रा ने पूछा।

"मैं मानता हूँ सच्चाई में शक्ति है, लेकिन व्यवहारिक रूप में अंध-विश्वास में अधिक तीव्रता है—जैसे प्रेम की अपेक्षा घृणा में अधिक तीव्रता और शक्ति है !"

इन्द्रा अपने महल की ओर देखती हुई मुस्कराने लगी। उसने किशन से पूछा—"किशन ! तुमने क्या सोचा है ?"

"मैं सोचता नहीं, सिर्फ़ तय कर लेता हूँ," किशन ने कहा, "मेरे पास जितना गल्ला है, मैं कमसे कम अपनी पट्टी वालों को खिला दूँगा।"

"शाबाश !" इन्द्रा ने प्रसन्नता से कहा, "गोविन्द मैं अभी आ रही हूँ !"

यह कह कर इन्द्रा तेज़ी से अपने महल की ओर बढ़ गई । गोविन्द ने किशन के दाएँ हाथ को मज़बूती से पकड़ते हुए पूछा—"क्यों किशन !..राजकुमार के गल्ला और मुफ्त बीज देने की बात पर, पट्टियों के सरपंचों ने क्या कहा ?"

"उन्होंने कहा है कि, हम लोग सोच कर शीघ्र उत्तर देंगे।"

"वे क्या सोच रहे होंगे किशन ?" गोविन्द ने पूछा।

"तुम्हारी बातें और ज़मीदारी उन्मूलन, दोनों का प्रभाव उनके दिलों पर है और राजा की ओर से थोड़ा-सा असन्तोष उनके सोचने का विषय है !"

गोविन्द सोचते हुए अपने सर के उलझे हुए बालों को खींच रहा था और वह अपने मानसिक जगत में अस्वस्थ-सा होने लगा था; किशन ने चाहा कि गोविन्द शान्ति से मन्दिर में बैठ जाए...। पर गोविन्द ने अजीब परेशानी से कहा—"जगतपुर के बाहर और भीतर दोनों में तूफ़ान चल रहा है, देखो मेरी किश्ती इस तूफ़ान में बचती है या डूब जाती है।"

गोविन्द उद्विग्नता से मन्दिर के सामने टहल रहा था। इन्द्रा अपने एक नौकर के साथ गोविन्द के सामने आ गई।

"क्या है बहन इन्द्रा ?" गोविन्द ने जिज्ञासा से पूछा।

"अच्छा है," इन्द्रा ने असीम उत्साह से कहा, "मैं इस समय आसानी से जगतपुर को तीन सौ मन गल्ला दे सकती हूँ—दो सौ मन गल्ला खाने के लिए और सौ मन गल्ला नए बीज के लिए, जिससे जगतपुर की नयी खेती होगी।"

"लेकिन यहाँ से सिर्फ़ दो सौ मन गल्ला मिल सकता है," इन्द्रा के साथ वाले आदमी ने कहा, "बाक़ी ग़ल्ला तिलकपुर के खलँगे पर है।

"तो इससे क्या," इन्द्रा ने कहा, "लोग वहाँ जाकर गल्ला उठवा लाएँगे !"

गोविन्द ने इन्द्रा के दोनों हाथों को पकड़ कर अपने मस्तक से स्पर्श कर लिया। किशन के मुख पर उत्साह की रेखाएँ उभर आईं थीं।

"लेकिन गल्ला कैसे बँटवाया जायगा ?" किशन ने पूछा।

"पट्टियों में गोविन्द स्वयं जा-जाकर गल्ले को बटवाएँ, इससे अच्छा तरीक़ा और क्या हो सकता है ?"

इन्द्रा ने यह कह कर गोविन्द की बाँह पर फटी हुई कमीज़ में उँगली डालकर, अजीब बचपने से फाड़ दी। गोविन्द ने उधर ध्यान भी नहीं दिया। वह किशन को देख रहा था। उसी समय किशन ने कहा—"नहीं, इस तरह से गल्ला बँटवाने का तरीक़ा ग़लत है ! गोविन्द के हाथों से गल्ला बटाना ठीक नहीं—मेरे ख़याल से गल्ला राजकुमारी इन्द्रा के हाथों से बँटना चाहिए !"

"क्यों बहन ठीक है न !" गोविन्द ने पूछा।

"नहीं, यह नहीं ठीक है ! इस तरह से स्पष्ट रूप से हमारे राज-घराने में लड़ाई छिड़ जायगी। अभी तो यह लड़ाई राजा और जगतपुर की है। फिर परिस्थिति और उलझ जायगी !"

"ठीक है !" गोविन्द ने सोचते हुए कहा, "एक तरीक़ा, बहुत अच्छा मेरे मस्तिष्क में नाच रहा है। गल्ले को बाँटने की जिम्मेदारी दो सरपंचों को देदी जाय और मैं एक सरपंच को लेकर तिलकपुर अनाज दिलवाने चला जाऊँगा !"

"यह तरीका सबसे अच्छा है !" किशन और इन्द्रा दोनों ने समर्थन किया।

इन्द्रा अपने आदमी के साथ महल को चली गई। किशन और गोविन्द दोनों सरपंचों की खोज में निकल गए।

गोविन्द किशन के घर पारो भाभी को जगदीशपुर भेजने की तैयारी में लग गया और किशन सरपंचों के घर गया।

थोड़ी ही देर के बाद किशन ने लौटकर गोविन्द को सूचना दी कि सब सरपंच राजमहल में बुलाए गए हैं।

गोविन्द किशन को लेकर, उसी क्षण राजमहल—नीची पट्टी की ओर बढ़ गया। नीची पट्टी में अधिक शोर था, लोगों के घरों में चक्कियाँ चल रहीं थीं। लोग खेती की तैयारी में लगे थे। बच्चे और लड़कियों के होंटों पर सावन की बहार आ रही थी। गोविन्द, किशन के साथ नीची पट्टी में बढ़ता जा रहा था और चारो ओर से उसे व्यंग और शाप की बौछारें मिल रहीं थीं।

गोविन्द के पागल कान केवल 'भूख, भूख' सुन रहे थे। आँखें केवल अनाज के दाने, अनाज के बोरों को देख रहीं थीं।

राजमहल के सबसे बाहरी अहाते में पहुँचकर गोविन्द किशन को रोकते हुए खड़ा हो गया। सामने थोड़ी दूर पर तीन सरपंच, सर झुकाए हुए चले आ रहे थे।

गोविन्द ने आगे बढ़कर, जिज्ञासा से पूछा,

"क्या है?····क्या हुआ?"

"बुरा हुआ, राजा ने सवाई सूद पर खाने के लिए अनाज देने को कहा है!" एक सरपंच ने कहा।

"लेकिन बुरा क्या हुआ?" गोविन्द ने पूछा।

"बुरा यह हुआ कि परिस्थितिवश हम लोगों ने इसे स्वीकार किया है। जगतपुर की जनता भूखों मरती जा रही है।"

"यह नहीं होगा," गोविन्द ने तेज़ स्वर में कहा, "जगतपुर का एक भी आदमी भूख से नहीं मर सकता। मैं उनके लिए अनाज भीख माँगूँगा। मुफ़्त में उन्हें अन्न मिलेगा।"

"क्या यह हो सकता है?" एक ने आश्चर्य्य से कहा।

"यह हो गया, हो सकने की बात दूर छुट गई। आप लोग अभी लाल साहब के महल चलिये। सौ मन ग़ल्ले को अपनी-अपनी पट्टी में ले जाकर जो भूखे हों, जिनके पास ग़ल्ला नहीं है; उनमें हिसाब से बाँट दीजिये। और सौ मन ग़ल्ला, तिलकपुर में है। हम लोग वहाँ चलकर उस ग़ल्ले को भी जगतपुर में बाँट देंगे!"

"सच गोविन्द!...यह क्या कह रहे हो?" तीनों सरपंचों ने आश्चर्य्य मिश्रित प्रसन्नता से कहा।

"मैं सत्य कह रहा हूँ; यह अनाज जगतपुरवालों का अपना अनाज है, इस पर ब्याज नहीं है। ब्याज और सूद वाले अन्न वे होते हैं जो बोरों में हमेशा के लिए भर दिए जाते हैं। जिनसे ऊँची-ऊँची छल्लियाँ बनाई जाती हैं और उसके पास इन्सान के ढेर, अन्न के लिए कराहते हुए मर जाते हैं।"

गोविन्द उन आदमियों के साथ, नीची पट्टी को पार करता हुआ लालसाहब के महल की ओर बढ़ रहा था। गोविन्द और किशन के पैरों में उत्साह और विजय की गति थी। उन तीनों के पैरों में विश्वास और प्रसन्नता की तेज़ी थी।

महल के अहाते में पहुँचकर उन लोगों ने देखा, ग़ल्ला तैयार रक्खा हुआ था। गोविन्द किशन के साथ वहीं रुक गया वे सब अपनी पट्टी आकर बैलगाड़ियों से सारा ग़ल्ला लाद लाए।

महल से जिस समय आख़ीरवीं गाड़ी लदकर भूखों की पट्टी जा रही थी, गोविन्द ने उस गाड़ी के पीछे-पीछे चलते हुए सुना—गाड़ीवान मस्ती से एक बारहमासे का गीत, ऊँचे स्वर में दुहरा रहा था।

* * *

शाम तक, तीनों पट्टियों में ग़ल्ला बँट चुकने के बाद, गोविन्द ने कुछ प्रमुख लोगों से कहा कि आज रात के पिछले पहर में यहाँ से तिलकपुर चल देना है। और सर पर, घोड़ों पर, पीठ पर सौ मन ग़ल्ला लाकर जगतपुर में और बाँटना है।

जगतपुर में ज़िन्दगी आ गई, कब के मुरझाए हुए होंठों पर ऐसी मुस्कराहट दौड़ गई जैसे सूखी हुई पृथ्वी पर पहली वर्षा से धरती मुस्करा देती है। सब घरों में दीपक जले। सब घरों में चक्कियाँ चलीं। सब घर वालों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। सब लोगों ने गोविन्द को अपलक देखा।

उस रात को गोविन्द ने, सुबह पारो भाभी को जगदीशपुर जाने के लिए पूरी तैयारी कर दी। फिर काफ़ी रात को, गोविन्द अपने घर लौटा और खाना खाकर चारपाई पर लेट गया। उसे रात के पिछले पहर में तिलकपुर जाना था; इसी बात को सोचते-सोचते उसे ज़ैनब की याद आई और वह सीधे शेख पट्टी की ओर चल दिया।

गोविन्द ने ज़ैनब के घर पहुँचकर, अम्मी को आदाब किया। अम्मी उस रात को गोविन्द को देख इतनी खुश थीं कि उन्होंने प्यार से गोविन्द को अपने दामन में छिपा लिया। और उसके सर पर अपने हाथों को फेरती हुई उसकी ज़िन्दगी के लिए लाखों दुआएँ दीं, और उसे देखती हुई, उसकी राहत और खुशी के लिए कितनी बार पाक परवर दिग़ार परमेश्वर का नाम दुहराया।

गोविन्द थोड़ी देर अम्मी से बातें करता रहा, लेकिन उस समय तक ज़ैनी, गोविन्द को अपने पास बुलाने के लिए बीसों आवाज़ें दे चुकी थी।

गोविन्द अम्मी के कमरे से बाहर निकल कर आँगन में खड़ा हो कर इधर-उधर देखने लगा! ज़ैनब ने पुकारकर कहा—"ओ ढूढ़ने वाले!••ज़ैनी बाजी इधर हैं!" गोविन्द दौड़ता हुआ दरवाज़े के परदे को हटाकर कमरे में घुस गया। उसी समय ज़ैनी ने यूँ प्यार की अदा से ज़ैनब के गाल पर धीरे से मारकर कहा—"शरीर कहीं की, मानती नहीं!•••••मैंने लाख बार समझाया है कि ज़रा तमीज़ से किसी शरीफ आदमी के आगे मेरा अच्छा सा नाम तो न बिगाड़!"

"अच्छा! अच्छा !!····शाहज़ादी ज़ैबुन्निसा ! अब खुश हो गई न !"

ज़ैनब ने मुस्कराते हुए यह कहकर, प्यार से ज़ैनी के क़ीमती बालों से अपना मुख छिपा लिया, और उसकी खामोश आँखों को चूम लिया; जिनमें मोतियाबिन्द होने के नाते रोशनी नहीं थी, लेकिन बेहद बाहरी खूबसूरती अब भी थी।

ज़ैनी अपने पलँग पर लेटी थी और ज़ैनब कुछ बातें करती हुई उसके सर पर शायद तेल लगा रही थी। गोविन्द, दोनों को देखता हुआ, ज़ैनी के पास बैठ गया।

ज़ैनी बार-बार शरमाकर उठ बैठना चाहती थी लेकिन ज़ैनब हँसती हुई उसे उठने नहीं देती थी। ज़ैनी उसकी बत्तमीज़ी पर बहुत नाखुश थी, लेकिन उसी समय ज़ैनब ने उसे बनाते हुए कहा—"आप लेटी रहें !·····अपने तख़्तताऊस पर आराम करें ! आप सल्तनत की शहज़ादी ! ज़ैबुन्निसा !! मैं आपकी प्यारी बाँदी ज़ैनब ! गोविन्द आपका निहायत ईमानदार वज़ीर ! फिर आप बार-बार क्यों उठने की तकलीफ़ कर रही हैं ?"

गोविन्द हँसने लगा। ज़ैनी ने हार मानकर गोविन्द से अपने लेटे रहने की बत्तमीजी की माफ़ी माँगी और वह आधी लेटी हुई गोविन्द की ओर देखने लगी।

"बाजी ! क्या तुम गोविन्द को देख रही हो ?" ज़ैनब ने पूछा।

"हाँ, महसूस कर रही हूँ और अपनी भीतरी आँखों से देख भी रही हूँ।"

"अच्छा, फिर गोविन्द की हुलिया बताओ !"

"नहीं ज़ैनब !" ज़ैनी ने असीम दीनता से कहा, "तू ही बतादे··तू···गोविन्द पर शायरी करती जा, मैं उसे महसूस करती जाऊँ।"

"मैं सिर्फ हुलिया ही बता सकती हूँ, शायरी तो तू ही करती है !"

"अच्छा हुलिया ही बता !" ज़ैनी ने कहा।

"अच्छा ! सुनो, मैं बताती हूँ।" ज़ैनब ने कहा, "महसूस करो·· गोविन्द एक नौजवान,·····तक़रीबन·····चौबिस साल की उम्र।·· न बहुत मोटा,·· · · यानी तोंद वाला नहीं···मथुरा के चौबे की तरह,·· · ·हाँ,· · ·न बहुत पतला, सीकिया पहलवान की तरह।

"हाँ, हाँ समझ रही हूँ· · ·कहती जाओ !" ज़ैनी ने गोविन्द को स्पर्श करते हुए कहा।

"हाँ· · ·आगे सुनो· · ·मेरे हाथ से पाँच हाथ, आधा बालिस्त, आधी उँगली,· · ·लम्बा !· · ·उभरा हुआ छत्तीस इंची सीना, शेरों ऐसी कमर !"

"दर्ज़ी को नाप बता रही हो क्या ?" ज़ैनी ने मुस्कराते हुए कहा।

"नाप नहीं, सुनती तो जाओ !· · ·गेहुँआ रंग, भरा हुआ मुख· · बिखरे हुए घुंघराले बाल· · ·मानो वर्षों से तेल और कंघी से भेंट नहीं। चौड़ी पेशानी पर परेशानी की लकीरें; पतले कान, उठे हुए। लम्बी काली भवें। बड़ी बड़ी कुछ सोचती हुई आँखें · · ·मानो कोई बेशक़ीमती चीज़ खो गई है। गालों पर किसी लाल चीज़ का अक्स, लगता है कहीं चाँटा खा गए हैं !"

"बड़ी शरीर हो ज़ैनब ! बत्तमीज़ कहीं की !! जाओ मैं कुछ नहीं सुनूँगी।" ज़ैनी ने रूठते हुए कहा। गोविन्द खिल-खिलाकर हँस रहा था।

"अच्छा, बाजी रूठो नहीं, सुनो !" ज़ैनब ने कहा, "मैं ऐसी हुलिया बता रही हूँ कि तुम्हें महसूस करने में दिक़्कत न हो, सुनो ज़रा र से सुनो····। लम्बी उठी हुई नाक· · ·जैसे जैसे· · -·।

"जैसे-जैसे कुछ नहीं !" ज़ैनी ने बगड़ क र कहा, "बत्तमीजों की तरह शायरी कर रही है।"

"अच्छा जाओ, मैं कुछ नहीं बताती !" ज़ैनब ने रूठते हुए कहा।

"लेकिन शहज़ादी की फटकारों पर बाँदियाँ रूठती नहीं, मेरी प्यारी ज़ैनब ! एख़लाक़ से बातें करनी चाहिए ! रूठो नहीं...अपनी बात तो पूरी कर लो !"

"क्या पूरी कर लूँ !" ज़ैनब ने धीरे से कहा, "इस हट्टे-कट्टे चुपचाप बैठे हुए नौजवान का नाम गोविन्द है। इसके हाथ हैं, पैर हैं, आँखें हैं, होठ हैं, दाँत हैं। खाता है, सोता है, चलता है। चप्पल, लम्बी धोती, लम्बा कुर्ता पहने है। बहुत होनहार और आला इन्सान लगता है; बस हुलिया ख़त्म हो गई।"

ज़ैनी और गोविन्द सीमा तोड़कर हँसने लगे ज़ैनब गोविन्द को देखती हुई मुस्कराने लगी।

"ज़ैनब ! बड़ी प्यारी लड़की है, गोविन्द !" ज़ैनी ने कहा।

"हाँ, हाँ रहने दीजिए अब अपनी शायरी !" ज़ैनब ने प्यार से ज़ैनी को रोकते हुए कहा, "शरीफ़ों की तरह बाजी पहले गोविन्द से तो यह पूछ लेतीं कि बेचारा इतनी रात को यहाँ क्यों आया है, क्या मुसीबत है ?"

"कोई विशेष बात नहीं है," गोविन्द ने कहा, "मैं आज ही रात को पिछले पहर में कुछ आदमियों के साथ तिलकपुर गल्ला लेने के लिए जा रहा हूँ।"

"और कब लौटोगे ?" ज़ैनब ने गंभीरता से पूछा।

गोविन्द ने कहा—"सुबह सात आठ बजे तक...।"

गोविन्द अपने घर जाने लगा। ज़ैनब उसे बाहर तक पहुँचाने आई। गोविन्द आसमान की तरफ इधर-उधर, तैरते हुए बादलों को देखने लगा ! ज़ैनब ने मुस्कराते हुए चाँद की तरफ देखा और गोविन्द के दोनों हाथों को अपने सीने में चिपका कर धीरे से कहा—"मैं चाहती हूँ कि इस समय आसमान में ये सब तैरते हुए बादल एक-एक करके चाँद पर टिक जाते और इस तरह आज का चाँद इन बादलों की मोटी तह में ढँक जाता ?"

"तब क्या होता ?" गोविन्द ने मुस्कराते हुए पूछा।

ज़ैनब ने आसमान की तरफ़ देखते हुए कहा—"फिर घटाटोप अँधेरा हो जाता और मैं तुम्हारे साथ बड़ी पट्टी चलती, तुम्हारे पैर मलके तुम्हें मीठी नींद में सुला देती और तुम्हारे इन सूखे हुए बालों में तेल लगाकर घर लौट आती!"

गोविन्द ने यूँ मीठी अँगड़ाई ली और उसने ज़ैनब के कँधे से झूलती हुई ओढ़नी को उसके सर पर रख दिया और फिर नीचे खींचकर घूँघट बना दिया। फिर गोविन्द ने ज़ैनब के हाथों को ज़ोर से दबाते हुए कहा—"अब लो, चाँद बादलों में छिप गया...देखो कितना घटाटोप अँधेरा हो गया।"

"लेकिन यह जो दूसरा आफ़ताब निकल आया है!" ज़ैनब ने गोविन्द के मुख को छूते हुए कहा।

शेख पट्टी में लौटकर, गोविन्द जब अपने घर आया, उस समय सूरा बहन बहुत करुण स्वर से मीरा का एक भजन गा रही थी। गीत की लय आँसुओं में इतनी भीगी लग रही थी कि गोविन्द अपनी चारपाई पर चिन्तित हो गया और उसे लगने लगा कि वह आँसू के किसी झरने में बह रहा है; और कोई उसके कानों में स्फुट स्वर से कह रहा है—यह विधवा के आँसू हैं, इन्हें जब रोना होता है तब गाने का बहाना करतीं हैं। और ईश्वर के भजनों को गाकर तड़पती हुई ईश्वर को ही शाप देतीं हैं कि मूर्ख ईश्वर! भारत में पति के साथ उसकी बेकसूर दुल्हन को क्यों नहीं मार डालता!

गोविन्द यह सोचता-सोचता सो गया और रात के पिछले पहर में जब उसकी आँखें खुलीं, उसको मालूम हुआ कि बाहर दरवाज़े पर गोविन्द के साथ जाने के लिए, जगतपुर के लोग खड़े हैं। उसमें इन्द्रा की ओर से, तिलकपुर का ज़िलेदार भी था।

गोविन्द सबके साथ रोनी को पार करके तिलकपुर की ओर बढ़ रहा था थोड़ी रात और शेष थी। गोविन्द सबसे आगे, कुछ बढ़ा

हुआ चल रहा था। सहसा उसने देखा एक नौजवान औरत बेतहाशा भागी चली आ रही है। गोविन्द अपनी जगह पर रुक गया और उस पागलों की तरह न जाने कहाँ भागती हुई औरत को देखने लगा। जगतपुर के और लोग अपने रास्ते पर आगे बढ़ गये थे, सिर्फ़ गोविन्द अपना रास्ता छोड़कर उस दौड़ती हुई औरत के सामने खड़ा हो गया। औरत रास्ता काटकर भाग जाना चाहती थी, तब तक गोविन्द ने आगे बढ़कर डर से काँपती हुई उस औरत को पकड़ लिया!

औरत की आखें रो रही थीं। उसका आँचल आँसुओं से भींगा था गोविन्द ने उसे पकड़ते हुए पूछा—"क्या हो गया है तुम्हें?"

औरत हाँफती हुई, गोविन्द को अधखुली आँखों से देखती हुई चुप थी।

गोविन्द ने फिर पूछा—"कहाँ अकेली भगती हुई जा रही हो?"

"तुमसे मतलब!...मुझे छोड़ दो.." औरत ग़ुस्से और ताक़त से गोविन्द को झिड़क देना चाहती थी।

"मैं.....सोना ताल में डूबने जा रही हूँ।" औरत ने एक बार सारी ताक़त बटोरकर गोविन्द से दूर भागना चाहा पर दूसरे ही क्षण वह गोविन्द के मज़बूत हाथों पर शिथिल होकर झुक गई।

"मत डूबो··जाओ अपने घर लौट जाओ!" गोविन्द ने कहा।

"पागल कहीं के!..मुझे छोड़कर अपने रास्ते जाओ, नहीं तो अभी सुबह हो जायगी..मैं तो मर ही जाऊँगी···तुम भी मार डाले जाओगे!"

यह कह कर औरत, अपने हाथ, पाँव, पीठ, कमर पर लगी हुई चोट के घावों को दिखाने लगी। आखिर में उसने अपने पेट को दिखाया। पेट पर बहुत बुरी चोट लगी थी। उसका पेट टेढ़ा होकर एक ओर निकल आया था।

गोविन्द आँखों में आँसू लाकर उसके पेट की चोट पर अपने हाथ फेरने लगा। औरत ने चीखकर गोविन्द के हाथ को दूर करते हुए कहा—"मेरे इस पेट को न छूओ . ...यह विधवा का पापी पेट है, यह धरती का पाप है !···" औरत की वाणी गिरती जारही थी, और वह अपनी बेहोशी में बुदबुदा रही थी, "इस पेट में किसी का जलाया हुआ मुहब्बत का चिराग़ था ····वह मुझसे शादी करना चाहता था ···मैं उसकी दुल्हन बनने वाली थी, ··लेकिन आह ···मैं··· हिन्दू विधवा हूँ।··"

औरत को एक हिचकी आई और गोविन्द की बँधी हुई हथेली खून से भर गई। औरत ने खाँस कर आख़िरी साँस में कहा—"वह भी.. आज रात को मार डाला गया ···मेरे सामने ···मुझे दिखाकर ······।"

औरत कुछ और कहने के लिए अपने हाथ-पाँव पटकने लगी। गोविन्द ने उसे धीरे से धरती पर लिटा दिया। औरत की आखिरी कराह से लगा, आसमान फट जायगा धरती धँस जायगी। पर आसमान फटा नहीं उस पर कितने चमकते हुए सितारों के साथ चाँद मुस्करा कर डूब रहा था। धरती फटी नहीं, उस पर कितने माहू, सेमर, आम, बरगद, पीपर आदि के ऊँचे-ऊँचे पेड़ हवा में मस्ती से झूम रहे थे।

औरत का मुख सदा के लिए खुल गया था, उसमें से अब भी ताज़े दिल के खून बह रहे थे। उसकी आँखें सदा के लिए खुल गईं थीं।

गोविन्द ने रोकर औरत के खुले हुए मुख को प्यार से दबा कर बंद कर दिया और उसके बंद दोनों होंठों के बीच ख़ून की पतली रेखा को ···—गोविन्द ने चूम लिया।

जगतपुर के लोगे दूर से गोविन्द को पुकार रहे थे। औरत की खुली हुई आँखें, रोते हुए गोविन्द को समझा रहीं थीं—जाओ ····ये आँखें ···अपने नश्वर शरीर को छोड़कर धरती में समा जायँगीं और एक दिन

•••धरती पर आकर एक ऐसे युग की प्रतीक्षा करती रहेंगी ••• जब इन धरती की आँखों में फिर से चिराग़ जलेंगे।—

गोविन्द दूर तक उस बोलती हुई शव को देखता रहा और उस क्षण उसने डर से आँखें मूँद लीं जब उसने देखा कि उस औरत की शव के पास कुछ जंगली जानवर आ घिरे हैं।

गोविन्द क्षण भर में दौड़ता हुआ जगतपुरवालों के साथ होकर चुपचाप आगे बढ़ने लगा।

अब तक सुबह नहीं हुई थी। गोविन्द, उदास अपने आदमियों के साथ रेतीगंज, मुहादा, बैदोलिया आदि न जाने कितने गाँवों को पार कर चुका था। तिलकपुर अब नज़दीक आ गया था। गोविन्द को को अब सिर्फ़ तेनुआ, सीतारामपुर, चौरी गाँवों को पार करना था।

गोविन्द की आत्मा, उस औरत की आँखों में आए हुए खून से भींग गई थी। उस औरत की कच्ची मौत से उसके दिल में एक सूराख बन गया था! वह बार-बार तिलमिला कर सोचता कि वहशी इन्सानों की एक दीवार, शीशे की दीवार की तरह उसके सामने खड़ी हो जाती। और वह उस दीवार में सिर के बल ठोकर मारकर उसके आरपार हो जाता। उसका बदन तमाम खरोंचों से लहू-लहू हो जाता और तब वह वहशी इन्सानों के उस पार देखता कि क्या है!

गोविन्द सीतारामपुर से अब चौरी पार कर रहा था। उसे अजीब थकान आ गई थी। वह गाँव में ही किसी खाली जगह में बैठकर थोड़ा आराम करना चाहता था, लेकिन अब सुबह होने वाली थी, लोगों का विचार हुआ कि चौरी गाँव के बाहर एक कुएँ पर आराम किया जाय।

गाँव के बाहर होते ही, लोगों ने दूर से ही तिलकपुर को देखा। गोविन्द को दूसरे ही क्षण लगा कि उस गाँव में गुहार लगी है! उसने ऊँचे स्वर में लोगों से कहा कि दौड़ो तिलकपुर में गुहार मची है।

लोग सिर्फ बैठ ही पाए थे, और आराम को सोच रहे थे—लेकिन सब लोगों ने देखा तिलकपुर में आग लगी है। लोग गोविन्द और, ज़िलेदार के साथ बेतहाशा गाँव की ओर दौड़ने लगे।

गाँव में पहुँचते ही लोग यह देखकर, दुख से सहम गए कि आग लालसाहब के खलँगे में लगी है। लोग चिल्लाते हुए आग बुझाने लगे। ज़िलेदार ने चिल्लाकर गोविन्द से बताया कि आग ठीक-ठीक अनाज के बखार पर लगी है। बखार से ग़ल्ला किसी तरह बाहर नहीं निकाला जा सकता था, सिर्फ आग बुझाना गोविन्द के लिए एक विकल्प था।

गोविन्द बाहर से आग बुझा रहा था, थोड़ी देर में आग बाहर से बुझ चुकी थी! उसी समय किसी ने चिल्लाकर कहा कि आग भीतर गल्ले के बखार में लग चुकी है। गोविन्द को लगा, जैसे वज्रपात हो गया। वह अपनी बेहोशी में लोगों के लाख मना करने पर भी पानी लेकर खिड़की के रास्ते से बखार के पास पहुँच गया और पानी डालकर वहाँ की बढ़ती हुई आग को बुझा दिया, लेकिन जिस समय वह खिड़की के रास्ते से बाहर लौट रहा था; धुएँ के मारे उसकी आँखें फूट रहीं थीं, और वह बन्द आँखों से खिड़की को कूद रहा था कि उसके पैर नीचे कहीं फँस गए और वह सामने ही दहकते हुए अँगारे के पास गिर पड़ा और उसकी दोनों हथेलियाँ झुलस गईं।

जिस समय लोगों ने गोविन्द को बाहर निकाला, वह बेहोश हो चुका था।

आग बुझ गई और वह बाहर खुली हवा में लिटा दिया गया। जगतपुरवाले रोते हुए परेशान, गोविन्द को देख रहे थे। गोविन्द अपनी बेहोशी में, करवटें बदलता हुआ कह रहा था—'आग बुझाओ! ···ग़ल्ला बचाओ···सब ग़ल्ला बचा लो···सौ मन ग़ल्ला जगतपुर ले जाओ··जल्दी ले जाओ····ग़ल्ला जगतपुर वालों को बाँट दो··· आग···चोरे···ग़ल्ला···मौत··भूख··मौत··ग़ल्ला!"

बहुत तरक़ीबों के बाद, काफ़ी देर में, गोविन्द को होश आया। उसकी दोनों हथेलियों में दवा लगी थी और दर्द—जलन के मारे दोनों हाथ उठ नहीं रहे थे।

घोड़ों, बैलों और गाड़ियों पर लदकर ग़ल्ला जगतपुर की ओर रवाना हुआ, और जगतपुर के आदमियों के साथ पीछे-पीछे गोविन्द भी चलने को तैयार था। तिलकपुर के लोग गोविन्द को रुकवाने के लिए प्रार्थना कर रहे थे, पर गोविन्द उनसे क्षमा माँगता हुआ, अपनी राह पर था।

दिन दोपहर से ज़्यादा ढल चुका था। हवा में काफ़ी लू के साथ लपटें आ रहीं थीं। गोविन्द दोनों हाथों को गले में एक पट्टी के सहारे सीने में टिकाए हुए धीरे-धीरे चल रहा था। उसका सारा बदन दर्द और थकान से झन्झना रहा था। सर इतना भारी लग रहा था कि वह चाहता था कोई एक लम्बी कील उसके माथे में आर-पार चुभा देता, जिससे उसका दर्द बदल जाता।

गोविन्द चौरी को पारकर; सीतारामपुर की अमराइयों से चल रहा था! वह अब बहुत धीरे-धीरे चलने लगा था, बैलगाड़ियाँ आदि ग़ल्ले को लिए हुए काफ़ी आगे बढ़ गईं थीं। लोग बार-बार उसे किसी सवारी पर बिठाने के लिये कह रहे थे। उसे आगे, पैदल चलने से रोक रहे थे।

सीतारामपुर में, किसी तरह पहुँचकर, गोविन्द ने अपने साथियों से कहा, "अब तुम लोग जाओ मैं आज इसी गाँव में रहकर आराम करूँगा। तुम लोग सावधानी से ग़ल्ले के साथ जगतपुर पहुँच जाओ। अगर ज़रूरत समझना तो पहुँचते ही न्यायपूर्वक सब में ग़ल्ले को बाँट देना, मैं कल बहुत जल्दी पहुँच जाऊँगा!"

गोविन्द साथियों को समझाता हुआ, गाँव के बाहर घनी महुआरी में आ गया था। और जिस समय गोविन्द साथियों से अलग होकर

गाँव की ओर मुड़ा, उसे जल्दी जगतपुर पहुँचने की मोह लगने लगी। वह दूर खड़ा होकर जगतपुर जाते हुए ग़ल्ले के क़ाफ़िले को देखने लगा। लोग दूर से घूम-घूम कर गोविन्द से पुकार कर कहते रहे थे— "गोविन्द ! हममें से किसी की तुम्हारे साथ ज़रूरत है?...तुम्हारा अकेले रुक जाना ठीक है ?"

"हाँ, कोई खास बात नहीं है, मैं सुबह पहुँच जाऊँगा घबड़ाने की कोई बात नहीं !"

गोविन्द यह कह कर, फिर मुड़ा और आगे बढ़ते ही दायीं ओर देखा, एक नौजवान लड़का घनी महुआरी में कम से कम बीस बैठी हुई भैंसों में घिरा हुआ एक ऊँची भैंस को खड़ी करके दूध पी रहा था। गोविन्द अपनी जगह पर खड़ा हो गया, नौजवान अपनी मस्ती में भैंस के थन से अपने मुँह में घर-घर दूध गार रहा था और कुछ दूर पर एक नौजवान लड़की अपनी बकरी के लिए महुए की पत्तियाँ पीट रही थी, और जैसे ही उसकी आखें इस सैलानी नौजवान पर पड़ीं; वह दूर से ही मुस्करा उठी और उसके हाथ से उसका लम्बा बाँस ज़मीन पर गिर पड़ा।

वह अपने मासूम पंजों पर खड़ी होकर बिल्लियों की तरह, नौजवान की ओर चल पड़ी। वह रुक-रुक कर, अपने पंजों को दबाती हुई, मुख की बरबस हँसी को अपने दोनों हाथों से मींचती हुई, इधर बढ़ रही थी नौजवान मस्ती से, थन के नीचे, आँखें मूँदकर भैंस का गाढ़ा दूध पी रहा था।

लड़की धीरे से आकर, शिकारी बिल्ली की तरह नौजवान के ठीक पीछे बैठ गई और अपने मनचले हाथों से, यूँ अजीब शरारत से नौजवान के कमर में ज़ोर से गुदगुदा कर हँसी से चीख उठी। नौजवान डर कर भैंस के नीचे ही लोट गया, और घबड़ा गया। लड़की हँसती हुई अपनी बकरी की ओर भागने लगी। नौजवान ख़ुशी से चिल्ला उठा, "सोना !"

सोना शरारत से हँसती हुई भगती जा रही थी, जवान उसे पुकारता हुआ पीछा कर रहा था। दोनों हँसते हुए दौड़ रहे थे। दूर से सोना की बकरी, कान उठाए हुए, मुँह में महुए की हरी पत्ती दबाए हुए, सोना को देख रही थी। जवान की भूरी भैंस, मुख में जुगाली की सफ़ेद गाज़ लिए हुए, सर उठा कर अपने पूरन को देख रही थी। और गोविन्द अपने दोनों हाथों को सीने में चिपकाए हुए, सोना, बकरी, भैंस, महुए के हरे पेड़ और धरती पर टपकता हुआ भैंस का सफ़ेद दूध देख रहा था। और अपने दिमाग़ में देख रहा था कि एक साथ, एक क्षण, आसमान में सूरज और चाँद दोनों निकल रहे हैं और दोनो एक दूसरे को खींच रहे हैं।

उसी समय गोविन्द ने देखा, पूरन ने पागलों की तरह हँसती हुई सोना को अपनी गोद में उठा लिया है और उसके हँसते हुए, शरारती आँख, नाक, ओंठ, गला, घुटने, जाँघ सबको चूमता चल रहा है। बकरी अपने मुख में अब तक महुए की हरी पत्ती दबाए हुए, पूरन की गोद में अपनी सोना को देख रही है, भैंस जुगाली बंद किए हुए, सफ़ेद गाज़ से भरे हुए मुख को ऊपर उठाए, किसी को गोद में लिए हुए, अपसे पूरन को देख रही है।

पूरन ने अपने मुख को; सोना के सीने में गड़ा कर न जाने कितनी गहराई में छिपा लिया। सोना अपने दोनों हाथों से, ज़ोर-ज़ोर से पूरन के खुले हुए सिर पर चाँटे मार रही थी और हँसती हुई, गुस्से से छटपटाती हुई कहती जाती थी—"छोड़ मुझे..दाढ़ीजार!

मुझे छोड़ दे...बन्दर कहीं के!

अच्छा, अगर नहीं छोड़ता...तो मैं अभी रोई!

अब रोई..छोड़ मुझे शैतान कहीं का!"

गोविन्द मुस्कराता हुआ इन्हें देख रहा था, और उसकी दिमाग़ी आँखें देख रहीं थीं कि चाँद और सूरज दोनों एक दूसरे की गोद में सो गए हैं, और उनके ऊपर अजीब तेज़ी से न जाने कितने सुनहरे

बादल दौड़ रहे हैं। कभी चाँद निकल आता है कभी सूरज, कभी एक मुस्करा उठता है कभी दूसरा, और कभी दोनों सुनहरे बादलों में छिप जाते हैं और एक सुनहरे ढंग का अंधेरा छा जाता है।

फिर गोविन्द ने देखा पूरन और सोना दोनों चुप होकर न जाने कहाँ छिप गए हैं, परन्तु दूसरे क्षण उसने फिर देखा पूरन, सोना के मुख को अपनी गोद में लेकर भैंस के थन के नीचे खोल दिया है। पूरन तेज़ी से सोना के मुख में दूध गार रहा था।

पूरन मुस्करा रहा था, उसके हाथ काँप रहे थे, सोना चुप थी, उसके बिखरे हुए बाल हवा में उड़ रहे थे। सोना की बकरी, हरी पत्ती चबा रही थी, पूरन की भैंस जुगाली करने लगी थी। गोविन्द के सामने की धरती मुस्करा रही थी। गर्म हवा में तरी आ गई थी, हिलती हुई पत्तियों में कोई गाने लगा था।

गोविन्द, उनसे आँखें बचाकर, दूर हटता हुआ, गाँव की ओर बढ़ने लगा। वह अब भी देख रहा था—नीला आसमान, दौड़ते हुए सुनहरे बादलों के बीच; एक दूसरे के दामन में छिपे हुए सूरज और चाँद, और मुस्कराती हुई धरती, जिस पर चलते हुए गोविन्द को लग रहा था कि वह फूलों की सेज पर चल रहा है और सृष्टि शृंगार करके एक झीने चिलमन से दुनिया को झाँक रही है।

गाँव के बाहर ही एक बुढ़िया ने गोविन्द से पूछा—"बेटा कहाँ जाता है!"

गोविन्द ने रुककर उत्तर दिया—"इसी गाँव में किसी के दरवाज़े पर आज रात काटना चाहता हूँ!"

"यह तुम्हारे हाथों में क्या हो गया है, बेटा?" बुढ़िया ने गोविन्द की ओर बढ़ते हुए पूछा।

"मेरी हथेलियाँ...आग से झुलस गई हैं।" गोविन्द ने कहा।

"ओह!...तुम आज मेरे यहाँ रह सकते हो, बेटा!" बुढ़िया ने कमर सीधी करते हुए कहा, "लेकिन मैं मुसलमान हूँ बेटा!..."

"कोई हर्ज़ नहीं माँ;" गोविन्द ने कहा, "मैं तुम्हारे ही यहाँ रहूँगा।"

बुढ़िया आगे-आगे अपने घर को जा रही थी और पीछे-पीछे गोविन्द चल रहा था। बुढ़िया कह रही थी, "बेटा, मैं तुम्हारे खाने का इन्तज़ाम बगल में गोकुल चौधरी के घर कर दूँगी और आराम से मेरे घर में सोना।"

"नहीं, माँ मुझे बिल्कुल भूख नहीं लगी है, नहीं तो मैं तुम्हारे ही घर खा सकता हूँ।"

"तब तो बड़ी ख़ुशी है बेटा, तुमसे किसी को आज ज़िन्दगी मिल जायगी!"

"क्यों, माँ..क्या बात है?"

बुढ़िया अपने घर के पास पहुँच रही थी और धीरे-धीरे कहती जा रही थी, "बेटा, इस गाँव में सौ घर हिन्दुओं के बीच सिर्फ़ दस घर मुसलमान हैं।

बेटा! मेरी एकलौती लड़की, क़ैसर इन तमाम हिन्दू लड़कियों की सहेली थी। सब लड़कियों के साथ गले मिलकर खाती-पीती खेलती थी। एक दिन मेरी भोली लड़की ने अपने घर हिन्दू सखियों को दावत दी। खाना परोसा गया था, सब लड़कियाँ अपने बनाए हुये खाने को देख रहीं थीं। उसी समय गाँव के चौधरी ने मेरे घर पर धावा किया। सब हिन्दू लड़कियों को भगा दिया और उसने कसकर, मेरी क़ैसर को एक चाँटा मारा और मुझे बुरी तरह से धमकाया। कुछ दिनों तक हिन्दुओं के घर और कुएँ से मेरा आग-पानी बन्द रहा।"

बुढ़िया अपने दरवाज़े पर पहुँच रही थी और अपने भरे हुए गले से कहती जा रही थी, "बेटा!...तबसे मेरी क़ैसर कभी-कभी बहुत रोती है, और बार-बार पूछती है—'अम्मी! क्या मैं नापाक हूँ।'... बेटा, मैं उसे बहुत समझाती हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक हैं, दोनों को एक तरह की भूख होती है, दोनों एक ही तरह मरते हैं। पर

बेटा, मेरी क़ैसर रो-रो के कहती है—नहीं, अम्मी, जिन हिन्दुओं के घर, मैं जन्म से नमक-पानी खाती आ रही हूँ, उन हिन्दुओं ने मुझे नापाक समझकर मेरे दिल पर चाँटा मारा है, हम नापाक हैं..कोई भी हिन्दू हमारे घर खाना नहीं खाता, फिर क्यों हम ऐसे गाँव में जिएँ,..बेटा, बार-बार कहती है कि अम्मी! मुझे कहीं बहुत दूर लेकर चल,..जहाँ एक तरह के इन्सान होते हैं, एक तरह का दिल होता है।"

बुढ़िया अपने दरवाज़े पर खड़ी थी, गोविन्द उसके सामने खड़ा होकर उसकी आँखों में बरसते हुए बेबस आँसुओं को देख रहा था।

बुढ़िया आँसुओं को पोछती हुई, दालान के कोने वाले कमरे को खोल रही थी। क़ैसर दरवाज़े पर छिपकर, दुख और दर्द से खामोश गोविन्द को देख रही थी, उसी समय गोविन्द ने बुढ़िया से कहा, "माँ मेरा नाम गोविन्द है, मुझे भूख लगी है; लेकिन मैं इस गाँव के किसी भी हिन्दू के घर का खाना नहीं खाऊँगा। माँ, मुझे भूख लगी है आज मैं क़ैसर के हाथ से बने हुए खाने को खाऊँगा..अगर उसे इतराज़ न हो तो मैं उसकी थाली में खाऊँगा; उसकी आँखों में आये हुए आँसुओं को पी जाऊँगा।"

गोविन्द कमरे में, पलँग पर लेट गया था क़ैसर दरवाज़े पर किवाड़ से चिपककर मानो सो गई थी, और एक ख़्वाब देखने लगी थी कि—'खूबसूरत आसमान से सितारों की एक झूलती हुई लड़ी ज़मीन पर आ गई है। क़ैसर उस सितारों की लड़ी को अपने दोनों हाथों में कस कर झुलाने लगी है; और आसमान की ओर खिंचती गई है। सहसा आसमान में एक तूफ़ान आता है और सितारों की लड़ी बीच से टूट जाती है। क़ैसर चीखती हुई ज़मीन पर गिरने जा रही है; उसी समय अचानक उसके घर पर आये हुए एक मेहमान ने क़ैसर को अपनी मज़बूत बाँहों में रोक लिया है; और फिर क़ैसर उसकी गोद में छिपकर सो गयी है।'

उसी समय अम्मी ने क़ैसर की पीठ पर हाथ रखकर जगा दिया और उसे घर में ले जाती हुई कहने लगी—"बेटी !...आज तेरे घर पर एक हिन्दू मेहमान आया है और वह तेरे घर के खाने को कौन कहे, तेरी थाली में, तेरे साथ खाना खाने को कह रहा है।"

"सच अम्मी !" क़ैसर ने दौड़कर अम्मी का गला चूम लिया।

"हाँ बेटी !...तू हिन्दुओं की तरह ही पाक है; जन्नत इसी ज़मीन पर है; और इन्सान भी इसी पर है। वह तुझे आज मिल गया। वह ब्राह्मण नहीं है, गोविन्द नहीं है, हिन्दू नहीं है, और सब कुछ भी है; वह तेरे साथ खाना खाएगा...वह तुझे जिलाने आया है।"

"सच, अम्मी !" क़ैसर अम्मी के गले से लिपट गई और नादान बच्चों की तरह पूछने लगी—

उसकी आँखें हमारी ही तरह हैं ? और लोगों की तरह ही वह साँसें लेता है ? वह कैसा है, अम्मी ?...उसकी तो दोनों हथेलियाँ बँधीं हैं ?..वह किसी और तरह होगा, अम्मी !...जिसे मैंने कभी नहीं सुना था...।"

अम्मी, क़ैसर के पीठ पर हाथ फेर रही थी और मुस्कराकर समझा रही थी—"नादान !...वह हमीं लोगों जैसा है,... उसकी हथेलियाँ झुलस गईं हैं...उसे जल्दी खाना खिला, उसे भूख लगी है।"

"अम्मी जिस समय लौटकर गोविन्द के कमरे में गईं, वह पलँग पर लेटा हुआ, सीने पर दोनों हाथ रखकर, आखें मूँद चुका था। अम्मी पास बैठकर—गोविन्द को धीरे-धीरे पंखा झलने लगीं और वह अपनी नींद में बेहोश हो गया।

रात को चाँद निकला और सितारे शरमा गए। आसमान पर चाँद मुस्कराया और क़ैसर गुनगुना उठी। रात को चाँद चमका और क़ैसर ने एक बड़ी थाली में एक पाव मलाई की लस्सी का गिलास रक्खा, बड़े से कटोरे में छोटे छोटे नमकीन और पराठे रक्खे, एक रसदार सब्ज़ी

के कटोरे के साथ एक सूखी तरकारी का छोटा-सा प्लेट रक्खा, छोटी-छोटी कटोरियों में आम, अम्ला के मुरब्बे रक्खे, और एक कटोरी में थोड़ा सा सिरका रक्खा, कच्चे आम की पीली चटनी के साथ बग़ल में थोड़े प्याज़ के क़तरे रक्खे।

फिर क़ैसर ने आसमान की ओर देखा, चाँद बच्चों की तरह इशारा कर रहा था। फिर क़ैसर ने अपनी मुग़ली शिलवार को देखा, अपनी लम्बी कमीज़ को देखा, सर पर ओढ़नी ठीक कर, क़ैसर ने फिर आसमान की ओर देखा; सितारों से भरे हुए आसमान में कितने छोटे-छोटे सूराख़ हो गए थे और उनमें से अमृत की नन्हीं नन्हीं बूँदें, क़ैसर की सजी हुई थाली पर पड़ रहीं थीं। क़ैसर मुस्कराई, और दोनों हाथों से थाली को उठाकर बाहर कमरे की ओर बढ़ने लगी। कमरे के बाहर, क़ैसर ने, अपने काँपते हुए हाथों से थाली को ज़मीन पर रख दिया और वह पसीने से तर हो गयी। लज्जा से सिमट कर सुर्ख़ हो गयी। क़ैसर ने बाहर देखा चाँदनी जवान थी। क़ैसर ने कमरे में गोविन्द को देखा वह नींद की बेहोशी में था। क़ैसर ने फिर मुस्कराकर अपनी ओढ़नी सँभाली और कमरे में घुस गई। चिराग़ जल रहा था और रोशनी भी जवान थी। क़ैसर ने गोविन्द को पाँव से सर तक देखा, उसे एक गुलाबी सिहरन आ गई। क़ैसर ने गोविन्द की दोनों पट्टी बँधी हुई हथेलियों को देखा और वह दर्द से पिघल गई।

क़ैसर ने खाने को ज़मीन पर रक्खा, और उसे पानी लाना याद आया। वह थाली को किस चीज़ से ढके, वह बेक़रार होकर इधर-उधर देख रही थी, गोविन्द सो रहा था। क़ैसर ने अपनी ओढ़नी उतार कर थाली को ढँक दिया और तेज़ी से घर में पानी लेने चली गई और वह जैसे ही तेज़ी से कमरे में घुसने लगी उसका बायाँ हाथ ढकी हुई एक किवाड़ में टकरा गया, गोविन्द जग गया। क़ैसर के हाथ से पानी का बर्तन ज़मीन पर गिर गया और उसने चीख़कर अपनी ओढ़नी को, सीने में

चिपका लिया। क़ैसर लाज से गड़ गई और अपने क़दमों को पीछे हटाती हुई कमरे के बाहर चली आई। उसे अपने पर इतना ग़ुस्सा आया कि वह अपने को जी भर पीटे।

गोविन्द उठकर कमरे के बाहर देख रहा था और बार-बार मुस्कराता हुआ सजी हुई थाली को देख रहा था। क़ैसर को बाहर अपने बाएँ हाथ पर ग़ुस्सा आ रहा था, किवाड़ पर ग़ुस्सा आ रहा था, अपनी ओढ़नी पर खीझ रही थी; अपने पर झुँझला रही थी।

क़ैसर अपनी ओढ़नी में सिमटकर नीचे देखती हुई फिर कमरे में घुसी। वह नीचे देखती हुई खड़ी थी। गोविन्द चुपचाप क़ैसर को देख रहा था और ख़ामोशी का पहर धीरे-धीरे लम्बा हो गया।

"क़ैसर !" गोविन्द ने धीरे से कहा।

"क़ैसर आलम !!" गोविन्द ने फिर आवाज़ दी।

"क़ैसर, मुझे भूख लगी है !" गोविन्द ने बच्चों की तरह कहा, क़ैसर ने अपनी ओढ़नी की आड़ से, गोविन्द को तिरछी आँखों से देख फिर निगाह नीची करके, थाली को देखकर मुस्करा उठी।

"तुम्हारे हाथों से पानी नीचे गिर गया, अच्छा ही हुआ," गोविन्द ने कहा, "जहाँ खाना खाया जाता है वहाँ पानी से चौका दे लिया जाता है।"

क़ैसर आँखों में मुस्कराई और ओंठों पर शरमा गई। और वह दौड़कर पानी ले आई। और खड़ी हो गई।

"क़ैसर, मुझे बहुत भूख लगी है !" गोविन्द ने कहा।

"यह पानी और खाना हाज़िर है !" क़ैसर ने गोविन्द को भरपूर आँखों से देखा। और उसकी आँखें गोविन्द पर टिक गईं।

"क़ैसर मुझे भूख लगी है!" गोविन्द ने फिर मचल कर कहा और इस बार क़ैसर गोविन्द की बँधी हुई हथेलियों को देख कर दर्द से भर गई। उसने गिलास को गोविन्द के ओंठों पर लगा दिया, गोविन्द ने

अपना मुँह साफ़ किया और पानी का एक घूँट पीकर फिर कहा, "मुझे भूख लगी है, क़ैसर!"

क़ैसर ने थाली को उठाकर पलँग पर रख दिया और झुककर पराठे के एक छोटे से टुकड़े में रसदार सब्ज़ी लपेट कर, हाथ को गोविन्द की ओर बढ़ा दिया। क़ैसर का उठा हुआ हाथ गोविन्द के मुख से इतनी दूरी पर था, जितनी दूरी पर मुस्कराहट और हँसी रहती है। क़ैसर का हाथ उठा था, उसकी आँखें नीचे देख रहीं थीं। गोविन्द का मुख खुला था उसकी आँखें काले बादलों को देख रहीं थीं जिनमें स्वाती नक्षत्र की बूँदे भरी रहतीं हैं, जो धरती पर गिरकर कहीं मोती बन जातीं हैं, कहीं मणि बन जातीं है और कहीं ज़िन्दगी बन जातीं हैं।

क़ैसर का हाथ उठा था, गोविन्द का मुख पास ही खुला था। क़ैसर ने मुस्कराकर गोविन्द की ओर देखा गोविन्द ने बढ़ कर क़ैसर की अँगुलियों में दबे हुए अमृत को, अपने खुले हुए मुख में भर लिया। क़ैसर खिलाती गई। गोविन्द खाता गया। क़ैसर के हाथ तेज़ी से उठते गए, गोविन्द का मुख बार-बार खुलता गया। क़ैसर मुस्कराती गई, गोविन्द उसे देखता गया। क़ैसर तिरछी निगाहों से कुछ पिलाती गई, गोविन्द ख़ामोश होकर कुछ पीता गया! उसी समय क़ैसर का भारी हाथ उठा। गोविन्द का मुख भारी होकर, बंद हो गया क़ैसर ने भरी हुई आँखों से देखा।

"मुझे प्यास लगी है, क़ैसर!" गोविन्द ने कहा।

लस्सी भरे गिलास के साथ, क़ैसर का हाथ उठा और साथ ही साथ, गोविन्द पर उसकी निगाहें उठीं। गोविन्द का मुख बंद था और आँखें कुछ कह रहीं थीं।

"इसे पीजिए!" क़ैसर ने कहा।

"तुम पियो, क़ैसर! मैं तुम्हारा जूठ पीऊँगा।"

"नहीं आप पीजिये!..."

"नहीं क़ैसर तब मुझे प्यास नहीं लगी है।"

"अच्छा, पहले आप पी लीजिए !... फिर मैं.. ।" क़ैसर शरमा गई ।

"नहीं, पहले तुम पियो, फिर मैं पीऊँ, नहीं तो मुझे प्यास नहीं !"

क़ैसर का हाथ उठा था, उसकी आँखें नीची होकर शरमा रहीं थीं ।—क़ैसर का हाथ उठा था और वह सोच रही थी । क़ैसर का हाथ उठा था और वह पसीने से तर हो रही थी । क़ैसर का हाथ उठा था और ज़न्नत के दरवाज़े पर, खड़ी थी । उसी समय गोविन्द ने कहा

"क़ैसर ! मुझे प्यास नहीं लगी है!"

क़ैसर नीचे बैठ गई और उसका हाथ उसकी ओढ़नी में छिप गया । वह गिलास को अपने ओंठों पर ले जाकर; ओढ़नी में इस तरह सिमट गई जैसे आसमान से गिरती हुई स्वाती की नन्ही बूँद ।

क़ैसर झुकी थी, और उसका बढ़ा हुआ गिलास गोविन्द के ओंठों पर, तिरछा तना हुआ था । गोविन्द क़ैसर के जूठ को पी रहा था और क़ैसर उसे पिला रही थी, गोविन्द पीता जा रहा था और बंद आँखों से देखता जा रहा था—एक रेगिस्तान था, जिसके बीचो-बीच एक नदी दौड़ गई उससे नहरें फूटीं । रेगिस्तान हरा-भरा हो गया । बड़ी-बड़ी गेहूँ की बालियों वाली हरी खेती मुस्करा रही थी । फल और फूल के बगीचे झूम उठे । बहार ने अँगड़ाई ली । क़ैसर अपने खेतों के ऊँचे मचान पर बैठी है, गोविन्द पहरा देता हुआ ऊँचे स्वर से बाँसुरी बजा रहा है ।

गिलास ओंठों से हट गया और गोविन्द, क़ैसर को देखने लगा ।

"आप के इन हाथों में क्या हो गया था ?" क़ैसर ने धीमी आवाज़ से पूछा ।

"इन हथेलियों में थोड़ी सी आग की लपट लग गई है ।"

"जल गईं हैं !" क़ैसर ने दर्द से कहा ।

और वह जल्दी से कमरे के बाहर हो गई । गोविन्द बहुत धीरे-धीरे क़ैसर को पुकार रहा था । क़ैसर थोड़ी देर बाद लौटी, गोविन्द

पलँग पर लेट गया था। क़ैसर झुककर गोविन्द की बँधी हुई हथेलियों को खोलने लगी। गोविन्द ने परेशान होकर कहा—"क़ैसर तुम पलँग पर बैठ जाओ; मेरी हथेलियों में दर्द हो रहा है।"

क़ैसर थोड़ी देर के लिए खामोश हो गई, वह अब भी झुकी थी। गोविन्द ने फिर कहा—"क़ैसर! बैठ जाओ, मेरी कमर में दर्द हो रहा है!"

क़ैसर शरमाकर पलँग पर बैठ हुई और धीरे-धीरे हथेलियों को खोलने लगी। हथेलियाँ झुलसकर काली पड़ गईं थीं; लेकिन खुदा का शुक्र था कि फफोले नहीं पड़े थे, कहीं घाव नहीं हुआ था। गोविन्द क़ैसर को देख रहा था, क़ैसर उसकी झुलसी हुई हथेलियों पर एक मरहम लगा रही थी। गोविन्द की नाक में भीनी-भीनी बेनाम··· जैसे एक कस्तूरी की खुशबू आ रही थी। क़ैसर जैसे-जैसे उसकी जलती हुई हथेलियों पर अपनी ठण्डी, सेमर की रूई की तरह मुलायम उँगली फेर रही थी; वैसे-वैसे गोविन्द को यूँ लग रहा था कि मानो ठंढी चाँदनी अपनी किरनों के हाथ से, आसमान की सतह पर लिख रही है—'मुहब्बत' जिसमें से इतनी खुशबू निकल रही है कि संसार बेसुध हो रहा है।

क़ैसर धीरे धीरे, झुलसी हुई हथेलियों पर, मानो बर्फ़ की पट्टी की तरह मरहम लगा रही थी और गोविन्द की आँखें क़ैसर को देखती-देखती ढँप गईं। क़ैसर नर्म पट्टी बाँध रही थी और गोविन्द बेखबर सो रहा था।

चिराग़ धीरे-धीरे जल रहा था। गोविन्द अपने ओंठों के मिलन विन्दु पर मुस्कान छिपाए, आँखों में परेशानी लिये सो रहा था। क़ैसर उसके सरहाने, उसके मुख पर झुकी हुई, गोविन्द के पतले ओंठों को देख रही थी। क़ैसर के ओंठ गोविन्द के ओंठों से पहले इतनी दूरी पर थे जितनी दूरी पर हमारी आँख और कान है; पर अब धीरे-धीरे

वह दूरी इतनी हो गई है कि जितना मुख खोलकर हँसते समय दोनों ओंठों की दूरी होती है।

क़ैसर चाहती थी कि अब वह गोविन्द के जूठ को खाए· ·उसके पतले ओंठों को चूमकर, ज़बान सख्त करके उसके मुख में ले जाकर... उसकी ज़बान चूम ले। वह बार-बार अपने मुख को गोविन्द के मुख के पास ले जाती पर सिहरकर ऊपर खींच लेती।

एक बार क़ैसर ने अपना मुख गोविन्द के ओंठों पर झुकाना शुरू किया, और सोचने लगी अभी सुबह हो जायगी...गोविन्द उठ जायगा ...और फिर...यह राही..और फिर यह मुसाफिर..कहीं दूर ..।

उसी समय क़ैसर के ओंठ, अचानक गोविन्द के ओंठों पर छू गये। क़ैसर का मुख मानो बरबस उसके शरीर से कटकर गोविन्द के मुख पर आ गिरा।

गोविन्द चुप था; उसकी साँसें तेज़ हो आईं थीं। क़ैसर गोविन्द का जूठ खा रही थी और गोविन्द क़ैसर के।

क़ैसर के उभरे हुए सीने में जो कड़वी, दम घुटाने वाली तनाव पैदा हो रही थी, गोविन्द को लग रहा था जैसे वह उसके सीने की तनाव थी, उसकी साँसों की घुटन थी।

गोविन्द को लग रहा था, मानो धरती सफेद दूध की गाज की तरह हो गई है और वह क़ैसर को अपने दामन में लिये हुए धरती को चीरता हुआ उसे एक ऐसी दुनियाँ में ले जा रहा है जहाँ क़ैसर अपनी अम्मी से जाने के लिये कह रही थी।

* * *

उस रात को क़ैसर जी गई थी और गोविन्द उसे छोड़, जगतपुर की ओर बढ़ रहा था। उसकी हथेलियों से दर्द और जलन जाती रही, और वह अपने दोनों हाथों को झुलाता हुआ, जगतपुर के समीप पहुँच रहा था।

रोनी थोड़ी दूर पर बह रही थी और गोविन्द सोच रहा था कि वह जल्दी के नाते, रोनी के नाव-वाले घाट से न जाकर, राजघाट के समीप से, रोनी को तैर कर जगतपुर बहुत जल्दी पहुँच जाय।

गोविन्द रोनी के तट वाले जामुन के जंगल में पहुँच गया और उसने दूर से देखा, रोनी के उस पार, ऊँचे कगार पर कोई लड़की खड़ी है, और अजीब बेक़रारी में, इधर-उधर देखती हुई न जाने क्या करने के लिये सोच रही है। गोविन्द ने झाड़ियों से और कुछ आगे बढ़कर, साफ़ नज़रों से देखा, वह ज़ैनब थी, जो अपनी शिलवार को घुटनों तक खींच थी और अपनी ओढ़नी के एक सिरे से अपने सीने को ढक दूसरे सिरे से अपनी कमर को सम्हाले थी। उसका सर खुला था और उसके सर के लम्बे-लम्बे स्याह गेसू हवा में लहरा रहे थे।

वह पागलों की तरह रोनी में, उत्तर की ओर देख रही थी और बार-बार अपना हाथ उठाकर न जाने किससे कह रही थी—"मैं उस पार जाना चाहती हूँ ओ, नाव वाले !...मुझे उस पार कर दो।"

गोविन्द ने आगे बढ़कर, एक मोटे साखू के पेड़ को पकड़कर रोनी में उत्तर की ओर देखा—एक लड़की, एक खूबसूरत कश्ती को लिए हुए, उत्तर की ओर से इधर ही आ रही थी। गोविन्द उसे आँख मींच मींचकर पहचान रहा था, और कश्ती नखरे से इधर बहुत धीरे-धीरे बढ़ रही थी। ज़ैनब, बेक़रार हो बार-बार हाथ उठाकर पुकारती—"मुझे उस पार कर दो।"

गोविन्द साखू के पेड़ से सटकर खड़ा था। कश्ती समीप आगई और गोविन्द ने पहचाना..तारामती, अकेली नौका लिए आ रही है और उनकी नन्हीं-सी, परी की शक्ल वाली कश्ती ज़ैनब के सामने रुकी हुई है।

ज़ैनब ने परेशान होकर कहा—"बहन मुझे उस पार जाना है।"

"बत्तमीज़ कहीं की !..मैं तुम्हारी नौकरानी नहीं...जो तुझे उस पार ले जाऊँ !"

तारामती ने यह कहकर, अपने डाँड़ को ज़ोर से पानी पर पटक दिया।

"लेकिन, बहन मैं उस पार जाना चाहती हूँ।"

"तेरा नाम क्या है, बड़ी वाहियात लगती है तू!"

"मेरा नाम कुछ नहीं है!" ज़ैनब ने झुम्फलाते हुए कहा और, अपने शिलवार को और ऊपर चढ़ाकर, रोनी के कगार से, नीचे उतरने लगी। उसके पैरों में तेज़ी थी, आँखों में परेशानी थी। वह जल्दी से रोनी में कूदकर, तैरती हुई उस पार पहुँचना चाहती थी। उसी समय तारामती ने, ज़ैनब को रोकते हुए कहा—"मुझे बता, तेरा नाम क्या है? तब मैं तुझे उस पार कर दूँगी।"

"मेरा नाम कुछ नहीं है; मैं तैरकर उस पार जा रही हूँ।" ज़ैनब के पैर पानी में थे और वह रोनी की तेज़ धारा को देख रही थी।

"अपना नाम बता!" तारामती ने कश्ती को ज़ैनब की ओर बढ़ाते हुए कहा।

"मैं आपकी नौकरानी नहीं।" ज़ैनब तिलमिला रही थी। और वह अपनी ओढ़नी को, पूरी की पूरी कमर में कसकर बाँध रही थी।

"लेकिन, रोनी यहाँ बहुत गहरी है, तू उसमें डूब जायगी—उस पार नहीं पहुँच सकेगी।"

"आपसे मतलब!"

ज़ैनब ने तेज़ी से यह कहकर, अपने पैरों को आगे बढ़ाना चाहा, उसी समय पार से एक गूँजती हुई आवाज़ आई—"ज़ैनब!"

ज़ैनब वहीं रुक गई। और बहुत घबरा गई। तारामती बार-बार उस पार देखने लगी और आश्चर्य से पूछने लगी—"तुम्हारा ही नाम ज़ैनब है?"

ज़ैनब चुप थी और तारामती अपनी कश्ती पर, ज़ैनब के समीप आ गई थी।

"ज़ैनब तुम्हीं हो!" तारामती ने पूछा।

"हूँ..तो! लेकिन उस पार से यह आवाज़ कहाँ से आई!"

"आवो, मैं तुझे उस पार कर दूँगी! और तुम ख़ुद ही देख लेना! होगा कोई!"

"नहीं, मैं उस पार नहीं जाऊँगी, मैं इसी रोनी के किनारे खड़ी रहूँगी।"

"क्यों, बात क्या है?"

"लगता है, उस पार राजकुमार विजय छिपा है।"

"न। तो, मैं गंगा को क़सम खाकर कह रहा हूँ वह तो राजमहल में बीमार है!"

"बहुत अच्छा, काफ़ी बीमार है?" ज़ैनब ने जल्दी से पूछा।

"नहीं, थोड़ा ज़ुकाम हो गया है!"

ज़ैनब तारामती की कश्ती पर बैठ कर, उस पार जा रही थी। ज़ैनब उस पार देख रही थी और तारामती ज़ैनब को देख रही थी।

तारामती ने पूछा—"उस पार कहाँ जा रही हो, ज़ैनब?"

"ऊख देखने जा रही हूँ," ज़ैनब ने गंभीरता से कहा, "सुबह के वक्त उसमें नील गायें घुस जाती हैं।"

तारामती ने गंभीरता से कहा—"देखो, ज़ैनब!..इस समय तुम मेरी कश्ती में बैठी हो..तुम झूठ नहीं बोल सकती!..तुम गोविन्द को देखने नहीं जा रही हो?..बोलो..!"

"नहीं..तो...मुझे..नहीं तो!" ज़ैनब ने घबड़ाकर कहा।"मैं अपनी ऊख देखने जा रही हूँ।"

"अच्छा, ख़ैर! हटाओ इन बातों को!" तारामती ने पूछा,

"ज़ैनब!..तुम्हें गोविन्द से प्रेम है! बोलो...!"

"मैं कुछ नहीं जानती!"

ज़ैनब का मुँह लाल होगया। वह बहुत कमज़ोर लगने लगी थी और घबड़ा कर उस पार देखने लगी।

उसी समय तारामती ने कश्ती को रोक कर पूछा—"बोलो, तुम्हें गोविन्द से मुहब्बत है न !"

"मैं कुछ नहीं जानती, थोड़ा फ़ासला और है, मुझे उस पार कर दो !" ज़ैनब ने तड़प कर कहा।

"नहीं, मैं जवाब चाहती हूँ··तुम गोविन्द से प्रेम करती हो न ! तुम उसे...उस पार उसके रास्ते को देखने जा रही हो, न !..वह जल गया है···तुम उसे लेने जा रही हो न !"

तारामती कुछ सख्ती से पूछती जा रही थी। उसी समय ज़ैनब झटके से खड़ी हो गई और रोनी में पागलों की तरह कूद पड़ी।

गोविन्द बेतहाशा, चिल्लाता हुआ रोनी में कूद पड़ा, और बच्चों की तरह हाथ-पाँव पटकती हुई ज़ैनब को सहारा देने लगा और धरती पर उसके पैर टिकते ही, गोविन्द ने ज़ैनब को अपनी गोद में भर लिया और पार लाकर, रोनी की कगार से ऊपर बिठा दिया।

ज़ैनब की साँसें तेज चल रहीं थीं, फिर भी उसने गोविन्द से धीरे से कहा—"देखो, तारामती हम लोगों के पास आ रही है, हम लोग कहीं और चले चलें।"

"ज़ैनब, वह हम लोगों का कुछ नहीं कर सकती !··तुम आराम से हो न ?" गोविन्द ने धीरे से कहा और उसकी भींगी हुई ओढ़नी के एक लटकते हुए सिरे को निचोड़ने लगा।

तारामती एक अजीब विश्वास से गोविन्द और ज़ैनब के पास आकर खड़ी हो गई। गोविन्द ने उठकर अभिवादन किया और ज़ैनब से कहा, "चलो; गाँव चलें !"

ज़ैनब उसी क्षण गोविन्द के साथ उठकर; रोनी के ऊँचे कगार के पीछे-पीछे चलने लगी।

तारामती ने कडे शब्दों में कहा—"गोविन्द ! मैं तुमसे नाराज़ हूँ।"

गोविन्द खड़ा हो गया, और मुड़ कर, तारामती की ओर देखने लगा। ज़ैनब अपने सामने देख रही थी और धीरे से गोविन्द को समझा रही थी, "कुछ बोलना नहीं, चलो, अपने रास्ते चलें, बड़ी नागिन है यह!"

"तुम्हें !··माफी माँगनी होगी गोविन्द !" तारामती ने फिर कहा।

"मैं आपसे माफी मागती हूँ !" ज़ैनब ने नाव से अपने दोनों हाथों को जोड़ते हुए कहा, और फिर मुड़ गई।

"गोविन्द ! तुमसे मुझे एक बात कहनी है !" तारामती ने कहा।

"कहिए··।"

"नज़दीक से कहने की बात है ! "

गोविन्द तारामती के पास आने लगा और ज़ैनब अपनी जलती हुई तिरछी आँखों से तारामती को देखने लगी।

"मैं तुमसे नाराज़ नहीं हूँ, गोविन्द !" तारामती ने धीरे से कहा, "क्या तुम मुझसे नाराज़ हो !··मुझे तुम पर बहुत दया आती है !"

गोविन्द ने उत्तर दिया—"मैं आपसे क्यों नाराज़ होऊँ, आप राजकुमारी, मैं एक रियाया··नाराज होने का प्रश्न ही कहाँ !"

"तब", तारामती ने जिज्ञासा से कहा—

"तब क्या, राजकुमारी !...फिर तो अगर एक रियाया नाराज़ क्या, कुछ कड़ा शब्द भी बोल दे तो··राज्य उसे गोली मार देगा और किसी को पता भी न चलेगा !"

"तो..तुम मुझसे .नाराज़ नहीं हो ?"

"नाराज़ क्यों ? मुझे आपसे डर लगता है !"

"मैं विजय की बहन हूँ , इस वजह से ?"

उसी समय, ज़ैनब ने चिढ़कर, गोविन्द को पुकारा—"मैं इस तरह से; यहाँ नहीं खड़ी रह सकती, गोविन्द !" गोविन्द एकाएक ज़ैनब की ओर मुड़ गया। और ज़ैनब के साथ चलते हुए कह पड़ा—"माफ़ करना ज़ैनब !"

"जाओ, मैं तुम्हें माफ़ करती हूँ, फिर ऐसा कभी न करना !"

ज़ैनब ने प्यार भरे लहज़े में कहा; और मुड़कर पीछे देखा—तारामती तेज़ी से रोनी के कगार से नीचे अपनी नाव पर जा रही थी। ज़ैनब क्षण भर के लिए रुक गई और नीचे रोनी में देखने लगी—तारामती तेजी से अपनी नाव को इधर ही बढ़ाती चलने लगी।

ज़ैनब तेज़ी से चल रही थी और उसने एकाएक गोविन्द के दोनों हाथों को अपनी हथेलियों में पकड़ कर कहा—"ओह !..यही तुम्हारी झुलसी हुई हथेलियाँ हैं !"

"हाँ, इनमें आग की लपट लग गई थी !"

"अब कैसे हैं ?··क्या इनमें अब भी दर्द है ?" ज़ैनब ने दर्द से कहा।

"अब तो दर्द नहीं है, सिर्फ थोड़ी सी जलन है !"

"जलन है !" ज़ैनब ने धीरे से कहा और गोविन्द की दोनों हथेलियों को फैलाकर प्यार से चूम लिया।

"अब इनमें जलन भी नहीं है !"

गोविन्द ने मुस्करा कर कहा और आगे बढ़ने लगा। ज़ैनब के कपड़े भींगे थे, वह तेज़ नहीं चल पा रही थी। उसी समय रोनी से तारामती ने पुकार कर कहा—"गोविन्द ! आओ··मेरी नाव पर··मैं तुम लोगों को उस पार कर दूँ।"

गोविन्द रुक गया, पर ज़ैनब नहीं रुकना चाहती थी। तारामती की बार-बार पुकार आ रही थी, और उनकी कश्ती भी रोनी में साथ-ही साथ इधर बढ़ रही थी।

"ज़ैनब !··तुम भींग भी गई हो ! आओ तारामती की कश्ती से ही हम लोग, जल्द उस पार चले चलें।" गोविन्द ने कहा।

"लेकिन, कश्ती तुम्हीं खेना गोविन्द !" ज़ैनब ने बच्चों की तरह कहा, "और मैं तुम्हारे पास बैठूँगी।"

"हाँ हाँ, इसमें क्या बात है ?" गोविन्द ने कहा। और दोनों मुड़कर रोनी के कगार से नीचे की ओर जाने लगे।

"तारामती तुम से क्या कह रही थी, गोविन्द ? यह तो पूछना ही मैं भूल गई।"

"वह कह रही थी कि मैं तुमसे नाख़ुश नहीं हूँ।"

"तब तुमने क्या कहा ?"

"मैंने कहा कि फिर भी मुझे आप से डर लगता है !"

"ख़ूब जवाब दिया।"

ज़ैनब यह कह कर मुस्करा उठी, और वह गोविन्द के साथ रोनी के तट पर पहुँच गई।

गोविन्द नाव बढ़ा रहा था, ज़ैनब उसके समीप बैठी थी और तारामती अपनी 'बैना क्युलर' से राजघाट की तरफ़ नीले जंगल की ओर देख रही थी। ज़ैनब ने उसी समय एकाएक चौंक कर गोविन्द से कहा—"अरे !... तुम्हारे हाथों में तकलीफ़ होती होगी !"

यह कहकर, ज़ैनब ने जल्दी से गोविन्द के हाथों से डाँड़ छीन लिया और स्वयं कश्ती को उस पार ले जाने लगी।

"हाँ, तुम्हारी हथेलियाँ जल गईं थीं, गोविन्द !" तारामती ने पूछा।

"जी हाँ, लेकिन अब तो अच्छी हो गई हैं !"

"गोविन्द सुनो !" ज़ैनब ने बात छीनते हुए कहा, "सब ग़ल्ला बहुत क़ायदे से गाँव में पहुँच गया है और लोगों में बाँट दिया गया है।"

"और, सब लोग आनन्द से हैं ?" गोविन्द ने पूछा।

"हाँ, हैं ही !"

ज़ैनब ने धीरे से कहा और व्यंग्य भरी दृष्टि से तारामती को देखा।

कश्ती उस पार पहुँच गई। गोविन्द, ज़ैनब के साथ तेज़ी से कगार पर चढ़ गया और जगतपुर की धरती पर बढ़ने लगा।

तारामती भी पीछे कगार पर चढ़ रही थी और कगार पर खड़ी होकर गोविन्द और ज़ैनब को साथ-साथ बढ़ते हुए देखने लगी। तारामती को लग रहा था कि किसी ने उसके मुँह पर ठोकर मार दी है, किसी ने उसके आत्म-सम्मान को तोड़ने का प्रयत्न किया है, फिर भी तारामती अब ऊँचे कगार से देख रही थी—गोविन्द और ज़ैनब अब अलग-अलग दो रास्तों से एक दूसरे को देखते-देखते चले जा रहे थे। तारामती को लग रहा था कि ये दो आसमान के सितारे हैं जो एक दूसरे के आकर्षण से कहीं बहुत ऊँचाई पर रुके हुए हैं।

लेकिन फिर भी तारामती को झुँझलाहट हुई और उसने सामने एक मिट्टी के ढेर को अपने पैरों से ठुकरा दिया और लम्बी साँस लेकर आगे बढ़ गई।

* * *

जगतपुर गोविन्द के मँगाए हुए ग़ल्ले से जी रहा था, गाँव में फिर से ज़िन्दगी आगई थी; लेकिन उसे अब भी भूख की चिन्ता बराबर बनी रहती थी। जगतपुर बार-बार घुटने पर सर रखकर सोच रहा था, पर उसे नई फ़सल बोने का उत्साह था। जगतपुर अपने क्रोधित देवता, अपनी धार्मिक दुर्बलता और शापित धरती से रह-रह के डर से काँप रहा था, पर उसे नए बीज के साथ, नई खेती की सुन्दर आशा थी।

जगतपुर चुप था क्योंकि राजा उसका दुश्मन था। वह बार-बार राजा की ताक़त, क्षणभर में तिलकपुर के लालसाहब के बखार में आग लगवा देने की बात को सोच-सोच कर सिहर उठता था लेकिन उसकी सहमी हुई आँखों के सामने बरबस गोविन्द और इन्द्रा, लाल साहब की आत्मा भी नाच उठती थी, और वह आखें बन्द करके कभी सन्तोष की साँस ले उठता था।

जगतपुर कभी-कभी सोचते-सोचते थक जाता था, लेकिन उसे किसी अज्ञात् शक्ति से प्रेरणा भी मिलती थी। वह बार-बार यह सोचकर जी उठता था कि ज़मीन्दारी टूट जायगी और धरती धरतीवालों की

हो जायगी।

लेकिन फिर भी, अबतक जगतपुर की सोचने वाली शक्तियाँ तीन रेखाओं में बँटीं थीं। सम्भवतः जगतपुर की आत्माएँ ही तीन भागों में बँटीं थीं।

नीची पट्टी की आत्मा बदबूदार हो गई थी। उसकी आत्मा में किसी अज्ञात् बिमारी के सूराख बन गए थे और जिसमें से दुश्मनी, वैर, घृणा, प्रतिहिंसा, जलन आदि का खून टपका करता था। राजकुमार तो क्रोध और जलन से दुबला हो गया था और बार-बार उसके सर में चक्कर आने लगा था।

शेष जगतपुर की आत्माएँ दो भागों में बँटीं थीं। लड़कियाँ और नवजवान लड़के गोविन्द की ओर से झुककर एक खूब फूलों से लदकर झुकी हुई कोमल डाली की तरह हो गए थे, जो मामूली हवा के झोंके से धरती पर फूल और सुगन्धि बरस पड़ते थे। इनकी आत्माओं में उमड़ते हुए काले बादलों के बीच की तरह मधुर-मधुर गर्जन के साथ धीमा-धीमा संगीत था और कौंधती हुई बिजली की तरह, इनमें तड़पन के साथ बलखाती हुई ज़िन्दगी थी।

दूसरी आत्माएँ, बूढे, पुराने ख्याल वाले, पचपन-पचास वर्ष वालों की थी; जो पुरानी हो गई थी, फिर भी जिनमें अपने पुरातन के प्रति ममता थी, जो अपने जवानी के दिनों को ले-लेकर दिल भर-भर के स्वयं सराहना किया करते थे और अपनी नयी पीढ़ियों को दिल खोल-खोल कर बुरी-भली बातें और फटकार सुनाया करते थे और इनके प्रति एक अजीब तरह की निराशा लिए हुए घुल रहे थे। इनमें वर्तमान के प्रति विद्रोह था और अपनी पिछली—बदबूदार और सड़ी-गली व्यवस्था के प्रति असीम श्रद्धा थी। धर्मान्ध होकर एक पिटी हुई लक़ीर पर चलते हुए, अपने देवी-देवताओं में थोथे विश्वास पर अडिग थे। राज्याश्रय के पक्के समर्थक और अपनी परम्परा, के पक्के पुजारी थे।

ऐसी ही आत्माएँ, गोविन्द से असंतुष्ट थीं—ऐसी आत्मा वाले पुरुष गोविन्द के चाल-चलन पर शंका प्रकट करके, उससे जी भर जलते थे और उनके दिल में अब भी, उनके देवता के प्रति—गोविन्द द्वारा किया गया पाप, शोले की तरह दहक रहा था। ऐसी आत्मा वाली औरतें, झुंड की झुंड किसी बरामदे में बैठ कर, मुँह पर हाथ रखे—कनफुस्कियों से गोविन्द, ज़ैनब, इन्द्रा किशन, सब्बो, सूरा, पारो आदि के नाम ले-लेकर अजीब तरह मुँह बिचका-बिचका कर बातें किया करती थीं।

यद्यपि ये आत्माएँ पुरानी थीं, पर अभी थकी नहीं थीं। एक तरह से इन्हीं के हाथ में, गाँव की सामाजिक, धार्मिक मान्यताएँ स्थिर थीं। दूसरी अत्माओं पर इन्हीं का आतंक था, जिन्हें वे अपना शासन कहा करते थे।

* * *

मुखिया बद्री पाँडे के दरवाज़े का अहाता मशहूर था। सोलह खम्भियों वाले बरामदे में पाँडे जी अपने पलँग पर कछुओं की तरह औंधे लेटे पड़े थे और उनकी दूसरी दूल्हन—अहिल्या, मुँह पर कुछ शरमाया हुआ घूंघट डालकर, मुखिया जी की मोटी कमर में तेल-मालिश कर रहीं थीं। उनकी ढीली धोती कमर से बहुत नीचे खिसक आई थी, लेकिन वे दाँत निकाले हुए—लम्बी-लम्बी भरते हुए बहुत खुश थे।

बरामदे के दोनों ओर खपरैल की लम्बी-लम्बी घारियाँ बनी हुई थीं। एक घारी में सामने से भैंस और भीतर से गाएँ सानी खातीं थीं और भीतर बाँध दी जातीं थीं। दूसरी घारी में बाहर बैलों की पक्की चरनी थी और भीतर उनके रहने का प्रबंध था।

भैंस वाली घारी पर दोनों ओर से लौकी और तरोई की हरी बेलें ऊपर चढ़ीं थीं और बैल वाली पर कोंहड़े की मोटी बेल पनप कर ऊपर उठ रही थी।

बरामदे के ठीक सामने, पाँडे जी का पक्का कुआँ था, जिसपर पट्टी की तमाम औरतें घड़े से पानी भरने आतीं थीं और पाँड़े जी के अश्लील मज़ाकों से शरमा कर सिकुड़ जाया करतीं थीं—लगता था कि गाँव में ठीक दरवाज़े के सामने कुआँ खोदने का कुछ ऐसा ही साध्य होता था।

सुबह का समय था। लाल साहब का दिया हुआ सौ मन बीज और पारो भाभी के नैहर से आए हुए बीजो से भरी हुई दो गाड़ियाँ इसी अहाते में गिरीं थीं, और जमीन पर बीज का ढेर लगा था। सारे गाँव के मुख्य मुख्य लोग, अपनी आवश्यकतानुसार बीज ले रहे थे।

गोविन्द चारपाई पर बैठा था और किशन पसीने से भींगा हुआ तेज़ी से बीज तौल रहा था।

उसी समय मुखिया बद्री पाँडे जी ने अपनी चारपाई से कमर सीधी की और धोती को कमर में सम्हालते हुए बरामदे से अहाते में आने लगे। उनकी धोती का पिछौंटा अब भी ज़मीन पर खिंचता चला आ रहा था। गोविन्द ने तुरन्त दौड़कर, पाँडे जी के खिचते हुए पिंछोटे को उनके हाथ में पकड़ा दिया, और इसो तरह उनकी धोती सम्हल गई। और वे गाँव वालों के बीच में आकर, गोविन्द की चारपाई पर बैठ गये।

"गोविन्द ! बीज फिर भी गाँव वालों को कम पड़ गया, तो..?" पाँडे जी ने आँख चमकाते हुए पूछा।

"तब और बीज सोसाइटी से आ जायगी, मुखिया बाबा !"

"हूँ!...लेकिन ग्राम-देवता और क्रोधित डीह-डावर, खंडहर की रूठी हुई शक्तियों के संबंध में क्या होगा ?"

"जो कहिए मुखिया बाबा ?"

"मैं क्या कहूँ, तुम तो खुद इतने समझदार हो कि राजा से लोहा लेते हुए भी तूने तनिक न सोचा !"

मुखिया की वाणी में व्यंग्य था, जिसे गोविन्द उसी क्षण अनुभव कर गया, लेकिन उसने शान्तिपूर्वक कहा—"राजा से मैं क्या लोहा लेता, पाँडे जी ?••मैं तो उन्ही से उजाड़ा जा रहा हूँ और अपने जीने के लिए इतने बड़े तूफ़ानों को लेकर चल रहा हूँ।"

मुखिया जी अपने गंदे दाँतों को दिखाकर हँस पड़े और उन्होंने अजीब तरह से कहा—"अच्छा ठीक है, देखें नये बीज से क्या होता है ?"

"नए बीज से हमारी नई खेती होगी," किशन ने गाड़ी के पास से विजय की वाणी में कहा, "मुखिया बाबा ! देखना आठ-आठ मन के बीघे होंगे !"

"होंगे नहीं, खाक ! कल के लवंडे !" मुखिया जी ने तनक कर कहा, "पहले अपने क्रोधित देवताओं की पूजा तो कर लो ! नहीं तो इस बार के अकाल पड़ने से एक आदमी भी न बच सकेगा।"

मुखिया जी की इस बात से सारे गाँव की बीज लेती हुई भीड़ चुप हो गई। और सब लोग पाँडे जी को देखने लगे।

"इस फ़सल की पैदावार के बाद, जब सब घरों में अन्न हो जायगा तब हम लोग अपने देवता की पूजा कर लेंगे।"

गोविन्द ने यह कह कर गाँव वालों की ओर देखा। वे सब गोविन्द की बात पर सहमत थे।

"तुम क्यों नहीं कहोगे, तुम्ही ने तो इस गाँव पर तूफ़ान ही लादा है !"

"यह सब झूठ, है मुखिया बाबा !" गोविन्द ने तड़प कर कहा, "नहीं तो मैं अपनी सत्यता के लिए इतना मरता नहीं ! सारा गाँव इसी राजा के हाथ से टीला बन जायेगा; अगर आप ऐसे लोग इसी तरह सोचते रहे।"

"फिर तो हमें अभी—ज़मीदार टूटने की ख़बर पर कितने उत्सव मनाने हैं !" एक नौजवान ने बढ़ कर कहा।

"लड्डू पा जाओगे, ज़मींदारी टूटने से !" एक दूसरे लम्बरदार ने आकर कहा, "जब राजा नहीं, तब प्रजा कहाँ ?"

"जब तक सड़े हुए बुड्ढे नहीं, तब तक गाँव कहाँ ?" एक लड़के ने भागते हुए कहा। सब पुराने खून वाले जलकर रह गए और न जाने क्या बुरी-बुरी बातें कहने लगे।

लोग बीज ले-लेकर अपने-अपने घर जा रहे थे और आसमान की ओर देखकर धीरे से कह उठते थे—"भगवान ! आज ही रात को पानी बरसे !"

* * *

मुखिया जी का अहाता भीड़ से खाली था और सब गाड़ियाँ भी बीज से खाली हो चुकीं थीं—लेकिन गोविन्द का दिमाग़ विचारों और अन्तर्द्वन्द्वों से भरा था।

अहाते में गोविन्द किशन के साथ गाँव के ठेकेदारों से घिरा था और लोग उसे बार-बार खिंरोच रहे थे। उसका दिमाग़ तमाम तरह के प्रश्नों के उत्तर देते-देते परेशान हो चुका था।

"अगर, इस पर भी फ़सल ठीक तरक से न हुई, तो !" एक ने पूछा "क्यों न होगी !" गोविन्द ने प्रश्न-सूचक उत्तर दिया।

"क्योंकि जगतपुर की धरती पर पाप हुआ है, हमारे देवता क्रोधित हैं, इसलिए।" मुखिया ने कहा।

गोविन्द दौड़ता हुआ मुखिया के पक्के कुएँ की जगत पर चढ़ गया और कहने लगा—"अगर आप लोगों को गंगा पर विश्वास है तो मैं गंगा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि हमारी धरती पवित्र है, हमारी धरती माँ है—हमारी नई फ़सल होगी हमारा खाली घर फिर से अन्न से भर जायेगा।"

किशन दौड़कर कुएँ की जगत पर काँपते हुए गोविन्द को सम्हाल लिया और नीचे उतरते हुए कहने लगा—"परेशान न हो, गोविन्द !

बरसात में कीड़े पैदा होते हैं और वे समय आने पर स्वयं मर जाते हैं ! कब की पुरानी धरती पर जमीं हुई काली काई, मैल धीरे-धीरे धुलेगी... !"

"क्या कहता है, तू किशन !" लम्बरदार ने कड़ककर कहा ।

"लम्बरदार साहब ! मैं पानी बरसने की बात कह रहा हूँ ।"

सब लोग सन्तुष्ट होकर चुप हो गये और गोविन्द की सौगन्ध पाकर शान्तिपूर्वक उसे देखने लगे ।

"हम लोग तुम्हारी बात मान सकते हैं गोविन्द... लेकिन... !" मुखिया साहब आगे कहते हुए रुक गए ।

"लेकिन क्या, मुखिया बाबा ?" गोविन्द ने पूछा ।

"सुनो," पाँडे जी ने इधर-उधर देखकर कहा, "यहाँ इस समय सब अपने ही लोग हैं । कोई हर्ज़ नहीं है," तुम्हें एक बात समझाता हूँ—

"कौन सी बात ?" गोविन्द आतुर हो रहा था ।

"सुनो,...बेकार तूफ़ान मोल लेने से कुछ नहीं होता...तुम राजकुमार से माफ़ी माँग लो... अपनी भूल स्वीकार कर लो...एक मुसलमान लड़की के पीछे तबाह न हो...ज़ैनब को धीरे से राजकुमार के हवाले कर दो...तुम्हारा इसमें क्या जाता है..वह मुसलमान ही तो ठहरी..और इधर हम लोग अपने क्रोधित देवता को भी मना लेंगे.. ।"

मुखिया कहता जा रहा था और गोविन्द जैसे मरता जा रहा था—जैसे उसकी साँसें बन्द हो गईं थीं । दिल स्थिर हो गया था । उसके पाँव के नीचे की धरती मानो कुम्हार की चाक की तरह तेज़ी से घूमने लगी थी और गोविन्द उसपर नाचता हुआ मानो बेहोश हो गया था ।

गोविन्द ने मुखिया का अन्तिम वाक्य फिर सुना, वह कह रहा था—"एक बदमाश मुसलमान लड़की के पीछे तुम्हारी पढ़ाई, तुम्हारा धर्म, तुम्हारी जात-पाँत सब कुछ नष्ट हो जायगा...और तुम कहीं के न होगे ।"

'मुखिया !'' गोविन्द चीख़ उठा और अपना सर थामकर नीचे धरता पर बैठ गया।

"हम लागों के बाल धूप में नहीं पके हैं, गोविन्द ! अबसे सँभल जाओ...गल्तियाँ तो सबसे ही होतां हैं।"

गोविन्द दर्द से कराहकर फिर खड़ा हो गया और किशन का सहारा लेता हुआ, चुपचाप पाँडे जी के अहाते से बाहर हो गया।

गोविन्द अपने घर की ओर चुपचाप बढ़ रहा था। उसके दाएँ हाथ को अपने हाथ में लिए हुए किशन सोचता हुआ चल रहा था। उसी समय, किशन ने डर से काँप कर कहा—"गोविन्द ! तुम्हें तो बुखार है।"

गोविन्द जैसे कुछ सुन ही नहीं रहा था। किशन ने बढ़ते हुए अपने लम्बे कुर्ते को झट से निकाल डाला और गोविन्द के सर को ढक दिया।

गोविन्द का शरीर जल रहा था, पर वह बढ़ रहा था। गोविन्द की आँखों से चिनगारियाँ फूट रहीं थीं, पर वह बहुत दूर-दूर देख रहा था। गोविन्द काँप रहा था, पर वह बुरी तरह सोचता चल रहा था। वह जिस धरती पर चल रहा था वह घूम रही थी पर गोविन्द के पैर नहीं लड़खड़ा रहे थे। वह जिस आसमान के नीचे चल रहा था, वह पत्थर की तरह सख़्त लगता था लेकिन उसपर वर्षा के भूरे-भूरे मुलायम बादल तैर रहे थे।

*　　*　　*

बुरी-सी रात घिर आई थी, और गोविन्द अपने कमरे में बुख़ार से बेहोश पड़ा था। वह रात बुरी थी और गोविन्द कुछ बोल नहीं पा रहा था। वह रात बहुत बुरी थी और आसमान पर तारे छिटक आये थे...वर्षा के बादल न जाने कहाँ बहकर छिप गए थे। वह रात बुरी थी और गोविन्द की बीमारी की ख़बर समूचे जगतपर में

फैल गई थी । वह रात बहुत बुरी थी क्योंकि जगतपुर की काफी आत्माएँ आपस में फुसफुसा कर कहने लगीं थीं कि.. 'यह है क्रोधित देवता का असर ! नया बीज अभी बँटा और हत्यारा अभी बीमार पड़ा ।'

गोविन्द अपनी बेहोशी में सो रहा था। और उसके सिरहाने किशन खामोश बैठा था । सूरा दीदी रो-रोकर समस्त देवी-देवताओं के पूजे मनौती कर रहीं थीं । दौड़-दौड़ कर काली, डीहबाबा, सिवान माई, घर की फूलमती, नीम तले की शीतलामाई, पीपर वाले जोगीबीर बाबा, टीले के जिन्नात और खंडहर के क्रोधित देवता को फल-फूल बत्ती-मिठाई-भाँग, गाँजा, लँगोटी, जनेऊ, अन्नादि चढ़ा रही थीं ।

गोविन्द के पिता महेशदत्त बाहर बारामदे में बैठ कर सवा लाख गायत्री के मंत्र जप रहे थे ।

चार घंटे रात बीत चुकी थी । मुखिया बद्री पाँडे, लम्बरदार काका के साथ, महेशदत्त जी के घर गोविन्द को देखने आए।

बरामदे में उन लोगों की आवाज़ सुनते ही, किशन ने गोविन्द के कमरे का दरवाज़ा भीतर से बंद कर लिया । क्षण भर के बाद, वे दोनों, गोविन्द के पिता जी के साथ बंद दरवाज़े तक आए लोगों ने दरवाज़े पर धीरे से आवाजें कीं पर जब काफी प्रयत्न करने पर भी दरवाज़ा न खुला तब वे तीनों बाहर.बरामदे में बैठ कर बातें करने लगे । महेश जी बहुत चिन्तित और दुखी थे, लेकिन वे दोनों बहुत वाचाल थे, मुखिया सबसे अधिक ।

"देवता का रूठ जाना, साधारण खेल नहीं है, पंडित जी !" मुखिया ने कहा और लम्बरदार की ओर देख कर मुस्करा दिया। पंडित महेशदत्त जी चुप थे••और मन में मंत्र का जाप कर रहे थे ।

"घबड़ाइए नहीं, पंडित जी ! गोविन्द अच्छा होजायगा !" एक ने कहा ।

"हाँ, देवताओं को पूजा मान दीजिए !" दूसरे ने समर्थन किया।

"मेरे गोविन्द पर कुछ आँच न आए ! मैं उसके लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ ।" महेशदत्त जी ने दर्द से कहा ।

"हाँ, हाँ बस ठीक हो जायगा···।" दोनों ने एक स्वर में कहा ।

"लेकिन अब मैं एक बात कह रहा हूँ पंडित जी !" मुखिया ने आँखों के साथ अपना दायाँ हाथ चमकाते हुए कहा, "गोविन्द की झट से अब शादी हो जानी चाहिए··और उसका ज़ैनब का संबंध बिल्कुल टूट जाना चाहिए···। इससे दो लाभ होंगे ।"

"क्या, क्या ?" महेश जी ने धीरे से पूछा ।

"कान लगा कर सुनलो, बहुत पते की बात कह रहा हूँ, इससे यह होगा कि राजकुमार विजय किसी न किसी तरह ज़ैनब को पाकर खुश हो जायगा···और बेकार की एक बला जगतपुर पर से हट जायगी। इसमें हमारा क्या जाता है, सोचिए, आपही सोचिए पंडित जी !"

"हाँ, ठीक ही कहते हैं !" महेश जी ने दर्द से कहा ।

"और दूसरा लाभ यह होगा कि राजा की खुशी के साथ ही साथ आपका भी कल्याण हो जायगा ।"

"मैं कुछ समझा नहीं !" महेश जी ने उत्सुकता से कहा ।

"आप फिर से, राजा के मन्दिर के पुजारी हो जायेंगे·· और मुझे विश्वास है कि राजासाहब के महल में भी आपकी पैठ हो जायगी···और आप एक आने वाले खतरे से बच जायँगे !"

"कौन-सा खतरा ?"

"यही कि एक मुसलमान लड़की का एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण के घर आना-जाना और एक ब्राह्मण लड़के का मुसलमान लड़की के साथ रहना,···उसके घर आना-जाना ब्राह्मण के घर के लिए कितना खतरनाक है !"

"क्यों··? महेश जी ने बच्चों की तरह पूछा ।"

"क्यों ? · ·अरे, आप क्यों पूछ रहे हैं !" लम्बरदार जी ने इस बार आश्चर्य से कहा, "वह अपनी जाति से निकाल दिया जायगा, अपने धर्म-पाँत से दूर कर दिया जायगा !"

महेशदत्त जी का माथा ठनका। उनके हाथ से रुद्राक्ष की माला नीचे गिर पड़ी। उन्होंने गिड़गिड़ा कर दोनों के सामने कहा, "नहीं यह नहीं हो पाएगा · ·भाई ! · ·मैं जल्द से जल्द गोविन्द की शादी कर दूँगा · ·बस उसे अच्छा भर हो जाने दो !"

उसी समय गोविन्द अचानक अपने कमरे में चीख़ उठा और अपने ऊपर ओढ़ाए हुए तमाम कपड़ों को एक-एक करके दूर फेंकता हुआ ऊँची आवाज़ में कराहते हुए कहने लगा—"आसमान मुझपर गिरने को है · ·मुझ पर बोझ पड़ रहा है ! मेरा दम घुट रहा है किशन ! · ·कोई मेरा गला दबा रहा है · · मुझसे मेरे सब कपड़े दूर कर दो · ·मुझे नंगा हो जाने दो किशन !"

किशन बुरी तरह परेशान होकर गोविन्द को सम्हाल रहा था और गोविन्द बड़बड़ाता जा रहा था—"देखो किशन· · ·बाहर पानी तो नहीं बरस रहा है· · · ·जगतपुर को कहलवा दो· · ·पानी बरसते ही· · ·खेती में खूब लेवा मारकर नया बीज को बोया जाय !"

"नहीं, पानी नहीं बरस रहा है, गोविन्द ! लेट जाओ· · ·तुम्हें सख़्त बुख़ार है !"

किशन गोविन्द को लिटाकर फिर से उसे ढक रहा था। महेशदत्त जी के साथ, दरवाजे के बाहर मुखिया और लम्बरदार दुख प्रकट करते हुए खड़े थे।

थोड़ी देर के बाद गोविन्द फिर चौंक पड़ा और उठते-उठते कहने लगा—"किशन· · ·! किशन !! देखो बाहर पानी बरस रहा है· · · और ज़ैनब अकेली· · ·भींगती हुई· · ·बाहर खड़ी है· · ·!"

"नहीं, गोविन्द ! सो जाओ !!· · ·पानी नहीं बरस रहा है, ज़ैनब अपने घर है !"

किशन ने फिर गोविन्द को सम्हालकर पलँग पर लिटा दिया; और खिड़की से आसमान की ओर देखा—चाँद हँस रहा था, सितारे मुस्करा रहे थे। उसका दिल गोविन्द—जगतपुर की नई आत्मा—गोविन्द बुखार से हाँफ रहा था।

वह रात कितनी बुरी थी। गोविन्द अचानक बीमार होगया था और उसके घर मुखिया और लम्बरदार अपनी ज़हरीली जबान और बदबूदार आत्मा लेकर आए थे। गोविन्द के पिता महेश दत्त जी का एकाएक माथा ठनका था। उस रात की फिज़ा बदबूदार थी क्योंकि उसने कितनी साफ आत्माओं का दृष्टि-कोण बदल दिया था।

वह रात ज़ैनब के लिए भी कम बुरी न थी। वह रातभर न जाने कितने उड़ते हुए ख्वाबों को देखती रही।

'एक मन्दिर है, बेचारी अनजाने में उसमें घुसकर ठाकुर जी को देखने लगती है। सहसा मन्दिर का पुजारी पीछे से उसके बालों को पकड़ कर मारने लगता है।' वह चीखकर जग उठती है। कहीं कुछ नहीं। फिर सो जाती है, और नया स्वप्न—

"रोनी में, कश्ती पर, गोविन्द और ज़ैनब उस पार जा रहे हैं ज़ैनब हँस रही है; गोविन्द उसे मना कर रहा है—एकाएक एक तूफ़ान आ जाता है और उन दोनों की कश्ती डूब जाती है, ज़ैनब बहते-बहते एक घड़ियाल के मुँह में चली जाती है और उसके पेट में जाकर उसी का कच्चा गोश्त खाती है और खून पीती है।" और उसकी आँखें खुल जाती हैं, कहीं कुछ नहीं। वह फिर सो जाती है और फिर देखती है—

"गोविन्द मर गया है! ज़ैनब पागलों की तरह रोती हुई उसके पाँयते बैठी है, और स्वयं मरने के लिए कोई तरीक़ा सोच रही है। वह एक कुएँ के पास जाती है, उसी समय विजय राजकुमार उसे

जबरदस्ती पकड़कर अपने महल में ले जाकर छिपा लेता है। वह महल से एक झरोखे पर खड़ी होकर रो रही है। गोविन्द का शानदार जनाज़ा निकल रहा है। वह एकाएक झरोखे को तोड़कर; महल से कूद पड़ती है और नीचे गिरती हुई धरती में समाती जा रही है।

उसी समय ज़ैनब, अपने स्वप्न में चीख कर जग पड़ती है और कुछ नहीं देखती।

ज़ैनब अपने घर से बाहर आकर आसमान के नीचे खड़ी थी। वह पसीने से तर थी। उसके दिल की धड़कन बहुत तेज़ थी। वह इधर-उधर घूमने लगी, फिर उसने आसमान की ओर देखा; सुबह होने वाली थी; आकाश में सितारे कहीं छिप चुके थे।

ज़ैनब बेतहाशा, शेख पट्टी से गोविन्द के घर भागती चली जा रही थी। वह आज बहुत डर रही थी, न जाने क्यों उसके पैर रह-रह कें कँप रहे थे।

बरामदे में पंडित महेश धीरे-धीरे राम-राम कहते हुए बाहर देख रहे थे। ज़ैनब, तेज़ी से बढ़ती हुई एकाएक बरामदे में रुक गई और उसने हाथ जोड़कर पंडित जी से आदाब किया। पंडित जी चुप थे।

ज़ैनब ने घबड़ा कर पूछा—"गोविन्द कैसे है, पंडित जी?"

"बीमार हैं!" पंडितजी फिर मौन हो गए।

"यह दरवाज़ा क्यों बंद है, मैं गोविन्द को देखूँगी!"

"नहीं, लोगों ने मना किया है, ज़ैनब!····तुम इस समय गोविन्द को न देखो····वैसे कोई घबड़ाने की बात नहीं है, वह बहुत जल्द अच्छा हो जायगा!"

"किसने मना किया हैं" ज़ैनब ने परेशान होकर कहा, "यह सब बड़ी बेकार बातें हैं···मैं गोविन्द को क्यों न देखूँ?···लोग कौन हैं, मना करने वाले?"

"हैं, क्यों नहीं····बेटी!····तुम बेकार ज़िद करती हो,..

वे मना करने वाले हैं—गाँव के पंडित, गाँव के मुखिया, गाँव के लम्बरदार···और गाँव···के···।"

"और कुछ नहीं !····" ज़ैनब ने बीच ही में बात काटते हुए कहा।··· "अच्छा···मैं गोविन्द को दूर से देखलूँगी पंडितजी···!"

"नहीं बेटी, यह ठीक नहीं !"

"अच्छा, आप दरवाज़ा खुलवा दीजिए···मैं सिर्फ़ गोविन्द की आवाज़ सुनना चाहती हूँ।"

यह कहकर, ज़ैनब बच्चों की तरह, अजीब विश्वास से दरवाज़े पर, सूरा दीदी को धीरे-धीरे आवाज़ देने लगी। पंडितजी बाहर बरामदे में झुँझला उठे और सरस्वती ने भीतर से ही उत्तर दिया,

"अभी नहीं···ज़ैनब !···गोविन्द सो रहा है।"

"सो रहा है ? आह !···ख़ुदा···तू गोविन्द को राहत दे !" ज़ैनब ने बंद किवाड़ पर अपने सिर को टेक एक दर्द भरी वाणी में कहा। और उसी तरह···बेजान सी गुमसुम खड़ी रही।

पंडित जी एकटक, कुछ क्षणों तक ज़ैनब को देखते रहे और अपने भावना-जगत में अपने गोविन्द को देखते रहे; फिर एकाएक उनका दिल भर आया···। अपनी जगह से उठकर, पंडितजी ज़ैनब के पास आए और उसके खुले हुए सर पर हाथ रखकर, उन्होने प्यार से, बहुत गिरी हुई वाणी में कहा—"बेटी ज़ैनब !···अपना बचपना भूलने की कोशिश करो !···बुरी दुनियाँ···।"

अधूरी बात कहकर पंडितजी बरामदे से बाहर निकल गए, और ज़ैनब सोचने लगी—ख्वाब बुरे हों, दुनियाँ बुरी हो,···ख़ुदा भी बुरा हो···लेकिन मेरा गोविन्द न बुरा हो···तो कोई चीज़ बुरी नहीं !

ज़ैनब खड़ी-खड़ी· · ·टुकड़े-टुकड़े में सोचती जा रही थी—राजकुमार की मौत हो जायगी· · ·हमारी नयी खेती होगी· · ·बीघों में आठ-आठ मन गल्ला होगा· · ·ज़ैनी की आँखे· · ·ठीक हो जाँयगीं ।· · गोविन्द· · ·एम० ए० कर लेगा· · फिर· · ।

ज़ैनब सोचती-सोचती मानो एक ढुलकते हुए बूँद पर खड़ी थी, उसी समय सरस्वती ने भीतर से बंद दरवाज़ा खोला और देखा--ज़ैनब अबतक खामोश खड़ी है ।

सरस्वती और ज़ैनब बहुत देर तक, एक दूसरे को देखती रह गईं । सरस्वती ने, बाहर निकलकर, ज़ैनब से कहा, "गोविन्द क्यों एकाएक बीमार पड़ गया है, इसे तो तुम जानती ही होगी ?"

"मैं कुछ नहीं जानती, सूरा दीदी ?"

सरस्वती ने धीरे-धीरे ज़ैनब से सारी बातें कह डाली—किस तरह से गोविन्द और ज़ैनब के संबंध में सोचा जा रहा है, किस तरह से गोविन्द के दिल पर चोट पहुँचाई गई है । और गोविन्द के घर पर, मुखिया और लम्बरदार ने क्या-क्या सीमाएँ बांधीं हैं !· · ·यानी सूरा दीदी ने आँखों में आँसू लाकर सब कुछ कह डाला और गोविन्द की दशा को भी कह डाला । और फिर सरस्वती चुप हो गई·· । ज़ैनब अपनी उदास आँखों से बाहर सूने में न जाने क्या देखने लगी ।

"लेकिन, फिर भी मैं गोविन्द को देखना चाहती हूँ !" ज़ैनब ने एकाएक तेज़ी से कहा ।

सरस्वती चुप थी; और कुछ सोचने लगी थी ज़ैनब ने बढ़कर फिर कहा—"मैं गोविन्द को देखना चाहती हूँ, दीदी !"

सरस्वती कुछ कहकर बढ़ने ही जा रही थी कि उसने देखा, पंडित जी सामने से चले आ रहे हैं और उसके पीछे कुछ दूर पर मुखिया और लम्बरदार भी इधर ही मुड़ रहे थे ।

"ज़ैनब ! इस समय तू घर चली जा !" सरस्वती ने प्यार से ज़ैनब को पकड़ कर कहा ।

ज़ैनब का दिल रो उठा, पर उसके पैर बरामदे से बाहर बढ़ गए। ज़ैनब का मन दर्द से कराह उठा, पर उसकी आँखें अपनी ख़ामोशी लए हुए सामने देखने लगीं।

चार क़दम बढ़ते ही, ज़ैनब पसीने से तर होगई। उसने आसमान की ओर देखा—काले-काले बादलों की मुस्कान से वह भर गया था। हवा धीरे-धीरे बह रही थी, पर ज़ैनब को लग रहा था जैसे क़ायनात में कँपकपी उभर रही है।

घर पहुँचकर, ज़ैनब अपने पलँग पर औंधी लेट गई और बुरी तरह से, अपने मुँह को तकिए से ढक सोचने लगी—"काश, अभी पानी बरसने लगता!...ख़ूब पानी बरसता!...जगतपुर की धरती मुस्करा उठती..उसमें नया बीज पड़ता, नई खेती होती...ख़ूब पानी बरसता. .फिर, फिर..गोविन्द..गोविन्द. .फ़ौरन अच्छा हो जाता...वह दौड़कर मेरे घर आ जाता..हम लोग..इन्द्रा...के पवित्र हाथों को चूम लेते..काश! अभी पानी बरसने लगता, रोनी में बाढ़ आ जाती। गोविन्द परेशान होकर एक कगार से पुकारता मैं दूसरे कगार से मुस्करा कर आवाज़ देती। ख़ूब पानी बरसता...।"

ज़ैनब सोचते- सोचते, उसी तरह सो गई। और उसकी आँखें तब खुलीं जब अम्मी ने आँगन से जोर से पुकारते हुए कहा—"ज़ैनब ओ, ज़ैनब!! ...जल्दी दौड़; पानी बरस रहा है; आँगन में तेरे सब कपड़े भीग रहे हैं।"

ज़ैनब जगते ही, आँगन की ओर दौड़ पड़ी, और अपने कपड़ों को हाथों में दबाए हुए, बरामदे से बरसती हुई बूँदों को देखने लगी। वह बार-बार, बरामदे से बाहर सर निकाल कर बरसते हुए आसमान को देख रही थी और सोच रही थी—"गोविन्द को बुख़ार उतर गया होगा,...वह मुस्करा रहा होगा, वह मुझे सोच रहा होगा, वह मेरे घर आ रहा होगा, वह मुझसे मिलने आ रहा होगा!"

पानी तेज़ होता गया, और क्षणभर बाद मूसलाधार पानी बरसने लगा। ज़ैनब का मन नाचने लगा, उसका दिल खिल गया, उसने जी भरकर काले आसमान को देखा और मुस्कराती हुई आँगन की धरती को देखा। उसे लगा जैसे गोविन्द उसे पुकार रहा था।

ज़ैनब तेज़ी से इधर-उधर घूमने लगी, और फिर ज़ैनी के कमरे में जाकर धीरे से उसकी आँखें बंद करके उसके पीछे बैठ गई।

ज़ैनी ने ज़ोर से कहा—"शैतान ज़ैनब!"

"मेरी अच्छी बाजी!"

ज़ैनब ने प्यार से ज़ैनी के दाएँ हाथ को चूम लिया और उससे लिपट कर कहा, "बाजी!.. सुनो,.. अम्मी से कहना कि कमसे कम दस बीघे सरया धान, बीस बीघे रानी काजल और चार बीघे सीता सिंगार धान बोएँगी।"

"अरे!.. सबके सब खेतों में धान?" ज़ैनी ने कहा।

"हाँ, और नहीं तो क्या, इस बार इतना धान होगा, इतनी फ़सल होगी कि जगतपुर भर जायगा.. तुम्हारी आँखें बन जायँगी बाजी!.. डाक्टर को घर ही पर बुलाऊँगी!.. और.. और..।"

"और, और क्या?"

"कह..दूँ, और...और क्या?.......और...तुम्हारी शादी होगी!"

जैनब, हँसते हुए यह कहकर, बच्चों की तरह, ज़ैनी की गोद में सो गई और ज़ैनी की अंधी आँखों की गहराई में उतर कर देखने लगी—एक बाइस साल की नौजवान लड़की; जो सोचती है, और अपनी ख़ामोश निगाहों में न जाने कितने मीठे ख़्वाब देखती है, मुझे भी कोई प्यार करता!...मुझे भी कोई देखता, मैं भी किसी को प्यार करती और जी भर कर देखती। वह नौजवान लड़की कभी ख़ुश होती, कभी बहार के गीत गुनगुनाती, कभी अपने को बद्दुआ देती

हुई, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कहती—"मुझे रोशनी चाहिए ! ...मुझे आँखों का दिल चाहिए...मुझे प्यार चाहिए !"

ज़ैनब ने ज़ैनी की गोद में सोकर, एक क्षण में, उसकी अन्धी आँखों को देखकर इतना सोच डाला।

"क्यों चुप हो, ज़ैनब !" ज़ैनी ने धीरे से पूछा।

"नहीं, चुप नहीं हूँ, तुम्हारे निक़ाह की बातें सोचने लगी।"

ज़ैनी ने प्यार से, ज़ैनब को अपनी गोद से दूर कर दिया और उठती हुई बोली—

"अभी खेत बोवाने के लिए बीज की तैयारी करनी है !"

"इस साल हमारे धान के खेतों में कम से कम आठ-आठ मन बीघे अन्न पैदा होगा...बाजी !" ज़ैनब ने उठते हुए कहा, "और नए बीज से हमारे सब खेत बोए जाएँगे।"

"हाँ, हाँ हमें मालुम है !..."

"अम्मी को भी ?... हलवाहे को भी ?"

"हाँ हाँ सब को !"

* * *

दोपहर तक मूसलाधार पानी बरस कर एकाएक रुक गया। जगतपुर जैसे सोते-सोते जग गया—लगा जैसे धरती मुस्करा कर, करवट बदल रही है। जगतपुर आवाजों से भर गया और फिर वही उठती हुई आवाज़ें उमड़कर जगतपुर की धरती पर फैलने लगीं। खेतों में जगतपुर के किसान नाचने लगे। दौड़ते हुए बैलों की सफेद जोड़ियों से सारी दिशाएँ चमक उठीं। बच्चे, कीचड़ों में धँसते हुए अपने-अपने खेतों से बहते पानी को रोक रहे थे। नौजवान, हल

जोत रहे थे, किसान जोते हुए खेतों में खूब माजते हुए लेवा* कर रहे थे।

कोई हाथ उठाकर, बीज के लिए आवाज़ दे रहा था, कोई पानी बाँधने के लिए किसी को सचेत कर रहा था, कोई घर दौड़ रहा था, कोई खेत की ओर दौड़ा जा रहा था, कोई चोट सम्हाल रहा था।

इस तरह से सम्पूर्ण जगतपुर जग उठा था, एक-एक में जिन्दगी की सिहरन आ रही थी। कोई बैठा नहीं था। सब के अणु-अणु काम में लग गए थे। क्या जगतपुर के भीतर क्या बाहर; क्या घर में, क्या खेत में...क्या खुलकर, क्या घूँघट की आड़ में।

कोई पसीने से भींग रहा था। कोई हँस रहा था, कोई हँसा रही थी। कोई खड़ी होकर दूर से, भगवान के सामने आँचल पसारकर धरती का वरदान माँग रही थी। कोई गाँव के 'सिवान देवी' को ज्योनार चढ़ा रही थी, कोई 'डीहबाबा' को 'गूगुर' और 'जायफर' दे रही थी! कोई टीले के जिन्नात बाबा को सिन्नी चढ़ा रही थी, कोई मन्दिर के खंडहर में, रूठे हुए देवता को अपने बहते हुए कीमती आँसुओं से प्रसन्न कर रही थी। कोई आसमान की ओर, बादलों को देख रहा था, कोई धरती को देखकर उसे खूब जोत रहा था।

कोई ओठों पर हँस रहा था, कोई आँखों में मुस्करा रही थी। कोई खेत में दौड़ रहा था, कोई अपनी बाँकी चितवन से उसे ज़िन्दगी दे रही थी। कोई घर से दूर, अपने खेतों में जा रहा था।

कोई कहीं, सास-ननद से छिप कर, घूँघट की ओट से उसे मुस्कराती हुई देख रही थी। कोई दूर, चला जाता हुआ पेड़ों की

---

*धान बोने के लिए पहले पानी से कुछ भरे हुए खेत को जोतते हैं फिर पाटी (हेंगा) मारकर खेत की सारी मिट्टी को कीचड़ कर लेते हैं। इसे लेवा कहते हैं फिर इस पर धान बोया जाता है।

आड़ में छिप रहा था, कोई अपनी एँड़ियों पर खड़ी होकर उसे देख रही थी।

कोई देख रहा था, कोई शरमा रही थी। कोई उभर कर काम कर रहा था, कोई अपनी खूबसूरती और मासूमियत के बोझ से झुकी जा रही थी।

बहनें खेतों में पीने के लिए पानी, शर्बत, अमल मिटाने के लिए··तम्बाकू और आग, थकान मिटाने के लिए पवित्र-स्नेह लिए जा रहीं थीं! दूल्हनें घर में थकान मिटाने के लिए भाँग, सुस्ती मिटाने के लिए प्यार और आखों में नई ज़िन्दगी भर-भर कर खड़ीं थीं।

माताएँ आँचल पसार कर भगवान से वरदान, रो-रोकर रूठे हुए देवता की मनुहार, और गा-गाकर अपनी विश्वस्त शक्तियों की पूजा कर रही थीं, पूजा मान रहीं थीं।

इस तरह से सारा जगतपुर उसकी धरती, उसका आसमान, उसके गड्ढ़े, उसकी नदी उसका टीला, उसकी झाड़ियाँ, उसकी समस्त आत्माएँ काम कर रहीं थीं।

और गोविन्द ?

और ज़ैनब ?

और राजकुमार ?

गोविन्द से अपने घर में छिपा नहीं रहा गया। उसे अब भी बुखार था, पर वह अपने सर, दिल को ढके हुए, दीदी और पिता जी से छिप कर, नयी खेती के पहले दिन को देखने निकल पड़ा था। जगतपुर की सारी आत्माएँ अपने-अपने खेतों में थी, गोविन्द अकेले कैसे घर रह पाता ?

वह गाँव से पश्चिम की ओर मुड़कर करौंदे, अरूसे की झाड़ियों को पार करता हुआ टीले पर चढ़ रहा था और उसे लग रहा था कि वह एक ऐसे पहाड़ पर चढ़ रहा है जो बोलता रहता है, जिसकी कितनी छिपी हुई आँखें हैं।

गोविन्द टीले पर खड़ा था और वहीं से चारों ओर के किसानों, जगतपुर की आत्माओं, और अपनी नई खेती को देख रहा था। उसकी आँखें धीमे-धीमे बुख़ार से जल रहीं थीं; पर उनमें कभी-कभी उत्साह और आशा के आँसू आ-आकर; गोविन्द को जीवन देते जा रहे थे।

गोविन्द अपने को कपड़े से ढके था, और वह टीले पर घूम रहा था। वह बार-बार आसमान को देखकर मुस्करा देता था, धरती को देखकर झुकजाता था, मस्जिद और मन्दिर के खंडहर को देखकर न जाने क्या बुदबुदाने लगता था?

जगतपुर के किसानों को; जो इस समय अपने-अपने खेतों में नई खेती के लिए नया बीज बो रहे थे; उन्हें सोच-सोचकर गोविन्द अपूर्व आनन्द से झूम उठता था। वह बार-बार सोचता था कि वह किसानों के बीच में जाये, खेतों के किनारे घूम-घूमकर उनकी नई खेती में अपने दिल और दिमाग़ का सहयोग दे, पर वह समझता था कि उसे उस समय कोई भी घर से बाहर देखकर बहुत फटकारता, वह स्वयं सोच रहा था कि उसे अब भी मीठा-मीठा बुखार है, उसे घर से बाहर, फिर इस सर्द टीले पर किसी हालत में नहीं आना चाहिए था। पर गोविन्द अपने दिल के उफान को नहीं रोक सका और वह चुपके से टीले पर घूम रहा था।

* * *

और ज़ैनब?

ज़ैनब सहमी हुई गोविन्द के घर आई। दरवाजा सूना था। शायद सब खेत पर चले गए थे। सूरा दीदी का भी नहीं पता था और उसे अजीब आश्चर्य्य तो तब हुआ; जब उसने गोविन्द की भी खाट खाली पाई! उसने ज़ोर-ज़ोर से, घर में तीन बार गोविन्द को पुकारा, पर कोई आवाज़ नहीं।

ज़ैनब घर से बाहर निकलकर काले बादलों से ढके हुए आसमान

के नीचे खड़ी हो गई। गाँव में अजीब तरह की खामोशी थी, और गाँव से बाहर, चारो ओर खेतों में एक मीठी गुहार मची थी।

ज़ैनब के दिल ने झट कह दिया कि गोविन्द निश्चित रूप से अपने नए बीज की बोवाई देखने गया होगा ? ˙ ˙ लेकिन, कैसे और कहाँ गया होगा, ज़ैनब यह सोचती हुई दायीं ओर मुड़ी और गाँव के पश्चिम तरफ मुड़ने लगी। गाँव के बाहर होते ही उसे लगा जैसे जगतपुर का ऊँचा टीला अपनी मिट्टी की ज़बान से ज़ैनब को अपने पास बुला रहा हो। ज़ैनब, अनायास टीले की ओर बढ़ने लगी और दूर से उसने देखा, गोविन्द पागल तो नहीं हो गया था ? टीले पर घूम रहा था।

गोविन्द सर नीचा किए हुए टीले की धरती की ओर देखता हुआ टहल रहा था। ज़ैनब अपने शिलवार को ऊँची किए हुए, झाड़ियों को पार कर . . . . गोविन्द को देख रही थी। गोविन्द टहल रहा था ज़ैनब दौड़ रही थी। गोविन्द सोच रहा था, ज़ैनब उस पर नाराज़ हो रही है। गोविन्द चुप था, ज़ैनब ने ज़ोर से पुकार कर कहा—"गोविन्द !"

गोविन्द ने टीले पर से देखा, ज़ैनब टीले पर दौड़कर चढ़ रही थी। गोविन्द ने ज़ैनब के नंगे पैरों को देखा, ज़ैनब ने गोविन्द के पागलपन को देखा। अब ज़ैनब चुप थी और गोविन्द ने पुकारा—"ज़ैनब !"

ज़ैनब तेज़ी से ऊपर चढ़ रही थी, गोविन्द ने नीचे उतरते हुए, ज़ैनब के दोनों बढ़े हुए हाथों को अपने दामन में छिपा लिया, और दोनों टीले पर खड़े हो गए।

ज़ैनब अपने को भूल गई, उसका गुस्सा कहीं हवा में उड़ गया, उसकी अन्य उलझनें जैसे कहीं छूट गईं। और वह जैसे फूल की पतली खुशबू की तरह, गोविन्द के दामन में खो गई। जैसे प्यार के एक

उमड़ते हुए समुन्दर में, लहर की मुस्कराहट गायब हो गई हो—जैसे माँ की प्यारी गोद में, कहीं डर से भागा हुआ उसका नन्हा सा मासूम बच्चा, मुँह छिपाकर खामोशी से सो गया हो।

इसी तरह ज़ैनब, गोविन्द से लिपट गई थी और गोविन्द ने ज़ैनब को उसी तरह अपने दामन में छिपा लिया था। ऊपर जैसे आसमान मुस्करा रहा था, पास में जैसे मन्दिर और मस्जिद के खंडहर दोनों को दुआ दे रहे थे। नीचे का टीला, जैसे पिघल कर मुलायम हो गया था, उसके तमाम ठीकरे जैसे शरमाने लगे थे। टीला जैसे उन दोनों को लिए हुए अपनी प्यारी धरती में समा रहा था; जहाँ हीरे और सोने की बड़ी बड़ी कानें हैं, पर कोई उसे छूता तक नहीं, जहाँ कितने बड़े-बड़े बादशाह, बड़े-बड़े इन्सान थककर अपनी अपनी कब्रों में सो गए हैं, पर उन्हें कोई जगाता तक नहीं, जहाँ न जाने कितनी दो-दो प्यार की आत्माएँ एक दूसरे के दामन में छिपकर खो गई हैं, और उनके ऊपर न जाने कितने लाख ताजमहल स्वयं बन गए हैं!

"गोविन्द! तुम कितने पागल हो!" ज़ैनब ने वास्तविक जगत में आते हुए कहा।

"यह तो पुरानी बात है, ज़ैनब!" गोविन्द ने धीरे से कहा, "लेकिन तुम तो नाराज़ होके इतनी दूर चली आईं!"

"तुम्हें अबभी बुख़ार है, गोविन्द! चलो जल्दी घर चलो!"

ज़ैनब गोविन्द की दायीं बाँह में हाथ डाल कर उसे टीले से नीचे उतारने लगी और उसपर बुरी तरह बिगड़ने लगी। उसके घर से ऐसी हालत में बाहर निकल आने के पागलपन पर प्यार के उलहने देने लगी।

गोविन्द को बुखार था, उसके पैर ऊपर से नीचे उतरते हुए काँप रहे थे। ज़ैनब उसको सम्हालती हुई, बगल से चल रही थी।

ज़ैनब महसूस कर रही थी कि वह अपनी रोशनी को अपने हाथों

में सम्हाले, घटाटोप अन्धेरे को चीरकर ज़न्नत के दरवाज़े पर पहुँच रही है।

गोविन्द को लग रहा था, जैसे वह अपनी मंज़िल को अपने दामन में ही छिपा कर आगे बढ़ रहा हो।

दोनों टीले के नीचे उतर आए, और ज़ैनब ने लम्बी साँस लेते हुए कहा, "गोविंन्द ! तुम्हें मेरे सर की क़सम तुम घर पर आराम करो··कहीं अपनी चारपाई से हिलो नहीं···मैंने ख्वाब में देखा है·· जगतपुर के खेतों में निहायत उम्दा फसल तैयार हुई है और मारे अनाज के जगतपुर की धरती ढँक गई है।"

गोविंद ने मुस्करा कर कहा, "और मैंने ख्वाव में देखा है कि मेरी ज़ैनब को किसी ने मेरे सामने एक चाँटा मारा है, और मैं चुप खड़ा था, उसका मैं कुछ नहीं कर सका।"

"इसमें तुम्हारा क्या क़सूर; ख्वाब में ऐसा होता ही है, एक मरतवा मैंने भी ख्वाब में देखा था कि एक चींटी मुझे लेकर भागी जा रही है, और मैं कुछ नहीं कर पा रही थी।"

गोविन्द को मीठी हँसी आ गई और उसके सूखे हुए ओठों पर जैसे अमृत बरस गया। ज़ैनब ने सिर्फ आँखों में मुस्कराते हुए कहा, "जल्दी घर चलो··तुम्हें बुख़ार है !"

गोविन्द अपनी चारपाई पर लेटा था। ज़ैनब ने थर्मामीटर से देखा, उसका बुख़ार १०२ (अंश) था। गोविन्द की साँसे तेज़ चल रही थीं और उसकी आँखें सुर्ख़ हो आई थीं। ज़ैनब ने उसे खूब ढक कर सुला दिया और स्वयं उसके सिरहाने बैठकर, उसके जलते हुए सर पर तेल लगाने लगी।

गोविन्द चुप लेटा था, ज़ैनब उदास बैठी थी। सहसा गोविन्द ने अपने दोनो हाथों से, ज़ैनब के दोनो हाथों को पकड़कर कहा—"ज़ैनब अब तुम घर जाओ !"

"और तुम्हारा बुख़ार और सर दर्द ?"

"ठीक हो जाऊँगा, अब तुम जाओ !··सब लोग आते ही होंगे !"

ज़ैनब अपनी डबडबाई हुई आँखों को छिपाती हुई अपने घर चली गई। गोविन्द सो गया।

* * *

और राज कुमार ?

राज कुमार जैसे विक्षिप्त था।

जगतपुर की धरती में नया बीज पड़ रहा था। सब खेतों की नई बोआई हो रही थी।

लगातार तीन दिनों तक जगतपुर अपनी नयी खेती में लगा था और राजकुमार विजय को पूरे तीनों दिन नींद नहीं आई थी। वह पागल सा रात-दिन अपने महल में, अपनें बागीचे में टहल रहा था।

चौथे दिन शाम को वह अपनेपन में आकर अपने सलाहकारों के साथ बारहदरी में बैठा था। उसके मुँह पर उदासी थी, और वह बार बार, अपने हाथों को मलता हुआ चिन्ता से सोच रहा था—इसका बदला कैसे लिया जाय ?··क्या राज्य के ख़त्म होने के पहले गाँव के कुछ नौजवान, जगतपुर पर राज्य करेंगे ?

उसकी आँखों के सामने बार बार गोविन्द, किशन, ज़ैनब, इन्द्रा, के रूप आके खड़े हो जाते थे और अपनी मौन भाषा में राजकुमार के सामने कह जाते थे—सावधान हो जाओ !

विजय हवा में अपनी मुट्ठियाँ बाँध कर झुँझला उठता था और बार बार अपने सलाहकारों से कह उठता था 'सारे जगतपुर में आग लगा दो !'

तब जगतपुर का टीला, विजय की आँखों में नाच उठता था, और जैसे वह कराह कर कह उठता था—मुझे न भूलना, मैं तेरी ही परम्परा की अमिट कहानी हूँ।

विजय अनायास, अपने साथियों के बीच कह उठता—मुझे इन सब बातों की परवाह नहीं !

"बस,··जगतपुरमें आग लगा दो··मैं आगे देख लूँगा! "विजय ने कहा, और वह अपने सलाहकारों को देखने लगा।

"कैसी आग?" विजय के एक नज़दीकी दोस्त बहादुर सिंह ने पूछा।

"आग की कमी है? "..सामाजिक आग या साम्प्रदायिक आग जगतपुर में लगा दो!"

"साम्प्रदायिक आग?" मैनेजर को आश्चर्य हुआ।

विजय ने कहा, "··आश्चर्य किस बात का!··राज्य के सामने सर उठा कर खड़ी हुई कोई भी चीज़, किसी भी तरह, बरबाद की जाती है!··यह राजनीति है··हमारे खून का क्रोध है,··गाँव में साम्प्रदायिक आग लगा दो··शेख पट्टी की मस्जिद में सूअर का गोस्त फेंकवा दो और दूसरी ओर, बड़ी पट्टी के मन्दिर में गाय की पूँछ कटवा के फेंक दो!"

"राजकुमार, यह बहुत बुरा होगा; गाँव फिर एक नया टीला बन जायगा!" मंत्री, जानकी दास ने डर से काँप कर कहा,—"फिर तो आपके दुश्मन हैं··गोविन्द, किशन, लाल साहब, शेखपट्टी के कुछ लोग और छोटीपट्टी के कुछ लोग··सिर्फ़ इन्हीं से निपट लेना है, बस··और··!"

"और फिर तो, इन लोगों की हालत भी कितनी खराब हो रही है। इस समय, दीनबक्ससिंह, राज्य दीवान ने कहा, "गोविन्द बीमार है, ज़ैनब उससे मिलजुल नहीं सकती। गाँव के मुखिया और लम्बरदार बुरी तरह से उनके पीछे पड़े हैं। कुछ ही दिनों में इन्द्रा की यूनिवर्सिटी ही खुल जायगी····और वे चली ही जाँयगीं, बाक़ी रहा किशन; वह किसी भी समय कीड़ों की तरह मसल दिया जासकता है!"

"बिल्कुल ठीक है!····इसके लिए किसी बहुत बड़े तूफ़ान की क्या ज़रूरत?····ये सब बरसाती कीड़ों की तरह खुद मर जाँयगे!"

"और ज़ैनब !" विजय ने धीरे से कहकर अपना मुँह छिपा लिया। और धीरे से उठकर अपने कमरे की ओर बढ़ गया।

"क्या हस्ती है, ज़ैनब की ?" अपने कमरे में पहुँचकर, विजय ने फिर से दुहराया।

"कुछ नहीं" विजय के दोस्त बहादुर ने पीछे से आकर कहा, "वह महल में जबरन लाई जायगी, एक अपराधिनी के रूप में··· और जीवन भर क़ैद !"

"कैसी अपराधिनी ?" विजय ने चौंककर कहा।

"वह एक हिन्दू, खासकर ब्राह्मण नवजवान से इसलिए मुहब्बत कर रही है कि हमारा हिन्दुत्व नष्ट हो जाय, हमारे देवता हमेशा के लिए हमारे दुश्मन और क्रोधी बने रहें।"

"बिल्कुल ठीक !····बिल्कुल ठीक कहा तुमने !" विजय ने हर्ष से कहा, "लेकिन अब मुझे नालायक किशन पर क्रोध आ रहा है; इस समय तबीयत हो रही है कि उसकी औरत को नंगी करके पिटवाऊँ ! नया बीज लाई है !"

"और उसकी बहन सब्बो को ?" बहादुरसिंह ने अजीब बदमाशी से आखें मटकाता हुआ पूछा।

"आह ! सब्बो भी तो एक कली है !····कहीं अगर मिल जाती !"

विजय ने एक ठंढी साँस लेकर, बहादुर को देखा, और दायीं ओर के ज़ीने से अपने महल के ऊपरी छत पर चढ़ने लगा।

काली शाम हो आई थी। जगतपुर के सारे किसान अपने अपने खेतों में पागल थे।

आज नयी खेती की बोआई का आखिरवाँ दिन था। जगतपुर की काफी धरती बोई जा चुकी थी।

नयी खाद, नए बीज, नए उत्साह और आशा से अधिकांश जगतपुर अपने खेतों को बोकर दूसरे दिन नया सबेरा देखने वाला था।

विजय अपने महल के दूसरे मंजिल की बालकनी पर खड़ा था, और जलती हुई आँखो से किसानों द्वारा, जगतपुर की बोई हुई धरती को देख रहा था।

वह उत्तर दिशा की ओर देख रहा था—जगतपुर की किसान आत्माएँ अपने अपने खेतों में हैं; जगतपुर की कुमारियाँ, अल्हड़-सी, मासूमियत के बोझ से दबी हुई खेतों से घर आ रही हैं, घर से खेतों में जा रही हैं।

कितनो थकी हुई भी मुस्करा के गीत गुनगुना रही हैं, कितनो के गुलाबी ओटों पर गीत स्वयं मुस्करा रहा है।

विजय बालकनी पर एकाएक सिहर उठा। उसने देखा—किशन की बहन सब्बो सर पर एक मटुका रक्खे हुए, अकेली खेत से घर लौट रही है। उसके बढ़ते हुए पैरों में अजीब मस्ती थी और उसके आगे पीछे और कोई नहीं दिखाई दे रहा था!

विजय ने ज़ोर से पुकारा—"बहादुर!"

बहादुर को पकड़ कर, विजय ने बालकनी से सब्बो की ओर इशारा किया—और कड़े स्वर में कहा-—"बहादुर! दुश्मनी में कुछ न उठा रक्खो····पकड़ लो····चुपके से इस लड़की को····और छिपा लो अपने महल में।"

बहादुर दौड़ता हुआ जीने से उतरने लगा। विजय ने पुकार कर सचेत किया—"सिपाही ले लेना,····मौका देखकर····।··सँभल के दोस्त।····"

विजय फिर छिपकर बालकनी में खड़ा हो गया।

अँधेरा छा गया था, सब्बो बेखटके नीम की झुरमुटों को पार करती हुई, घनी अमराई के पास आ रही थी। उसके ओंठ कुछ धीरे-धीरे गुनगुना रहे थे। सहसा उसके पैर और हिलते हुए ओंठ दोनों रुक गए। सब्बो देखने लगी—एक फाख्ता का जोड़ा बुरी तरह से आपस

में उड़-उड़ कर लड़ रहा था और उनके नुचते हुए मुलायम-मुलायम पर धरती पर उड़ रहे थे। सब्बो देख रही थी और सोच रही थी कि चिड़ियाँ भी क्या आपस में दुश्मनी रखती हैं ? तब क्यों इस तरह लड़ रही हैं ? क्यों नहीं वे मेरे पास आ जातीं, मैं उनके झगड़े का फैसला कर देती, लेकिन दूसरे ही क्षण, सब्बो ने देखा दोनों लड़ते हुए फाख्ते गरदन झुकाकर न जाने क्या मीठी बोल बोलने लगे थे। फाख्ती शरमाकर, हार मानती हुई, गरदन झुकाए बाईं ओर खिसकती जा रही थी, फाख्ता गर्दन पर झटके देता हुआ, प्यार से उसका पीछा कर रहा था।

उसी समय, सब्बो एकाएक चीख उठी। उसे कोई अपनी गोद में उठाए हुये न जाने कहाँ लेकर भाग रहा था। वह चीखती जाती थी, और छटपटाती जाती थीं, हाथ पैर पीट रही थी, गालियाँ सुना रही थी, किशन, गोविन्द, भाभी, भइया वग़ैरह को पुकारती जाती थी।

पर अँधेरा छाया था। रोशनी, इन्सान के वहशीपने के अँधेरे में खोगई थी। सब्बो की आर्त्त-पुकार से आसमान से बिजली भी नहीं गिर रही थी। अजीब सूनसान के साथ अँधेरा छा गया था। जगतपुर की सब आत्माएँ अपने-अपने खेतों में थीं। गोविन्द बीमार, चारपाई पर था, किशन मिट्टी से पुता हुआ अपने खेत में था। उसके सब भाई, सब काका, सब दादा बहुत दूर थे। विजय अपनी बालकनी पर उछल रहा था और नीचे की ओर भागने लगा था।

घटाटोप अँधेरा छा गया था, सब्बो बेहोश हाकर महल के एक भीतरी कमरे में बन्द कर दी गईं। उसका दिल कराह रहाथा, आँखे रो रही थीं,—और वह बेहोश थी। जैसे कोई जंगली चिड़िया आसमान में उड़ रही हो और किसी बहेलिए ने एकाएक उसे पकड़कर एक शीशे के पिंजड़े में क़ैद कर दिया हो।

सब्बो उसी तरह, सहमकर बेहोश हो गई थी। विजय, बहादुरसिंह आदि घबड़ाए हुए उसे होश में लाने की कोशिश कर रहे थे। वह

अपनी बेहोशी में भी रह रहके तड़प उठती थी, और उसके दोनो ओंठ एकाएक न जाने क्या बुदबुदाने लगते थे।

तारामती यह दृश्य देखकर, सिहर उठी, और एकाएक कह उठी—"विजय, इसे छोड़ दो, अब भी ख़ैर है !"

विजय ने आँखें लाल करके तारामती की ओर देखा। तारामती ने फिर पुकारा—"विजय !"

विजय ने गंभीरता से कहा—"तारा !··खबरदार, अगर कहीं बात फूटी··यह सब शासन संबन्धी हथकंडे हैं।"

"और यह अगर मर गई तो ?" तारामती ने दर्द से बढ़ते हुए कहा। विजय ने क्रोध से उत्तर दिया—"तब इसकी लाश, रात के सूने में, रोनी के किनारे फेंकवा दी जायगी।"

तारा की आँखो में आँसू छलक पड़े, लेकिन उसने इसे छिपा लिया और झुककर सब्बो की बेहोश आँखो के भीतर देखने लगी—जहाँ वह पुकार रही थी, 'मेरे भइया ! भाभी !!····भाभी !··गोविन्द·· गोविन्द !"

'किशन··किशन··।'

जहाँ वह रो रही थी—और इन्सानियत को बद्दुआ दे रही थी।

"सब्बो !" तारा ने धीरे से पुकारा और खुले हुए माथे पर अपना दायाँ हाथ रख दिया।

सब्बो चिल्ला उठी। उसे होश आ गई और वह झपटकर तारा से सहमकर लिपट गई—जैसे कोई बाप से बुरी तरह डरा हुआ बच्चा अपनी माँ की गोद में छिप जाता है।

लिपटते हुए सब्बो ने चीख़कर कहा—"इन्द्रा दीदी !"

"नहीं, मैं इन्द्रा नहीं··मैं तारामती हूँ।" तारा ने उत्तर दिया।

* * *

दो घंटा रात बीत जाने पर, किशन के घर सब्बो की तलाशी होने

लगी। और ढाई घंटा रात बीतते-बीतते छोटी पट्टी में खलबली मच गई। घर और जाति की इज़्ज़त, नागन की तरह तड़पकर किशन, पारो, प्रताप, मोहन, राधे, जमुना मुन्नू वग़ैरह को डसने लगी।

छोटी पट्टी, पहली किसानी की अजीब थकान से चूर चूर थी, पर सब्बो के न मिलने की ख़बर से उसकी नसों में बिजली दौड़ गई।

किशन के पाँव के नीचे की धरती गर्म होकर सिहर सी उठी। वह बेतहाशा दौड़कर, गोविन्द के पास पहुँचा और पता लगाया, सब्बो वहाँ आई ही नहीं थीं। गोविन्द का माथा ठनका वह चद्दर से अपने को ढके हुए, किशन के साथ, लाल साहब के घर की ओर बढ़ने लगा। दरवाज़े पर पहुँचकर, दोनों ने लालसाहब का अभिवादन किया। और इन्द्रा बहन से तुरन्त मिलने की प्रार्थना की।

इन्द्रा सुनते ही डर से कँप उठी, लेकिन उसने उसी क्षण कहाँ—"हिम्मत से काम लेना है! सब्बो को...हर रास्ते, कुएं, बावली, रोनी वगैरह में अभी-अभी तलाश करो!..जाओ!"

इन्द्रा चिन्ता और करुणा से वहीं खड़ी थी, और गोबिन्द किशन के साथ छोटी-पट्टी की ओर बढ़ने लगा।

उन दोनों ने अपने और साथियों को लेकर, कूएँ, बावली, पोखरे घर और रोनी की तलहटी को छान डाला, पर सब्वो न मिली।

और इस तरह सुबह होगई। जगतपुर की आत्मा डर गई, लेकिन इसके बहुत बड़े भाग ने फौरन सोचना अरम्भ कर दिया—किसी को क्या पता, यह है देवताओं का कोप, यह है हमारी क्रोधित धरती का अभिशाप। गोविन्द इसका मूल था; और जब वह ग़ल्ला लेने गया, तब लालसाहब के गोदाम में ही आग लग गई, और गोविन्द मरते मरते बचा, उसका हाथ तो झुलस ही गया। फिर, जिस दिन नये बीज की

और अब तो दैव का इतना कोप हुआ कि गाँव की एक कुमारी लड़की ही लापता हो गई। बात यह थी कि किशन जो गोविन्द का सहायक था। अब देखो पारो की क्या दशा होती है, उसे क्या दंड मिलता है, वह भी तो जगदीशपुर गई थी और नया बीज लेकर आई है।.. यह है नए बीज का क़िस्सा, यह है अभी शुरुआत। इस बीज की खेती क्या होगी, आगे-आगे क्या घटना घटती है, ईश्वर ही जाने। हम लोगों का तो ध्रुवविश्वास है कि भूखों रह-रह के, गाँव गाँव से भीख माँगे और इस तरह से पहले अपने रूठे हुए देवता को मनाएँ। उनसे क्षमा प्रार्थी हों, उन्हें किसी तरह ख़ुश करें।

* * *

गोविन्द और किशन अजीब चिन्ता और उदासी के साथ, मुखिया बद्री पांडे के बरामदे में बैठे थे। इनके साथ, दूसरी चारपाई पर लम्बरदार और हर पट्टी के अगुए (पट्टीदार) बैठे थे।

गोविन्द बार-बार सावित्री के एकाएक खोजाने की बात को सामने रख रहा था; और उसके ढूँढने, पता लगाने की बात को पंचों के सामने रखता था। लेकिन पंच रूठे हुए देवताओं की बात को बार-बार सामने रखते थे और सावित्री को भूल रहे थे।

किशन के सर में चक्कर आ रहा था। वह बार-बार जलती हुई आँखों से मुखिया, लम्बदार और पट्टीदारों को देखता था और अपनी खामोशी में झुँझलाकर सोचता था—इन बेवक़ूफों की कमजोरियाँ ही इनके देवता हैं; इनके दिमाग़ का अन्धेरापन ही; इनका झूठा विश्वास है।

वह बार-बार उचक उठता था और उसकी गर्म भुजाएँ बार-बार काँप उठती थीं, जिनमें प्रतिहिंसा की इतनी ऐंठन उठती थी कि जिससे किशन एक ही चपेटे में बैठे हुए समस्त ठीकेदारों को चूर-चर कर सकता था। उनके मस्तकों को फोड़कर, उसकी गन्दी हवा

गोविन्द पंचों के सामने मानों अपनी याचना से काँप रहा था। वह आज इतना झुका हुआ था कि जैसे कोई विधवा किसी पाप में फँसकर समाज के सामने झुक जाती है। वह लाख तरीक़ों से, पंचों को ठोस धरती पर आने के लिए आग्रह कर रहा था। वह अपना सिर मीच-मीच कर कह रहा था—"पहले हमें अपनी सब्बो को ढूँढना है; हमें जहाँ उसके होने का संदेह है, उसे देखना है। देवता और उनका रूठना, फिर उनका मनाना बाद की चीज़ है।"

लेकिन गोविन्द की एक भी नहीं चल रही थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह पागलों की भाँति जगतपुर के सामने अपना सिर पीटे—और ज़ोर ज़ोर से पुकारकर कहे—इस संसार में देवता कहीं नहीं, कोई अदृश्व वस्तु, शक्ति-देवता नहीं; धरती कभी किसी से कुपित नहीं होती। मनुष्य देवता है, मनुष्य राक्षस है। मनुष्य प्रेम करता है, मनुष्य राक्षस बनकर गाँव के गाँव खा जाता है। मैं किसी देवता अदृश्य शक्ति से नहीं सताया जा रहा हूँ। मैं किसी के कोप से नहीं बीमार पड़ा था; उसमें किसी देवता का हाथ नहीं था, उसमें दानव मनुष्य का हाथ था। एक मनुष्य ने मुझे चोट दी थी और मैं बीमार पड़ गया। किसी राक्षस मनुष्य के हाथों ने लाल साहब का बीज गोदाम फूँका था, और इसी तरह एक बदबूदार मनुष्य ने मेरी बहन को छिपाया है। अगर धरती पर, अब तक ऐसे राक्षस मनुष्य जीवित हैं, तब तक एक सब्बो नहीं, जगतपुर भर की सब्बो, देश भर की सब्बो चुराई जायँगी। सबका बरवस सुहाग लुटेगा। एक रोनी नहीं हज़ारों पवित्र नदियाँ, रोनी होकर बहेंगी।

उसी समय, किशन ने गोविन्द को जगा दिया और उसने पीड़ा भरी वाणी से तड़प कर कहा—"गोविन्द; हमें अपने पर भरोसा करना है, उठो··हम कहीं और चलें!"

गोविन्द चुपचाप किशन के साथ बरामदे से बाहर होने लगा। दोनों चुप थे, लेकिन पंच आपस में एक दूसरे को देखने लगे।

उसी समय, मुखिया ने उठते हुए कहा—"गोविन्द !..तब तुम लोगों ने क्या फैसला किया ?"

दोनों बरामदे से नीचे उतर आए। और चुपचाप आगे बढ़ रहे थे। तब तक मुखिया के स्वर के साथ लम्बरदार ने भी स्वर जोड़ा और पूछा—"आखिर क्या सोचकर जा रहे हो ?"

वे दोनों तेज़ी से बद्री पाँडे के अहाते को पार कर रहे थे। तब तक कुछ लोगों ने बढ़कर उन्हें रोक लिया और अजीव संवेदना से पूछा—"आखिर किस नतीज़े पर पहुँच कर तुम लोग यहाँ से भाग रहे हो ?"

गोविन्द और किशन लोगों के बीच में चुप खड़े थे और उनकी उदास आँखें देख रही थीं—सब्बो...राजा के राजमहल में किसी अँधेरे कमरे में छिपाई गई है। रोते-रोते उसकी आँखें सूज आई हैं। उसने अभी पानी तक अपने मुँह में नहीं डाला है। वह बार-बार रो-रो कर पुकार रही है—'गोविन्द भइया कहाँ हो !...मैं मर रही हूँ।

मेरे किशन, राजा भइया, क्यों नहीं आजाते ?...मेरा दम घुट रहा है !...मैं मरने जा रही हूँ।..

भाभी !...पारो भाभी !... कहाँ है तू ?—'

"किस नतीज़े पर आए हो गोविन्द !" मुखिया ने पूछा।

"मैं जिस नतीज़े पर आया हूँ, उसे न पूछो," गोविन्द ने अजीव गंभीरता से कहा, "मैं इस नतीज़े पर आया हूँ कि जगतपुर पर मौत की साया पड़ी है, जगतपुर सो गया है, आप लोग अपने देवताओं को मनाएँगे और इस बीच में जगतपुर में जो भी घटना घटेगी; उसे देवता के कोप को सौंप देंगे। और इधर जगतपुर का मनुष्य राक्षस इसकी आड़ में पीछे से—एक एक को खाता जायगा। कभी हमारा अन्न, कभी हमारा धन, कभी हमारी इज़्ज़त और कभी हमारी रोशनी।"

"यानी, तुम इस नतीज़े पर हो कि सब्बो को राजकुमार ने चुराया है ?" मुखिया ने बीच ही में टोका।

"जी हाँ, और हम इसके भी आगे इस नतीज़े पर हैं कि इस तरह इस गाँव की कितनी सब्बो चुरायी जाँयगीं, कितनी फसलें मारी जाँयगी, कितने घर उजड़ेंगे और जगतपुर के टीकेदार अपने देवता को मनाते फिरेंगे। देवता बारबार रूठते जाँयगे और लोग उन्हे मनाते रहेंगे।"

"तो राजकुमार ने ऐसा किया है ?"····सब ने एक स्वर में दुहराया।

"जी हाँ, राजकुमार ने ऐसा किया है," गोविन्द ने कहा,

"अब बताइए, आप लोग क्या मदद दे रहे हैं ?····क्या सोच रहे हैं ?"

"पहले इस शंका को निश्चित कर लेना चाहिए,····"मुखिया ने धीरे से कहा, "तब फिर··फिर कुछ··।"

"अच्छी बात है ! निश्चित हो जायगा !" गोविन्द ने कहा, और वह बहुत तेज़ी से किशन के साथ मुखिया के अहाते को पार कर गया।

* * *

किशन इन्द्रा के यहाँ गया, और गोबिन्द ज़ैनब के घर।

जिस समय गोविन्द ज़ैनब के घर पहुँचा; उसका आँगन सूना था। कहीं से, किसी कमरे से भी आवाज़ नहीं आ रही थी।

गोविन्द ने धीरे से ज़ैनी के कमरे में प्रवेश किया, और खड़ा का खड़ा रह गया।

ज़ैनी नीचे ईरानी क़ालीन पर, क़ाबे की ओर रुख किए हुए, इबादत करने की मुद्रा में चुपचाप बैठी थीं। और ज़ैनब उसके पलँग

पर अस्तव्यस्त औंधी लेटी थी। उसने ज़ैनी के रेशमी तकिए में इस तरह से अपने मुँह को छिपा रक्खा था जैसे किसी कुम्हलाए हुए फूल में पराग छिपा हो। तकिए के किनारे के ज़री के काम की झालर उसके बिखरे हुए बालों में छिपे थे।

गोविन्द उन दोनों को देखता रहा। दोनों से स्पष्ट रूप से दो आवाज़े आ रही थीं। ज़ैनी मानो कह रही थी—या अल्ला! तेरा घर बहुत बड़ा है? क़ायनात में तेरी वजह से रोशनी है, क्यों नहीं तू मेरी आँखों में रोशनी दे देता। तेरे दरबार में बहुत बड़ा इन्साफ है, क्यों नहीं तू मेरा इन्साफ करता?

ज़ैनब मानो कह रही थी—या क़िस्मत तूने क्या सोचा है? मुहब्बत अगर गुनाह है तो क्यों नहीं इसमें कीड़े पड़ जाते। और अगर मुहब्बत कोई पाक चीज है तो क्यों नहीं इसमें इतनी रोशनी है कि इसके इर्द गिर्द रेंगनेवाले ज़हरीले कीड़े खुद जलकर मर जाते? क्यों नहीं इसके किनारे की तमाम बालू की दीवारें गिर जातीं?

गोविन्द चुपचाप, खड़े-खड़े सोच रहा था और उन दोनों की आवाज़ों में सब्बो की कराहती हुई आवाज़ सुनने लगा।

उसकी इच्छा हुई कि वह चुपचाप लौट जाय, लेकिन उसके पैर अनायास ही ज़ैनब की ओर बढ़े। उसने झुककर धीरे से, ज़ैनब के सर पर हाथ रख दिया। ज़ैनब चौंक उठी, और उसने घबड़ाकर उठते हुए धीरे से कहा—"गोविन्द!"

गोविन्द खड़ा था और ज़ैनब उससे सटी हुई हसरत से काँप रही थी। और दोनों ने एक क्षण के लिए ज़ैनी को देखा।

ज़ैनी ने उठते हुए पुकारा—"गोविन्द!"

गोविन्द ने उत्तर दिया—"जी हाँ!"

"कहो, सब्बो का कहीं पता लगा?" ज़ैनी ने गोविन्द की ओर बढ़ते हुए पूछा।

"पता तो कहीं न लगा, लेकिन उम्मीद है कि वह राजमहल में छिपाई गई है।"

"यही मेरा भी ख़याल है गोविन्द।," ज़ैनब ने दर्द से कहा, "अगर मैं मर गई होतीं तो यह सब क्यों होता?"

"बच्चों की तरह मत बात करो ज़ैनब!...अगर यही सब सोचकर दुनियाँ पैदा होते ही मरती जाय......तब क्या कहने?...."

गोविन्द अभी कुछ और कहने जा रहा था, लेकिन ज़ैनब ने बात छीनते हुए पूछा—"अब तुम्हारी तबीयत कैसी है गोविन्द!"

"अब तो शायद बुख़ार नहीं है, और फिर तो मुझे बीमार रहने की फ़ुरसत ही कहाँ?"

ज़ैनी गोविन्द के बाँए हाथ को पकड़कर, उसकी नब्ज़ देख रही थी। ज़ैनब उसके दाएँ हाथ को पकड़कर, उसपर अपना दायाँ हाथ प्यार से फेरती हुई कह रही थी—"बहुत कमज़ोर हो गए गोविन्द!"

"हाँ तुम्हें अभी आराम करना चाहिए!" ज़ैनी ने कहा।

मैं तुम लोगों से अपने बारे में कुछ नहीं पूछने आया हूँ," गोविन्द ने गंभीरता से कहा, "मैं वह रास्ता पूछने आया हूँ जिससे सब्बो उस राज महल से निकाली जा सके। तुम लोग मुझे कुछ ऐसी रोशनी दो ताकि मैं उसके उजाले में ख़ुद चलूँ..और सब्बों को अँधेरे से बाहर लाऊँ?"

"इन्द्रा बहन से मिलकर आ रहे हो, गोविन्द!" ज़ैनब ने पूछा।

"नहीं, मैं इन्द्रा बहन से कल मिला था, किशन उनसे मिलने गया है?"

"उनसे फिर मिलना बहुत ज़रूरी है!" ज़ैनब ने कहा "क्या मैं तुम्हारे साथ इन्द्रा बहन के पास चलूँ।"

"हाँ, चलो!"

दोनों शेख़ पट्टी को पार कर जैसे पूरब की ओर मुड़े, ज़ैनब ने देखा किशन सामने से भागा चला आ रहा था।

गोविन्द और ज़ैनब को देखते ही, किशन की आँखों में आँसू भर आए।

गोविन्द ने उसे सँभालते हुए पूछा—"क्या है किशन! इतने कमज़ोर क्यों हो रहे हो?"

"गोविन्द!" किशन यह कहकर गोविन्द से लिपट गया और क्षीण स्वर में कहने लगा, "मेरी सब्बो राजकुमार के महल में है!....और कल से उसने आज तक पानी नहीं पिया है!"

"यह सब कैसे मालूम हुआ किशन!" ज़ैनब ने पूछा।

"बहन इन्द्रा ने बताया है!"

तीनों फिर ठाकुर जी के मन्दिर की ओर मुड़े। मन्दिर पर पहुँचकर, तीनों ने देखा मन्दिर सूना था। गोविन्द ने उसी क्षण, अचानक आवाज़ लगाई—"इन्द्रा बहन।"

गोविन्द की आवाज़ जैसे किसी तीखी पुकार की तरह वायुमंडल को चीर कर बहुत दूर चली गई; और फिर लौटी नहीं। इस तरह गोविन्द ने फिर दूसरी और आर्त्त आवाज़ लगाई; लगा कि मन्दिर का स्वर्ण-कलश झन्झना उठा; और आवाज़ आकाश में फैल गई।

इसी दूसरी आवाज़ को इन्द्रा बहन ने 'सीय रोवर' से सुना। यह 'सीय सरोवर' एक छोटे से पक्के पोखरे नुमा मन्दिर की चहार दीवारी से बाहर ही, उत्तर की ओर बना था। इन्द्रा, मन्दिर से लौटकर घर जाती हुई, न जाने क्यों आज 'सीय सरोवर' की सीढ़ियों पर बैठ गई थी।

इन्द्रा बहन की आवाज़ सुनते ही, तीनों 'सीय सरोवर' की ओर मुड़े, और पास पहुँचकर नीचे सीढ़ियों पर बैठ गए।

"क्या कहती हो, इन्द्रा बहन ?" गोविन्द ने दुःख से पूछा। इन्द्रा गंभीरता से सरोवर के स्थिर पानी को देख रही थी और तीनों इन्द्रा बहन को अपलक देख रहे थे।

"गोविन्द !" इन्द्रा बहन ने गंभीरता से कहा, "सब्बो के विषय में तुम्हारा खयाल सही निकला। मुझे भी मालूम हुआ है कि सब्बो राजमहल में है। और यह भी सुना है कि विजय ने यह स्कीम बाँधी है कि अगर तुम लोग राजमहल की सीमा में आते हो तो तुम पर डॉका और चोरी का इल्ज़ाम लगाया जायगा और इस तरहसे तुम लोगों को सीधे रेनुआ थाने में बंद करके भेजवा दिया जायगा।

"डाँके में फँसाकर ?" गोविन्द ने आश्चर्य से कहा।

"हाँ, हाँ झूठ फसाकर, क़ानून में खींच कर, थानेदार जो उधर मिला है !" इन्द्रा ने गोविन्द को देखते हुए कहा, "समझदारी से काम करना होगा !"

"कैसी समझदारी ?" किशन ने उफन कर पूछा

"यह बेईमानी !" गोविन्द ने तड़प कर कहा।

"ओह !हो !! ज़ैनब ने पीड़ा से साँस लिया।

एकाएक गोविन्द सीढ़ी पर खड़ा हो गया, और सूनी-सूनी आँखों से सरोवर के उस पार किसी बेनाम जगह को देखने लगा—उसे लग रहा था कि उसके सामने बहुत दूर में फैला हुआ, कोई तपता रेगिस्तान है। सब्बो उस रेगिस्तान से अकेली दौड़ रही है। उसके पैरों में पागलों की तरह बुरी तरह लड़खड़ाहट है। गोविन्द उसे पुकारता जा रहा है, वह तेज़ी से न जाने किस छोर पर भागती जा रही है, हवा का एक भारी तूफ़ान आता है। गोविन्द आँखें मूद कर एक जगह पर खड़ा हो जाता है, और वह उस खूनी तूफ़ान में सब्बो की दर्द भरी चीख़ सुनता है। तूफ़ान चला जाता है, गोविन्द आँखें खोलता है और बहुत दूर..बहुत दूर रेगिस्तान की सतह पर सब्बो

को ढूँढ़ने लपकता है—सब्बो रेगिस्तान में पट गई है, सिर्फ उसके बाल हवा में लहरा रहे हैं और उसकी चीख़ सुनाई दे रही है। गोविन्द पागलों की तरह सब्बो को पकड़ने चलता है; लेकिन सब्बो फिर भाग निकलती है—गोविन्द के पैर पत्थर के हो जाते हैं, वह गिर पड़ता है; और अपनी फटी हुई आँखों से देख रहा है, सब्बो...बहुत दूर चली गई है, दूसरे छोर पर...एक काली चींटी की तरह दिखाई दे रही है—उसके काले, बिखरे हुए बाल हवा में उड़ रहे हैं। उसका पवित्र आँचल उड़ रहा है। इसी समय ज़ैनब ने उठकर गोविन्द से पूछा—

"क्या सोच रहे हो गोविन्द !"

गोविन्द का जैसे स्वप्न टूट गया। वह वहीं फिर दोनों हाथों से आँखें बन्द करके सीढ़ी पर बैठ गया और उसे एक क्षण में लगा मानो सब्बो चिड़िया की तरह चहचहाती हुई, "गोविन्द भइया ! गोविन्द भइया !!" कहती हुई अजीब बचपन से उसकी गोद में सर रखकर चुप हो गई। और गोविन्द को वास्तव में लगा—जैसे, सर्गवमी के बदन वाली पवित्र खुशबू...यूँ...कच्चे केले की खुशबू की तरह; उसकी नाक में भर गई।

और गोविन्द एकाएक उठ पड़ा। उसने किशन में उत्साह भरा, स्वयं अपने को देखा, इन्द्रा को देखा, ज़ैनब को देखा, फिर आगे बढ़ने लगा।

किशन छाया की तरह, गोविन्द के साथ चल रहा था, ज़ैनब सहमी हुई इन्द्रा से सटी हुई खड़ी थी।

"गोविन्द ! कहाँ जा रहे हो ?" ज़ैनब ने दुःख से पुकार कर कहा।

गोविन्द किशन दोनों चुपचाप बढ़ते जा रहे थे, इन्द्रा और ज़ैनब सहमी हुई देख रहीं थीं, और सब चुप थे, चारो ओर सन्नाटा था। लगता था, अभी कोई तूफ़ान आने वाला है; आसमान खून बरसने वाला है, धरती रोने वाली है।

इन्द्रा ने बढ़कर ज़ोर से पुकारा—"गोविन्द !...गोविन्द !! कहाँ जा रहे हो ?"

गोविन्द ने दूर से घूमकर देखा, और उसके पैर रुक गए। किशन आगे बढ़ चलने के लिए मचल रहा था। लेकिन गोविन्द; अपनी ओर आती हुई ज़ैनब और इन्द्रा को देखने लगा।

"कहाँ जा रहे हो गोविन्द, मुझे भी बताओ !" इन्द्रा ने पास आकर पूछा।

गोविन्द, बहन को देखता हुआ चुप था। फिर ज़ैनब ने गोविन्द से पूछा—"कहाँ जा रहे हो, गोविन्द ?" "किशन, से पूछो···कहाँ जा रहा है मेरा दिमाग़ तो इस समय उस फूटी आँखों की तरह है जिसके सामने केवल सुर्ख़-सुर्ख़ चिनगारियाँ दिखाई देतीं हैं।"

"कहाँ जा रहे हो···किशन ?" ज़ैनब ने पूछा।

"ज़ैनब ! मैं मरने जा रहा हूँ। ··और अगर नहीं मर सका तो सब्बो को देखने जा रहा हूँ।"

उसी समय गोविन्द ने ग़ुस्से से बात काटते हुए कहा—

"नहीं, हम लोग एक इतनी बड़ी क़ब्र खोदने जा रहे हैं जिसमें····।"

"यह क्या बक रहे हो, गोविन्द ?" ज़ैनब ने बढ़कर गोविन्द के मुँह को बन्द कर दिया। और उसकी लाल-लाल आँखों को देखने लगी ; जिसमें से प्रतिशोध से इतने शोले फूट रहे थे कि ज़ैनब सिहर उठी !

"गोविन्द थोड़ी देर शान्त हो जाओ ! फिर जहाँ चाहना, जाना"।

इन्द्रा बहन ने कहा और ज़ैनब ने उसका समर्थन किया।

लेकिन गोविन्द ने घूमकर देखा, किशन चुपचाप, अकेला आगे बढ़ रहा था। उसी क्षण गोविन्द दौड़ पड़ा और किशन के साथ हो लिया।

दोनों चुपचाप, नीची पट्टी की ओर इतनी तेज़ी से बढ़ रहे थे ; मानो दोनों के कानों में सब्बो की आर्त्त पुकार आ रही थी ; मानो सब्बो कहीं से विलाप करती हुई, चीख-चीख कर··गोविन्द भइया, वीर किशन की दुहाई माँग रही थी ; और ये दोनों उस पुकार की ओर भाग रहे थे।

दोनों भागते जा रहे थे, जैसे सब्बो का आखिरी बार मुँह देखना था। दोनों बढ़ते जा रहे थे , जैसे उनके पीछे मृत्यु दौड़ लगा रही थी। दोनों चलते जा रहे थे, जैसे उनके पैर से आशंका की बेड़ी टूट गई थी।

थोड़ी देर तक ज़ैनब और इन्द्रा, चुपचाप उन्हें देखती रहीं। गोविन्द और किशन धीरे-धीरे आम के पेड़ से छिपते हुए आँखों से दूर हो गए।

ज़ैनब सिहर कर इन्द्रा बहन से लिपट गई। इन्द्रा गंभीर थी ; उसकी आँखों में इतना बड़ा समुद्र हिलोरें लेने लगा, जहाँ·· ज़ैनब ······उसकी गहराई में छिप गई थी···और गोविन्द, किशन, सब्बो तीनों सफ़ेद-सफ़ेद मछलियों की तरह उसमें तैरने लगे थे।

ज़ैनब को लग रहा था, जैसे वह किसी ऊँचे महल के दरीचे पर खड़ी है, और उसका गोविन्द सख़्त बारिश और तूफ़ान में चलता हुआ दूर··बहुत,दूर भींगता हुआ चला जा रहा है। ज़ैनब पुकार रही है..पर जैसे उसकी आवाज़ को भूखा आसमान पीता जा रहा था। वह गोविन्द की राहत के लिए दौड़ना चाहती थी; पर जैसे उसकी चाल को किसी ने क़ैद कर लिया हो !

९

इस समय राजमहल में तीन दुनिया थी, एक बाहर की, एक भीतर की; और एक ऐसे अन्धेरे की जहाँ रोशनी बुझीसी लगती थी; प्रकाश कँप-कँप कर रह जाता था; जहाँ की दीवारें तड़पतीं थीं, जहाँ की धरती आँसुओं से गीली हो जाती थी।

राजमहल की बाहरी दुनिया में रेनुआ थाने के दरोग़ा, पंडित उमाकांत चतुर्वेदी एक कमरे में बैठे थे; और बगल के कमरे में मुखिया बद्री पांडे की धर्मपत्नी अहिल्या; दरोग़ा जी के लिए भोजन तैयार कर रहीं थीं।

उसके जवान, खूबसूरत मुँह पर, दूल्हन-सा शरमाया हुआ घूँघट बल खा रहा था। उसके सहमे हुए हाथ जल्दी-जल्दी भोजन तैयार कर रहे थे और उसका भोला दिमाग़ सोच रहा था कि क्या मैं किसी भँड़ुए की नौकरानी हूँ, जो इनके लिए खाना बनाऊँ !···क्यों मैं राज-महल में दरोग़ा-फरोग़ा के लिए भोजन बनाने आई ?···पंडित जी ने मुझे इतना विवश किया, नहीं तो मेरी छाया भी यहाँ न आती !

इस भाँति तमाम बच्चों की तरह बातें सोचते-सोचते अहिल्या ने भोजन तैयार कर लिया; और वह अपने आँचल से पसीने से तर मुँह को पोंछती हुई चौके में खड़ी हो गई। और उसने घूँघट उठाकर, कुछ तिरछी आँखों से सहम कर दूसरे कमरे में देखा। दरोग़ा साहब कुछ पी रहे थे और फटी-फटी आँखों से अपने खाली शीशे के गिलास को देख रहे थे। अहिल्या ने सोचा कि अब वह अपने घर चली जाय; दरोग़ा स्वयं खाना खा ही लेगा।

अहिल्या के सहमे हुए पैर ज्यों ही बाहरी बरामदे की ओर बढ़े,

दरोग़ा ने आवाज़ लगाई—"ओ जी!···मु की दूल्हन! खाना खाने आऊँ?"

अहिल्या दरवाज़े पर खड़ी होकर चुप थी। और दरोग़ा टहलता हुआ कमरे में चला आया। अहिल्या को चुप,दरवाज़े पर खड़ी देख कर, उसने कहा—"दूल्हन साहब! मुझे अब खाना खिला दीजिए!"

अहिल्या को लगा, जैसे किसी ने उसके भरे हुए मुँह पर चाँटा मार दिया हो! उसका मुँह सुर्ख़ हो गया। उसने कुछ कहना चाहा; पर जैसे किसी ने उसके कान में धीरे से कह दिया हो—'चुप रहो!··· रेनू थाने के दरोग़ा जी हैं!'

अहिल्या के सर का घूँघट और नीचे खिसक आया और वह अपनी ख़ामोशी में धीरे से खाना परोसने लगी। थाली लगाकर, उसने आसन के पास रख दिया और सिकुड़ कर चौके में बैठ गई।

दूसरे क्षण अहिल्या ने कनखियों से देखा—दरोग़ा, पंडित उमाकांत चतुर्वेदी बिना हाथ-पैर धोए, कपड़ा उतारे भूखे बैल की तरह खाना खाने लगे। अहिल्या आश्चर्य से काँप गई और वह अपने मुखिया की बातों को सोचने लगी; पंडित जी ने उससे कहा था—"दरोग़ा—पंडित उमाकान्त जी सबसे ऊँचे गोत्र के चतुर्वेदी हैं! वे किसी के हाथ का छुआ हुआ खाना कभी नहीं खाते, सिर्फ़ अपने परिवार का आज तुम्हारे हाथ का खाना खाने के लिए तैयार हो गए हैं। खाना खाने के पहले स्नान करते हैं, अन्नपूर्णा देवी की पूजा करते हैं। इतने पवित्र और आचार से रहने वाले व्यक्ति अब इस संसार में कम रह गए हैं!"

अहिल्या सोचती जा रह थी। दरोग़ा के प्रति, पंडित जी की कही हुई बातें आसमान में तेज़ी से दौड़ते हुए बादलों की भाँति; अहिल्या के दिमाग़ में उड़ रहीं थीं। वह हैरान थी। और जब वह अपनी कनखियों से भूखे कुत्ते की तरह खाना खाते हुए दरोग़ा को देख लेती तो उसे लगता कि उसके दिमाग़ में कोई आँधी आगई है

और उसके दिमागी आसमान में पंडित की बातों के बादल न जाने कहाँ उड़ गए हैं।

अहिल्या ने थककर अपने सर को घुटने पर रख लिया। वह पसीने से तर थी। वह नहा-धोकर चौके में खाना बनाने आई थी, उसके शरीर पर केवल एक साड़ी के अलावा और कुछ न था; साड़ी ही उसका पेटीकोट था, साड़ी ही उसकी साड़ी थी, साड़ी ही उसका ब्लाउज़ था, साड़ी ही उसके सर की ओढ़नी थी; उसके स्त्रीत्व की घूँघट थी। और यह सब साड़ी पसीने से भींग रही थी। उसके पीठ पर तो इस तरह चिपक गई थी मान उसकी पीठ खुल गयी है।

अहिल्या लज्जा और चिन्ता से सिकुड़ी जा रही थी और सोच रही थी—"यह बन्दर, न जाने कब तक खाना खायेगा?...बनता था··चतुर्वेदी··दुनिया का ढोंगी!··खाना खा रहा है··तुर्कों की तरह! छिः··छिः··"

"पंडिताइन! ज़रा मेरी ओर तो देखो!" खाना ख़त्म करते हुए दरोग़ा ने कहा!

अहिल्या हिली तक नहीं!

"तुम्हें देखने ही के लिए तो मैंने इतनी तपस्या की है!" दरोग़ा ने थाली में ही हाथ मुँह धोते हुए कहा।

अहिल्या सिहर उठी, पर उसमें गति न आई।

"कुछ तो बोलो··मेरी दूल्हन!" दरोग़ा ने चौके में बढ़कर उसके सर के घूँघट को पीठ की ओर खींच दिया। अहिल्या चीख़ उठी। चतुर्वेदी जी खिलखिला पड़े।

अहिल्या के पाँव की धरती शोले की तरह गर्म हो उठी। आँखों में क्रोध की लाली फिर गई। वह वेग से उठ पड़ी और तेज़ी से चौके से बाहर भागने लगी।

दरोग़ा ने बढ़कर उसे अपने बाहुओं में जकड़ लिया और मुखिया की अहिल्या चिल्लाती हुई दरोग़ा के दामन में छटपटाने लगी।

उसका कब का ढँका हुआ मुँह खुल गया था। भींगी हुई साड़ी मानो कहीं छुट कर गिर गई थी अहिल्या दरोग़ा के दामन में छटपटा रही थी और उससे अपने को बचाने क लिए लड़ाई कर रही थी। दरोग़ा के बदबूदार मुँह पर न जाने कितने, अनगिनत चाँटे मार चुकी थी।

पर कुछ नहीं हुआ। उसने लाख गुहार मचाई; लाख चीखी, लाखों आवाज़ें लगाईं पर जैसे वह किसी वीरान जंगल में, किसी भूखे भेड़िये के चंगुल में फँस गई थी—जहाँ उसे बचाने वाला कोई न था। जैसे वह जानबूझ कर शिकार में फाँसी गई थी, जैसे उस शिकार में उसके पति—मुखिया साहब और राजकुमार वगैरह का हाथ था।

अहिल्या अब तक अपनी रक्षा के लिए लड़ रही थी, पर दूसरे ही क्षण दरोग़ा ने क्रोध में आकर अहिल्या को उठा लिया और कमरे में पलँग पर फ़ेंक दिया—और सिरहाने से पिस्तौल उठाकर उसके सामने तान दिया, लेकिन अहिल्या ने न जाने कितनी पतिव्रता स्त्रियों की इस तरह की कहानियाँ सुन रक्खी थी और उसी के सहारे वह अब तक लड़ रही थी।

अहिल्या पलँग पर पागलों की तरह आधी उठी हुई—सामने—बिल्कुल सामने मुँह के पास दरोग़ा की तनी हुई पिस्तौल देख रही थी। दरोग़ा उसके खूबसूरत मुँह को ललचाई हुई आँखों से देखता हुआ बड़बड़ा रहा था—"मेरी बात मान जाओ··नहीं तो··। तुम्हारे मुखिया पंडित से क्या मैं खराब हूँ··उसकी उम्र साठ साल की है, मैं तो सिर्फ चालीस साल का हूँ और फिर तुम्हारी जात से ऊ ची जात और पवित्र गोत्र का भी तो हूँ···मैं दारोग़ा हूँ···और तुम मेरे हल्के की दूल्हन हो··तुम्हारे पंडित जी तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे··बहुत ख़ुश होंगे।··"

दरोगा बड़बड़ाता जा रहा था और उसके हाथ में तनी हुई पिस्तौल धीरे-धीरे काँप रही थी।

उसी समय अहिल्या की आत्मा में न जाने कहाँ से लहर आई। उसने खींच कर, अपने पूरे बल से दरोगा के मुँह पर एक चाँटा मारा और स्वयं चीख़ उठी। वह इतनी तीखी चीख़ थी; जो शायद बड़ी पट्टी तक पहुँच कर लौट आई हो। वह ऐसी करुणा की चीख़ थी; जो शायद बाहर चक्कर काट कर स्वयं हवा में खो गई हो।

लेकिन उस चीख़ को सुनने वाला वहाँ कोई इन्सान न था; इसलिए चीख़ मर गई और चीखने वाली भी बेहोश कर दी गई; और जहाँ से वह चीख़ लहर की तरह उठ रही थी; वह स्थल मर गया···वहाँ का ख़ून मर गया; वहाँ की नसें टूट गईं।

और अहिल्या मर गई; पत्थर न हुई क्योंकि उसका पति गाँव का मुखिया था···बद्री पाँडे जिसका नाम था, जो राजा का आदमी, चापलूस था,—और सिपाही, दरोगा का कुत्ता था।

और अहिल्या मर गई···पत्थर न हुई क्योंकि इसका पति कोई गौतम ऋषि नहीं था। वह श्राप नहीं दे सकता था···वह तो आशीर्वाद देने वाला था। इसलिए अहिल्या मर गई; पत्थर न हुई; क्योंकि अब फिर इस धरती पर राम का अवतार नहीं होगा, विश्वामित्र का आश्रम नहीं बनेगा; राम उस आश्रम में राक्षसों को मारने नहीं आएँगे। जनकपुर में अब सीता स्वयम्बर नहीं रचा जायगा, जहाँ जाते समय राम का पैर अहिल्या के पत्थरों पर पड़ता···और अहिल्या पत्थर से फिर ऋषि पत्नी हो जाती। इसलिए अहिल्या मर गई, पत्थर न हुई; क्योंकि मर कर वह जीती रहेगी और जीती हुई रोती रहेगी और उसकी रोती आखें धरती पर इतनी कहानियाँ सुनाएँगी कि सोए हुए राम को भी शरम आएगी। तब अहिल्या की शव पर राम के आँसू गिरेंगे···

सदियों तक गिरते रहेंगे··फिर अहिल्या जी जायगी और तब शायद राम को कहीं माफ़ी मिलेगी !

* * *

राजमहल की भीतरी दुनिया में एक तरफ़ हिरन का गोश्त पक रहा था, दूसरी ओर शराब की बोतलें रक्खी हुई थीं; तीसरी ओर शंकर और पार्वती की मूर्तियाँ रक्खी हुई थीं, चौथी ओर विजय लेटा हुआ था और उसके किनारे-किनारे बहादुर सिंह, जानकी दास, दीवान सिंह आदि बैठे थे ।

विजय ने उठकर, अपनी थकी हुई ज़बान से कहा—"बहादुर, मुझे भूख लगी है ! गोश्त तैयार हुआ कि नहीं !" और यह कह कर वह फिर लेट गया ।

बहादुर सिंह जल्दी-जल्दी गोश्त के शोरवे को देखने लगा और उसमें से एक छोटी सी गोश्त की बोटी निकाल कर अपने दाँतो से खींचने लगा। राजकुमार विजय फिर उठा और उसने गिरती हुई वाणी से कहा "बहादुर सिंह !···मुझे थकान मालूम हो रही है; लग रहा है कि मेरी नसें ख़ून से सूख गईं हैं··मुझे तब तक थोड़ी सी शराब पिला दो !"

बहादुर सिंह ने झट से विजय को थोड़ी सी शराब पिला दी, और विजय मुस्कारता हुआ फिर लेट गया।

पकते हुए गोश्त से भीनी-भीनी ख़ुशबूदार बदबू निकल रही थी; खुली हुई शराब की बोतल से मादक गंध बह रही थी; और दूर शिव पार्वती की मूर्तियाँ मुस्करा रहीं थीं ।

थोड़ी देर के बाद राजकुमार विजय फिर उठा और खड़ा होकर कहने लगा—"अब मैं खाना खाऊँगा !"

खाना परोसा गया। विजय जल्दी खाना खा रहा था और सोचता जा रहा था—साले दुश्मनो की ख़ूब हार हुई—धन, दौलत, इज़्ज़त

सब लूटी। अब कोई सामने आने वाला नहीं। सब्बो, सब्बो बहुत बड़ी, किशन और गोविन्द की लाड़ली बनी थी, अब साले दोनों की कमर टूटी। खूब मस्ती रही···हाँ··हाँ··अब ज़ैनब का शिकार इसके बाद ही करता हूँ, फिर गोविन्द में क्या रहेगा ? और जब वह नहीं तो और सब कीड़ों की तरह आप ही आप मर जाएँगे।

विजय जल्दी से भोजन समाप्त कर चुका और चुपके से कई प्याले पी गया। फिर आवेश में उठकर शंकर और पार्वती की मूर्ति के पास घुटने टेक कर बैठ गया और स्फुट स्वर में कहने लगा, "भगवान ! आप मेरे सहायक हैं !··आज तक आपने जिस तरह मेरी सहायता की है, उसी तरह और करते रहिएगा। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, और किया है, केवल आप के सम्मान की रक्षा के लिए किया है। ये आततायी देवस्थान को भी दूषित करते हुए न सहमे !···· शंकर जी !··आप मुझे बल दें !··मेरे सारे सपने पूरे हों··मैं··आप के ऊपर एक शिवशाला बनवाऊँगा··पार्वती जी !··आप मेरी इच्छाओं की पूरी होने का आशीर्वाद दें··मैं आपका दास हूँ; भिखारी हूँ··।'

यह कह कर··राजकुमार अपनी मादक गति से राजमहल की तीसरी दुनिया की ओर, बढ़ने लगा—उस भीतर की दुनिया की ओर; जहाँ रोशनी बुझी-सी लगती थी, जहाँ की दीवारें तड़पतीं थीं।

लेकिन राजकुमार विजय ने जैसे अपना दायाँ क़दम आगे बढ़ाना चाहा, उसका पैर लड़खड़ा गया और वह शिव और पार्वती की मूर्तियों को चपेटा देता हुआ गिर पड़ा।

मूर्तियाँ पृथ्वी पर गिर पड़ीं और राजकुमार दूसरे ही क्षण उठकर मस्ती से हँसने लगा।

वह मूर्तियों को देखता जा रहा था और गोविन्द, ज़ैनब, किशन, सब्ब ो वगैरह को गालियाँ देता जा रहा था।

पर मूर्तियाँ चुप थीं—क्योंकि पत्थर की जो ठहरीं। शिव को क्रोध नहीं आया, शिवजी की ज़बान न खुली, उनका तीसरा नेत्र मानो सदा के लिए मस्तक में घुस गया था। पार्वती भी चुप थीं। उन्होंने भी अपने शिव से कुछ उलाहना न दिया। लगता था कि इन मूर्तियों में उस शिव की आत्मा मर चुकी थी, जिन्होंने संसार कल्याणार्थ विष-पान किया था, जिन्होंने नारी की मर्यादा रखने के लिए सती के शव को अपने कंधे पर लादा । तरह तीनों लोकों में फिरते रहे।

वे मूर्तियाँ पत्थर की थीं; उसमें न शिव थे, न पार्वती; इसीलिए मूर्तियाँ हँस रहीं थीं और उनके सामने झूठ-सच पूजा, विनती करने वाले इन्सान से कह रहीं थीं—"नादान··मूर्ख··तूने हाथ भी जोड़ा तो पत्थर के सामने! पगले! झूठ भी बोला, पाप भी छिपाया तो पत्थर के सामने, जिसमें न वाणी है, न दृष्टि।"

* * *

तीसरी दुनियाँ में, जहाँ रोशनी बुझी-सी लगती थी, जहाँ की की दीवारें तड़पतीं थीं, जहाँ की धरती आँसुओं से गीली हो गई थी—वह एक भीतरी कमरा था; जिसका दरवाज़ा बाहर से बंद था और भीतर कमरे में अकेली, सब्बो फ़र्श पर औंधी लेटी पड़ी थी। उसने अपने दोनों बढ़े हुए बाहुओं से मुँह को छिपा लिया था; और उसके ऊपर, उसके सर के बिखरे हुए बाल, काली घटा-सी ऊपर छा गए थे। लगता था कि सब्बो सो गयी है; और उसे नींद आ गई है—ऐसी नींद जो कराहती रहती है, ऐसी नींद जो अपनी ख़ामोशी में रोती रहती है, ऐसी नींद जिसकी कोई सुबह नहीं। लगता था कि सब्बो ने अपने मुँह को संसार से छिपा लिया था, बुरी तरह डर कर छिपा लिया था जिससे कोई कहीं उसके मुँह की कालिख न देख ले! वह कालिख, जो कभी धुल नहीं सकती, चाहे रोनी नदी का तमाम पानी ही क्यों न

खत्म कर दिया जाय। वह कालिख जिसमें से बदबू निकल रही थी और भोली सब्बो का दम घुटा रही थी, वह कालिख जिसमें से इतना अंधकार फूट रहा था कि सारी दुनिया की रोशनी मद्धिम पड़ जाती; इसीलिए सब्बो बहुत सावधानी से अपने मुँह को ढके थी, कि कहीं उस कालिख में चिनगारी न फूट जाय, शोले न उड़ने लगें—नहीं तो राजमहल क्या, नीची पट्टी क्या, छोटी पट्टी और बड़ी पट्टी क्या सारा जगतपुर जल जायगा; धरती फट जायगी।

सहसा कमरे के बाहर, विजय की आवाज़ सुनाई दी और एकाएक नींद में बेहोश सोई हुई सब्बो चीखकर सिकुड़ गई और इस तरह अपने को जकड़कर सिकुड़ गई, जैसे क़ीमती शीशे पर पानी की खिंची हुई रेखा अंत में एक गोल बूँद बन जाती है। इस तरह विजय की आवाज़ सुनते ही सब्बो बूँद बन गई; ऐसी बूँद जिसमें अब भाप बनने की ताक़त न थी, ऐसी बूँद जो बादल नहीं बन सकती थी, जो धरती पर बरस नहीं सकती थी; बल्कि वह ऐसी बूँद थी जो धरती में खो जाना चाहती थी जिससे धरती के गर्भ में जाकर, हमेशा—इस धरती पर आने वालों को कहानियाँ सुनाती; जो धरती के गर्भ में जाकर ज्वालामुखी पहाड़ बनती और एक दिन इस धरती पर इतना बड़ा भूकंम्प लाती कि सब मर जाते, आदमी, औरत, चाँद, सूरज आसमान, धरती सब। फिर एक नया संसार बनता जिसका आसमान नया होता, नया चाँद और नया सूरज होता, नयी धरती होती, नए इन्सान होते!

विजय अब चुपके से दरवाज़ा खोलने लगा, सब्बो अबकी बार ज़ोर से चीखकर फिर फ़र्श पर फैल गई।

उस क्षण बगल के कमरे से आती हुई तारामती, विजय पर झुँझला उठी और उसे उपेक्षा से दूर करती हुई, सब्बो के कमरे में घुस गई और भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

सब्बो जैसे फिर सो गई, तारामती ने धीरे से आकर उसके

खुले हुए सर पर अपना दायाँ हाथ रख दिया और प्यार से पुकारा "सावित्री !"

सब्बो को लगा जैसे किसी ने उसका फिर से गला दबोच दिया हो। वह भीतर ही भीतर कराह उठी, जैसे मौत के समय कोई जीवधारी कराहता है; जिस कराह में पीड़ा होती है, जिसमें एक दबी हुई फ़रियाद की तड़पन होती है, जिसमें खामोश हसरत की दबी हुई इतनी चिनगारियाँ होती हैं कि सुनने वाला इन्सान भी करुणा से अभिभूत हो जाता है।

तारामती ने प्यार से चाहा कि वह सावित्री को उठाकर पलँग पर सुला दे और उसकी फूली हुई आँखों में रोते हुए आँसुओं को स्वयं पी ले और उसके सूखे हुए, जलते ओंठों को मुस्कराहट लुटा दे।

इसलिए तारामती ने प्यार से झुककर, सावित्री के फैले हुए बाहुओं में हाथ डालकर उठाना चाहा पर जैसे सावित्री अडिग थी, अडोल थी, जैसे वह धरती हो गई थी, जिसे कोई नहीं उठा सकता, जिसे कोई अपने दामन में नहीं भर सकता।

तारामती की आँखें आँसुओं से डबडबा आईं और उसने अपूर्व पीड़ा से सावित्री को पुकारा। इस बार सावित्री फूल की नन्ही कली-सी हल्की हो गई—जैसे हवा की मुस्कराहट, फूल की खुशबू, और वह चीखकर तारामती के दामन में छिप गई और बुरी तरह से, उसने अपने मुँह को तारामती के सीने में छिपा लिया, और कराहती हुई कहने लगी—"उससे कह दो कि वह मेरी बची हुई शरीर को खा ले, उससे कह दो कि मेरा कोई चिन्ह न छूटे। कहीं मुझे, मेरा गोविन्द भइया न देखे, कहीं किशन बाबू की आँखें न मुझ पर पड़ें, कहीं जगतपुर न मुझे देख ले; मुझे मेरी पारो भाभी न देख ले !"

तारामती की आँखें रोने लगीं थीं, और वह सब्बो को अपने दामन में छिपाए हुए पलँग पर बैठी थी, और उसके पीठ पर माँ की तरह मुलायम हाथ को धीरे-धीरे फेर रही थी।

"मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकती हूँ सब्बो," तारामती ने रुँधे गले से कहा, "बताओ..जो मेरे लायक़ हो..मेरी पहुँच में हो...मैं उसे करूँगी सब्बो...बोलो!"

"करोगी!" सब्बो ने चीखकर कहा और उसके गले को सख़्ती से पकड़कर, तारामती को देखने लगी। चार आँखें...एक दूसरे को देख रहीं थीं—दो आँखें सब्बो की—जिसमें अब आँसू सूख गए थे, जिसमें अब कराह बाक़ी थी, शोलों की बुझी हुई राख बाक़ी थी, सिर्फ़ मौत की पनाह बाक़ी थी।

दो आ खें; तारामती की, जिसमें ज़िन्दगी की रंगीनियाँ उभरीं थीं; इन्द्र धनुष की तरह सातो रंग पुतलियों में तैर रहे थे और उसके बीच में दया और करुणा के गर्म-गर्म आँसू उमड़ आए थे।

पहली दो आँखों में अंधकार था, इन दो आँखों में रोशनी थी। पर चारो आँखें बहुत देर तक एक-दूसरे को देखती रहीं थी। लेकिन दूसरी की रोशनी पहली के अँधेरे में खो जाने वाली थी, अँधेरे के सामने रोशनी बुझी-सी लगती थी।

"जो मैं कहूँ! करोगी!!" सब्बो ने तारामत से पागलों की तरह पूछा।

"मेरी ताक़त में होगा, तो मैं ज़रूर करूँगी।"

"मुझे आज रात को, किसी तरह महल से निकाल देना!"

"बहुत अच्छा!"

* * *

उसी समय तीनों दुनिया के बाहर, यानी राजमहल के सामने, दरवाज़े पर आदमियों का कोलाहल उभरने लगा।

गोविन्द और किशन दोनों मुट्ठियों को हवा में कसते हुए चीख़ रहे थे।

"हमें हमारी सब्बो चाहिए!"

"हमें हमारी बहन चाहिए!"

"हमें हमारी इज़्ज़त चाहिए !"

और इस कराहती हुई चीख़ में, जगतपुर के नौजवानों की ललकार गूँज रही थी। लगता था समूचा राजमहल इस उठती हुई आवाज़ से गिरकर एक टीला बन जायगा!

उसी समय दरोग़ा जी हाथ में पिस्तौल सँभाले हुए बरामदे में आकर खड़े हो गए और उन्होंने गरजते हुए कहा—"अब अगर आगे बढ़ोगे तो गोली मार दूँगा—अब अगर शोर किया तो जेलों में बंद करवा दूँगा।"

"हम सबके लिए तैयार हैं!" गोविन्द ने सब को चुप कराते हुए कहा।

"नहीं, मैं तो सिर्फ़ मरने पर तुला हूँ!" किशन ने कहा।

"आख़िर, तुम लोगों का यह पागलपन क्यों··क्या बात है?···कुछ तो कहो?" दरोग़ा ने कहा।

गोविन्द ने ग़ुस्से से कहा —"कितनी बार कहें!··क्या आप को नहीं मालुम? हमें हमारी बहन चाहिए।"

"कैसी बहन?" भीतर से आते हुए राजकुमार विजय ने कहा।

"हमारी बहन!" सब ने सम्मिलित स्वर में क्रोध से चीख़ते हुए कहा।

"कहाँ है, तुम्हारी बहन?" दरोग़ा ने पूछा।

"इसी राजमहल में!" किशन ने कहा।

"इसका सबूत····झूठे कहीं के?" विजय ने कहा

"हम तो झूठे ही है!" गोविन्द ने दाँत पीसते हुए कहा, "इसका सबूत राजमहल के दीवारों से लो!··इस कराहती हुई हवा ले लो, जो भीतर से बाहर आ रही है!"

गोविन्द ने यह कहकर एक बार दरोगा को देखा फिर जलती हुई आँखों से विजय को देखा और उसके पैर आगे महल के दरवाज़े की ओर बढ़ने लगे।

"कहाँ बढ़ रहे हो ?" दरोग़ा ने डाँटते हुए पूछा !

"मैं अपनी बहन को लाने जा रहा हूँ" गोविन्द ने कहा, "तुम्हें सबूत चाहिए न, मैं अपनी बहन को अभी—तुम्हारे सामने खड़ा करता हूँ।"

"कुछ नहीं, दरोगा जी !····ये सब डाका और बल्वा करने आए हैं, " विजय ने कहा।

"जी हाँ, मुझे सब मालुम है, यह अच्छा बहाना ढूँढ़ा है; मैं अभी इन पर ३६० (डाका) और १४६ (बल्वा) दफ़े की कार्रवाई करता हूँ—और सबको जेल भेजता हूँ !" दरोग़ा ने कहा।

कुछ देर के लिए वातावरण में शान्ति छा गई; और गोविन्द ने देखा बग़ल के कमरे से मुखिया की धर्मपत्नी, अहिल्या रोती हुई निकल रही है, आज उसके मुँह पर दूल्हनसा घूँघट नहीं है, लगता है किसी डाकू ने बरबस उसके मस्तक से यह शोभा छीनकर आग में डाल दी हो।

अहिल्या एक अपूर्व विश्वास से बढ़ती हुई गोविन्द के सामने आकर खड़ी हो गई। गोविन्द ने अहिल्या को देखा और अहिल्या ने गोविन्द को देख कर, जगतपुरवालों को देखा और उसकी आँखों से दो निर्दोष आँसू नीचे ढुलक गए फिर अहिल्या ने रोकर कहा—"सब्बो इसी राजमहल के भीतर छिपायी गई है और ये कुत्ते उसकी रखवाली में खड़े हैं।"

दरोग़ा दाँत पीसता हुआ अहिल्या की ओर बढ़ा और अहिल्या चीखकर गोविन्द के पीछे छिप गई और दूसरे क्षण नौजवानों के बीच में चली गई।

गोविन्द और किशन उसी क्षण एक अजीब वेग से राजमहल में प्रवेश करने के लिए दौड़ पड़े। उसी समय राजा के सिपाही उन पर टूट पड़े।

*   *   *

काफ़ी दिन ढल चुका था, शाम होने वाली थी। गोविन्द और किशन दरोग़ा और सिपाहियों के साथ रेनुआ थाने के रास्ते पर चल रहे थे।

गोविन्द और किशन के एक-एक हाथ आपस में रस्सी से बँधे हुए थे और दोनों चुपचाप एक सिपाही के पीछे-पीछे चल रहे थे।

किशन के मस्तक पर लाठी की चोट, अजीब सूजन के साथ स्पष्ट थी। गोविन्द के दाएँ पैर में चोट आ गई थी, वह लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे चल रहा था।

शाम होने वाली थी और लगता था कि अब आसमान रोने वाला है, शाम होने वाली थी और लगता था कि रेनुआ थाने के रास्ते पर चलने वालों के पीछे जगतपुर की आत्माएँ बन्दी होकर पीछे-पीछे चल रहीं हैं। बहुत दूर से, कहीं सब्बो की पुकार आ रही है, कहीं से जैनब खामोश होकर देख रही है, और कहीं दूर से, पारो चीखती हुई देवताओं की दुहाई दे रही है

सब रास्ते पर अपूर्व खामोशी में चल रहे थे, कोई मुड़कर पीछे जगतपुर को नहीं देख रहा था—सब चल रहे थे, लगता था कि किनारे-किनारे गोविन्द और किशन की दुनिया भी चल रही है।

सहसा पीछे-से किसी ने दौड़ते हुए पुकारा। गोविन्द ने घूमकर देखा—अहिल्या पागलों की तरह दौड़ती हुई चली आ रही है—उसके सर पर घूँघट नहीं था। गोविन्द एक क्षण के लिए रुका, लेकिन फिर उसे आगे बढ़ना पड़ा। पुकार फिर आई, और उस पुकार में, इस बार इतना बल था कि सब रुक गए—जैसे रास्ता ही समाप्त हो गया।

अहिल्या दौड़ती हुई आकर, टूटे हुए पेड़ की तरह दरोग़ा के पैरों पर गिर पड़ी और अजीब वेदना से भीख मागने लगी—"दरोग़ा बाबू! ···गोविन्द और किशन बाबू को छोड़ दीजिए!"

सब चुप खड़े थे और अपलक अहिल्या को देख रहे थे। और

एक लम्बे क्षण के लिए, इतनी बड़ी खामोशी छा गई जैसे कोई बहुत बड़ी घटना घटी हो।

अहिल्या ने, विश्वास के साथ बढ़कर सिपाही के हाथ से रस्सी खींच ली। सिपाही ने झुँझलाते हुए अहिल्या पर आक्रमण करना चाहा, पर अब अहिल्या गोविन्द के पीछे खड़ी थी और दरोगा अब तक चुप था, जैसे सोच रहा था कि फिर मरूँ या फिर जीऊँ।

"मैं कहीं भाग नहीं रहा हूँ!" गोविन्द ने बढ़ते हुए सिपाही को दूर करते हुए कहा।

"सरकार ! क्या हुक्म है ?" एक सिपाही ने दरोगा से पूछा—

दरोगा अब भी चुप था, जैसे उसकी वाणी उसका साथ छोड़ चुकी थी।

"सरकार। क्या हुक्म है ?" सिपाही ने फिर पूछा।

"क्या पूछ रहे हो ?" दरोगा ने कहा, "ओह !···अहिल्या !··· तुम ·· ···"

दरोगा फिर चुप हो गया और अहिल्या अब तक गोविन्द और किशन के हाथों को मुक्त कर चुकी थी। सिपाही ने घबड़ा कर पूछा— "हुज़ूर ! क्या हुक्म है ?"

"जैसा अहिल्या का हुक्म हो !" दरोगा ने कहा—

"अहिल्या का हुक्म !···हुज़ूर !! लेकिन मुल्ज़िम तो, डाके और बल्वे के हैं !"

"ठीक कहते हो, इन्हें फाँसी की सज़ा मिलनी चाहिए न !"

अहिल्या गिड़गिड़ाती हुई दरोगा के सामने खड़ी हो गई, दरोगा फिर चुप हो गया और उसकी आँखें जैसे अहिल्या की नारी की आग में फूटकर बह गईं।

फिर दरोगा ने गंभीरता से कहा—"छोड़ दो गोविन्द और किशन को !···क्यों अहिल्या, खुश हो न !··"

लेकिन जैसे अहिल्या ने कुछ और न सुना—वह गोविन्द और किशन के हाथों को पकड़कर आगे बढ़ने लगी। पर गोविन्द ने सब सुना, दरोगा की खामोशी को चीरता हुआ उसकी आत्मा की आवाज़ तक सुना। और वह अपने में इस तरह तड़प उठा, जैसे तूफ़ानी लहरों पर किरन तड़प उठती है।

अहिल्या, गोविन्द और किशन को साथ लेकर जगतपुर की राह पर बढ़ने लगी और दरोगा रेनुआ थाने की ओर।

शाम हो गई, सामने, रास्ते पर एक आम का वृक्ष, बहुत बड़ा और घनी छाया लिए हुए खड़ा था।

गोविन्द के पैर की चोट, अब उसे बहुत तकलीफ़ दे रही थी और वहाँ से जगतपुर अभी चार मील दूर था।

गोविन्द विवश होकर, उसी आम के वृक्ष तले बैठ गया और अपलक अहिल्या और किशन को देखने लगा।

गोविन्द के उठते-उठते रात हो आई और तीनों जैसे-जैसे जगतपुर के रास्ते पर बढ़ रहे थे रात खामोश होने लगी थी।

*　　　*　　　*

जगतपुर के उत्तरी किनारे पर, रानी नदी एक अजीब अदा से कुछ तिरछी होकर, बड़ी तेज़ बहती थी। इसके कगार सदैव हरी-हरी घास और मौसमी फूलों से सजे रहते थे। इसी से सटकर, कुछ ऊँचाई पर एक अंधे साधु की पर्ण कुटी थी। वह इस समय निर्द्वन्द्व मस्ती में अपनी सारंगी पर एक भजन गा रहा था—

"जा दिन मन पंछी उड़ि जइहें।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरी जइहें।
या देही कौ गर्व न करिए, स्यार-काग-गिध खइहें॥"

रोनी की कगार से कुछ दूर हट कर गोविन्द, किशन और अहिल्या तीनों धीरे-धीरे गाँव की ओर बढ़ रहे थे और गोविन्द बहुत दूर से सूरदास के संगीतमय, बहते हुए पद को सुनता आ रहा था--
"जा दिन मन पंछी उड़ि जइहें।"

गोविन्द लँगड़ाता हुआ बढ़ता जा रहा था, पर उसकी वाणी अपने अन्तर्लोक में गुनगुनाती जा रही थी—"जा दिन मन पंछी उड़ि जइहें।"

और उसका मन सोच रहा था कि यही सूरदास का पद उसके बी०ए० की कक्षाओं में बहुत आवश्यक, महत्वपूर्ण माना गया था।

गोविन्द लँगड़ाता हुआ, अनायास, न जाने किस आकर्षण से अपना रास्ता छोड़कर, रोनी के ऊँचे कगार के मैदान की ओर बढ़ने लगा। अंधा साधु, सूरदास का भजन गाता जा रहा था, गोविन्द उसकी ओर बरबस खिंचकर बढ़ता जा रहा था और उसके मन में इलाहाबाद युनिवर्सिटी का सजीव चित्र उतरता जा रहा था—जहां से उसने बी०ए० किया था, जहाँ से अब एम०ए० करने का वह अनोखा, स्वर्णिम स्वप्न देख रहा है।

गोविन्द बढ़ रहा था और उसकी आँखें देख रहीं थीं—इलाहाबाद युनिवर्सिटी—पीली-पीली इमारतें, ऊँची-ऊँची पत्थर की इमारतें, शानदार सिनेट हाउस, युनियन हाल, लाइब्रेरी, इतिहास विभाग, मुस्करा कर दो तरफ फैली हुई नन्ही सी युनिवर्सिटी रोड, उस पर दोस्तों, विद्यार्थियों की चहल क़दमी, ज़िन्दगी से परिपूर्ण क़हक़हे, और खूबसूरत-खूबसूरत छींटे और रिमार्क्स।

गोविन्द चुपचाप चलता जा रहा था, और उसकी आँखों में यूनिवर्सिटी लॉन्स, गार्डेन्स की हरियाली तथा डेज़ी, पपी, लिली, वायलेट, रोज़ और जेस्मिन के फूलों से भरी हुई क्यारियां; घूमने लगीं थीं। एक क्षण में यूनिवर्सिटी की सीमा में झूमते हुए बैनियन, अशोक, सर्व, ओक, युक्लिप्टस, पाम्स आदि के खूबसूरत वृक्षादि लहरा उठे।

गोविन्द रोनी के ऊँचे कगार से मैदान की ओर बढ़ने लगा और सूरदास का गीत बहुत समीप से ही उसके कान में सङ्गीत फूँकने लगा था—"जा दिन मन पंछी उड़ि जइहें !"

गोविन्द चुपचाप साधु की कुटी के सामने खड़ा होकर अन्धे भक्त की तन्मयता देखने लगा और अनायास उसके मुँह से निकल गया—

"साधु बाबा ! दण्डवत् !!"

"जै सियाराम बच्चा, जै सियाराम !!"

साधु ने अपना संगीत बंद करते हुए कहा, "आवो गोविन्द !·· इस रात में बच्चा··तुम कहाँ ?"

"यह न पूछिए, सूरदास बाबा !··बस भजन ही सुनाइए··हम लोग यही सुनने चले आए··।"

गोविन्द, किशन और अहिल्या तीनों साधु की कुटी में बैठ गए। सूरदास अजीब कौतूहल की भावना समेटे हुए उनके पास बैठ गया। गोविन्द को सब कुछ बताना पड़ा। उस पर बीती हुई, उस दिन की बात सुनकर सूरदास गंभीर हो गये और स्नेह से गोविन्द की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहने लो—"घबड़ाओ नहीं बेटा ! ईश्वर मालिक है !"

गोविन्द चुप था। और सूरदास ने बारी-बारी किशन और अहिल्या को दिल से आशीर्वाद दिया।

एकाएक गोविन्द ने बेचैनी से फिर कहा—"बाबा ! कोई दर्द भरा भजन सुनाइए।"

"दर्द भरा भजन !" साधु ने धीरे से यह कह कर अपनी सारंगी उठाई और वह एक भजन का सुर मिलाने लगा। फिर सूरदास ने गाना आरम्भ किया—"निश-दिन बरसत नैन हमारे !"

शान्त वातावरण में सूरदास का यह भजन कितनी ज़िन्दगी देने वाला था; लेकिन सहसा दक्षिण ओर से रोनी के कगार पर किसी के चीख़ने की आवाज़ आई।

गोविन्द एकाएक चौंक पड़ा, सूरदास का संगीत जैसे किसी ने तोड़ दिया हो, उसकी सारंगी को जैसे किसी ने चुप कर दिया हो ! गोविन्द आश्चर्य से खड़ा हो गया और बाहर अँधेरे में रोनी के कगार की ओर देखने लगा। फिर एकाएक दूसरी दौड़ती हुई चीख आई, जैसे काले-तूफ़ानी आसमान में एकाएक कौंधती हुई बिजली की रेखा, खिंच गई हो जिसकी क्रोड में एक वेग के साथ गर्जन छिपा रहता है।

चारो बाहर निकल आए। गोविन्द और किशन धीरे-धीरे अँधेरे में बढ़ने लगे। सहसा गोविन्द ने देखा कोई पागल-सी लड़की रोनी के ऊँचे कगार से लड़खड़ाकर दौड़ती हुई नीचे उतर रही है, और उसने दूसरे ही क्षण सुना दूर से दो मनुष्य उसका पीछा करते हुए आ रहे हैं, और वे पुकार रहे हैं।

"पकड़ लो !"

"पकड़ो !"

"पकड़ो इसे !"

गोविन्द और किशन के पैर न जाने क्यों काँप रहे थे पर वे दोनों आगे बढ़ रहे थे, सहसा उन दोनों ने देखा लड़की चीखकर चट्टान से लड़खड़ाती हुई धरती पर गिर गई है।

किशन चिल्ला उठा—"सब्बो !"

और वह बेतहाशा दौड़ पड़ा।

गोविन्द चीखकर पुकार उठा—"मेरी सब्बो !··आह !"

दोनों कगार की चट्टान की ओर दौड़ पड़े। सब्बो के पीछे, दौड़ते हुए, राजकुमार के दो आदमी भी अब कगार की ऊँचाई पर पहुँच चुके थे, और उन लोगों ने फिर आवाज़ लगाई—"अब, पकड़ लो ! जाने न पाए !"

सब्बो फिर चीख कर उठ पड़ी, और रोनी की ओर लड़खड़ाकर दौड़ती हुई, वह एक क्षण के लिए खड़ी हो गई, मानो वह एक बार

फिर जी गई। उसने देखा गोविन्द और किशन—भैया उसकी ओर दौड़ते चले आ रहे हैं, पुकारते आ रहे हैं, "सब्बो ! सब्बो !!.... बहन..बहन !"

सब्बो ने उन्हें मन की आँखों से देखा, और उसकी सब आँखें सूखे आँसुओं से रोने लगीं। उसके कान के पर्दे गोविन्द और किशन की आवाज़ से मानो काँप कर फट गए।

सब्बो खड़ी थी, जैसे फिर से जीवन मिल गयाथा। उसके दोनोंहाथ गोविन्द और किशन की ओर फैलनेही वालेथे—वह स्वयं चिल्लाकर उनके अंक में समा जाने को सोचने लगी, लेकिन तुरन्त ही जैसे उसके मन की आँखों में राजकुमार की खौफनाक तस्वीर चमक उठी, उसकी बाहरी आँखों के सामने मानों पहले की सब्बो और आज की सब्बो दोनों खड़ी हो गई रोती हुई, चीत्कार करती हुई; जिसके पास अब कुछ नहीं है—सुनहरे स्वप्न, न रंगीले अरमान, न वह क्षितिज के उस पार वाली दुनियाँ, जहाँ सब्बो की मगनी हुई थी, जहाँ उसके तमाम छोटे-छोटे, बहुत बड़े-बड़े स्वप्न धीरे-धीरे इकट्ठा होकर स्वप्निल रेखाओं से, मोतियों की लड़ियों से इतना बड़ा भाव-महल बना चुके थे कि जिसके सामने दुनियाँ की सारी नियामत शरमा जाने वाली थीं।

क्षण भर में सब्बो सिहर उठी, उसके कानों में जैसे कोई पुकार कर कहने लगा हो "सब्बो..मर गई !..सब्बो तू किस तरह गोविन्द और किशन से फिर मिलेगी ?..सब्बो..सब्बो..।"

सब्बो ने चीखकर दोनों हाथों से, अपने मुँह को ढक लिया और वह फिर लड़खड़ाती हुई, पागलों की तरह उसी क्षण, रोनी में कूद पड़ी ।

किशन समीप पहुँचता हुआ चिल्ला उठा। गोविन्द रोनी में कूद पड़ा और उसकी लहरों में समा गया । जैसे धरती अपनी एक आँख बन्द करना चाहती थी, जैसे धरती अपने एक कोहनूर को

भीतर छिपाना चाहती थी, और गोताखोर, गोविन्द धरती की उस आँख को, धरती के उस कोहनूर की रक्षा के लिए आज पानी के गर्भ में, धरती के एक छोर में प्रवेश कर गया हो !

रोनी में तरंगें उठ रहीं थीं, मानों आज खिलखिला कर नहीं हँस रही है, वरन् किसी के रोने के सुर में गे रही थी, इसलिए रोनी में बड़े-बड़े बुल्ले उठ रहे थे।

किशन कमर तक, रोनी के पानी में चलकर किनारे चला आया और भूखे भेड़िए की तरह राजा के दोनों आदमियों पर टूट पड़ा। एक को पहली चपेट में, उसके मुँह पर इतनी ताक़त से घूसा मारा कि वह वहीं बैठ गया और दूसरे को पटक कर उसके सीने पर चढ़ बैठा।

उसी समय गोविन्द, सब्बो को कँधे का सहारा दिए हुए रोनी के किनारे आ रहा था। किशन ने दौड़ते हुए आन्तरिक पीड़ा से पुकारा—"सब्बो !"

गोविन्द चुप था, और अब वह सब्बो को अपने दामन में लेकर रोनी के बाहर निकल गया !

किशन ने उसी क्षण गोविन्द के अंक से सब्बो को छीनकर अपने अंक में छिपा लिया।

किशन एक बिन्दु की तरह गोल होकर, अपनेपन में सब्बो को छिपाए हुए नीचे बैठ गया। सब्बो किशन में इस तरह समा गई जैसे ओस बिन्दु में सूरज की पहली किरन, माँ के अंक में उसका पहला शिशु।

गोविन्द, राजा के दोनों आदमियों को देखता हुआ खड़ा हो गया, और एक खूँखार निगाह से देखने लगा। उसी क्षण राजा के दोनो आदमी, रोनी के कगार को पार करते हुए, अंधकार में खो गए।

सूरदास और अहिल्या ने अपनी कुटिया से आवाज़ लगाई। गोविन्द, किशन की गोद से सब्बो को अपने हाथों में लिए हुए सूरदास की कुटी की ओर बढ़ गया।

कुटी में पहुँच कर गोविन्द, सब्बो को अपने अंक में लिए हुए नीचे बैठ गया। किशन सब्बो का नाम ले-लेकर पुकार रहा था, अहिल्या रोने लगी थी। लेकिन सब्बो कब से चुप थी, और किशन भी धीरे-धीरे रोने लगा था।

गोविन्द ने चाहा कि वह सब्बो को नीचे लिटा दे; पर सब्बो उससे इस तरह चिपट गई थी, मानो मौत की डर से भागकर आया हुआ बच्चा माँ के अंक से चिमट कर सो गया हो।

किशन सामने चुप बैठा था और उसकी आँखें रो रहीं थीं। गोविन्द ने किशन को डाँटते हुए कहा—"क्या औरतों की तरह रोते हो..किशन!...देखते नहीं..अभी तो सब्बो की साँस चल..रही है...और!"

इसके बाद गोविन्द का भी गला रुँध गया और उसने चुप होकर सब्बो को अपने कंधे पर ले लिया। लगने लगा कि सब्बो, गोविन्द भइया के कान में अपनी बीती कहानी कह रही है, एक ऐसी कहानी जिसमें कहीं कथानक नहीं था, चारो ओर बिन्दु-बिन्दु पर चरम सीमा थी। वह एक ऐसी कहानी थी, जो कोई कहानीकार लिख नहीं सकता किसी भी तरह वाणी नहीं दे सकता। एक कहानी—आँसुओं से भींगी हुई, मौन कहानी, जिसे केवल धरती समझ सकती है, आसमान सुन सकता है; गोविन्द और किशन, काली रात और रोनी, नदी ही उस मौन कहानी की हुँकारी भर सकती थी।

गोविन्द, सब्बो को दामन में चिपकाए हुए, उसकी कहानी, उसकी फ़रियाद सुन रहा था, और छिप-छिपकर रो रहा था, और करुण-क्रंदन करते हुए अपने अन्तर्मन को स्वयं समझा रहा था कि..अभी तो... सब्बो जी रही है, उसकी हृदय-गति ठीक है!...उसकी साँसें चल रहीं हैं।

लेकिन थोड़ी देर के बाद सब्बो के हाथ-पैर ढीले पड़ने लगे। वह स्वयं गोविन्द को छोड़ धरती पर गिरने लगी; मानो उसने सब कहने

वाली बातें, अपनी सब फरियाद, अपनी पूरी कहानी, समाप्त कर ली हो और उसे अब कुछ नहीं कहना है।

गोविन्द ने सब्बो को नीचे लिटा दिया और उसकी दशा देखते हुए, सबके सब विचलित हो गए। सूरदास ही केवल लोगों को विश्वास दिला रहा था कि सब्बो मर नहीं सकती।

किशन फूट-फूटकर रोने लगा और अंधे साधु के पैर पकड़कर, रुँधे गले से प्रार्थना करने लगा।

"साधु बाबा !...बचा लीजिए..सब्बो को ! न मरने दीजिए... सब्बो को !"

साधु ने विश्वास से, सब्बो को स्पर्श करते हुए कहा, "सब्बो का कागज़ कोई नहीं फाड़ सकता ! सब्बो किसी तरह नहीं मर सकती।"

गोविन्द ने प्रसन्नता से सूरदास को पकड़कर कहा, "सच ! सच !! साधु बाबा ! मैं जीवन भर इस आशीर्वाद का उपकार नहीं भूलूँगा।"

साधु ने गंभीरता से कहा, "हाँ, हाँ मैं ठीक कहता हूँ, मैं अपने राम और कृष्ण की सौगन्ध खाकर कहता हूँ मैं उनका भक्त हूँ; वे मुझसे स्वयं कह रहे हैं कि अभी सब्बो की उम्र पूरी है !"

"सच !" गोविन्द, किशन और अहिल्या तीनों ने सम्मिलित स्वर में कहा "हाँ !"

सूरदास ने गंभीरता से कहा, और उसी क्षण, राम और कृष्ण की मूर्तियों के सामने हाथ जोड़कर बैठ गया और अनन्य विश्वास और दीनता से प्रार्थना करने लगा।

लेकिन इधर सब्बो शिथिल होती गई, उसकी चलती हुई हाथ की नस में तरंगे उठने लगीं। आँखें पत्थरों की तरह बंद थीं, मानो वह जब तक जीवित है संसार को, इन आँखों से नहीं देखना है ! लगता

था, उसकी आँखें अन्तर्मुखी हो गई हैं। न वह कराह रही थी, न किसी तरह की पीड़ा से उसका मुँह ही विकृत था—वह चुप थी, मूक जैसे पत्थर की कोई सोती हुई मूर्ति।

सूरदास, अटूट विश्वास से अपने इष्ट की प्रार्थना कर रहा है। अहिल्या रो रही थी, किशन अपने अन्तर्जगत में पछाड़ खाकर रो रहा था। गोविन्द उस पर झुका हुआ उसके हाथ-पैर में गर्मी लाने के प्रयत्न में था।

लेकिन दूसरे ही क्षण, गोविन्द ने देखा कि सब्बो की नस उस बुझते हुए चिराग़ की लौ की तरह कँप रही है, तब वह बुत की तरह सब्बो के मुँह को देखने लगा। किशन और अहिल्या दोनों उसे गर्मी देने का प्रयत्न करने लगे; लेकिन सब्बो को गर्मी न मिली: वह ठंढी होती जा रही थी जैसे उसके मन का चिराग़ बुझ गया हो, जैसे उसके अन्दर की अग्नि पर किसी ने तुषार-पात किया हो, जैसे उसे किसी ने बर्फ़ की गुफा में ढकेल कर उसका द्वार बन्द कर दिया हो।

सब्बो दूसरे क्षण सिसकने-सी लगी। उसका निचला ओंठ, ऊपरी ओंठ लगा वह इतनी बोली और भयानक सिसकियाँ लेने लगी और गोविन्द से न रहा गया। वह सब्बो के सिर से लिपटकर रो उठा; सब रो उठे; पर साधु अब भी अपने विश्वास पर पूजा किए जा रहा था, राम-कृष्ण-देवी देवताओं की दुहाई देता जा रहा था; अपनी भक्ति की पुकारें उठा रहा था।

गोविन्द, सब्बो को अपने गले में छिपाए रो रहा था और सब्बो सिसकियाँ ले रही थी—मानो अब सब्बो अपनी मूक कहानी को वाणी दे रही थी, अपने ख़ूनी फरियाद को कह रही थी, अपनी क़िस्मत का उलाहना दे रही थी। सबसे बिछड़ने की पीड़ा से बेक़रार होकर रो रही थी।

फिर धीरे-धीरे सिसकियाँ बंद हो गईं, सब्बो चिरनिद्रा में सो

गई, इस तूफ़ा दुनियाँ को पार कर गई। वहशियों की दुनिया के परे पहुँच गई।

सब्बो मर गई; जैसे आसमान ने कराह कर कह दिया हो—सब्बो मर गई, जैसे सूरदास की पत्थर की मूर्तियों ने मुस्कराकर कह दिया हो—सब्बो मर गई, जैसे रोनी नदी ने तड़पकर कहा हो—सब्बो मर गई, जैसे क्षितिज पर दो डूबते हुए सितारों ने कह दिया हो। सब्बो मर गई, कोई न बचा सका, जैसे धरती ने आह भरकर दर्द भरी वाणी में कहा हो, और यह कहते हुए उसका दिल फट गया हो।

सब्बो की आँखें अब उन्मुक्त खुल गईं थीं; वह स्थिर पत्थर की दृष्टि की तरह, स्थिर आखों से संसार को देखने लगी, मरने के बाद देखने लगी, क्योंकि तभी उसकी आँखें खुलीं थीं। उसके पतले-पतले बंद ओंठ खुल गए थे।

सब रो रहे थे, गोविन्द पागलों की तरह सब्बो की खुली हुई आँखों को देख रहा था। उन आँखों में तैरते हुए सपनों को देख रहा था, उन आंखों में रंग बिरंगी तस्वीरों को देख रहा था—सब्बो के समस्त स्वप्नों, अरमानों, इच्छाओं को देख रहा था। वह उसकी आँखों में देख रहा था कि सब्बो की शादी हो रही है, चारो ओर छोटी पट्टी; बड़ी पट्टी में मंगल गीत गाए जा रहे हैं, सखियाँ खुशी से नाच रहीं हैं। सब्बो दूल्हन बनी है। वह शरमायी हुई अपने देवता के साथ भाँवरें घूम रही है। सब्बो विदा हो रही है, सबसे रो-रोकर विदा हो रही है। सब्बो अपने पति के घर गई है, वहाँ की गृह-लक्ष्मी बनी है, मलकिन बनी है। फिर सब्बो की गोद में एक चाँद सा बालक खेल रहा है—वह बड़ा होता है····। उसे लेकर सब्बो फिर जगतपुर, अपने मायके लौटती है, और सबको भेंट-अँकवार देती है। उसका बच्चा, गोविन्द किशन को मामा-मामा कहकर पुकारता है।

इस तरह से सब्बो की खुली हुई आँखों में, किसी की दुल्हन, किसी घर की गृह-लक्ष्मी, किसी की दादी बनने की तमाम ख़्वाहिशें,

तमाम अरमान, रँगीले सपने तैर रहे थे; और गोविन्द उसे देख रहा था, और अपने अन्तर्लोक में रो रहा था।

सब्बो के खुले हुए ओंठों पर एक ओर उसकी मंगल-कामना, और आशीर्वाद मुस्करा रहा था—गोविन्द भइया! एम० ए० पास हो जाय!!····जगतपुर की फ़सल दसगुनी हो!·····गोविन्द और किशन भइया की जीत हो!····ज़ैनब की जीत हो!

दूसरी ओर वह श्राप दे रही थी—राजकुमार की मौत हो!··राजा का सर्वनाश हो!····

और अंत में एक बार सूरदास भी चीख पड़ा। उसका अटल विश्वास हो पड़ा और उसके जुड़े हुए हाथ काँप गए, जिसकी लड़खड़ाहट से पत्थर की; राम-कृष्ण की दोनों मूर्तियाँ गिर पड़ीं। लेकिन सूरदास को इसका ज्ञान न रहा। उसे लगा जैसे उसका बिश्वास शीशे की तरह टूटकर चूर-चूर होने जा रहा है। वह उसी समय कुटी के बाहर आया और ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगा—आदमी!··आदमी·· शैतान··शैतान····।

जगतपुर भींग रहा था। चौबीस घंटे से लगातार बारिश हो रही थी और गोविन्द अपने घर, आधी रात के समय ख्वाब देख रहा था—जगतपुर की धरती अपनी अपूर्व फ़सल से मुस्करा रही है। सब खेत ऊँची पट्टी, छोटी पट्टी, शेख़ पट्टी नई फ़सल से लहलहा रहे हैं। गाँव से बाहर जाने का कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता, जैसे जगतपुर की सारी धरती नई फ़सल से ढँक गई है।

गोविन्द, ख़्वाब में अपनी पूरी तैयारी के साथ इलाहाबाद युनिवर्सिटी पढ़ने जा रहा था। वह हरे-हरे फ़सल से, लहलहाते हुए खेतों को पार करता जा रहा है। वह चलता हुआ अपने रास्ते पर इतना प्रसन्न है कि मानो स्वर्ग में चल रहा है। उसके शरीर का अणु-अणु एक स्वर्गिक संगीत से स्निग्ध हो रहा है! वह स्वयं एक गीत गुन-गुना रहा है, इसे उसने बी० ए० में पढ़ा था—

"ओ हरित भरित घन अंधकार
ओ रोमांचित हरितांधकार॥"

इस तरह गोविन्द गुनगुनाता हुआ, हरे-हरे खेतों को पार करता जा रहा था। सहसा एक पुकार उसके कानों में पड़ी—उसने घूमकर देखा—ज़ैनब खेतों से दौड़ती हुई, अपना शिलवार और ओढ़नी सम्हाले चली आ रही है। गोविन्द ने उसकी ओर बढ़कर पूछा—"क्या है ज़ैनब ?" ज़ैनब हाँफती हुई उसके पास पहुँच गई; और उससे लिपट कर बोली—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी !"

यह कह कर, दूसरे ही क्षण ज़ैनब बेहोश होकर नीचे गिरने लगी और गोविन्द चीख़ पड़ा—इस तरह आधी रात के समय, ख़्वाब देखते-देखते, गोविन्द चौंक कर उठ पड़ा और बाहर बरामदे में चला आया।

मूसलाधार पानी बरस रहा था, गोविन्द बरामदे में खड़ा-खड़ा अपने ख्वाब पर मुस्करा रहा था। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह इसी क्षण ज़ैनब के घर जाए और उसे साथ लेकर, जगतपुर के खेतों में इतना चक्कर लगाए कि वे दोनों थक जाएँ। वे दोनों इस मूसलाधार बरसते हुए पानी में इतना भींग जाएँ, इतने धुल जाएँ कि संसार की उछाली हुई कोई भी कालिमा उन पर प्रभाव न डाल सके।

गोविन्द पूरे दो घंटे तक बरामदे में टहलता रहा और सोचता रहा। उसका सोचना उस क्षण बन्द हुआ जब बाहर पानी का बरसना बन्द हुआ।

फिर गोविन्द बाहर निकल आया, और उसने आसमान की ओर देखा, उसी क्षण उसके कान में किसी के रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी—बड़ी पट्टी में कोई औरत विलाप करती हुई रो रही थी।

गोविन्द बराबर उस, करुण रुदन की ओर मुड़ गया; और उसे लगा—यह दर्द भरी आवाज़ मुखिया बद्री पांडे के घर से आ रही है।

गोविन्द ने वहाँ पहुँच कर देखा—अहिल्या बरामदे में, दीवार के सहारे बैठी हुई रो रही थी। और अचानक, इस सूनी रात में गोविन्द को देख कर और रोने लगी और जैसे-जैसे गोविन्द, अहिल्या के पास आता गया, अहिल्या रोती गई, और अंत में जैसे गोविन्द उसके पास आकर उसे चुप कराने लगा—अहिल्या उसके पैर से लिपट कर और फूट पड़ी।

थोड़ी देर बाद, गोविन्द के बहुत मनाने पर अहिल्या चुप हुई, और फिर भींगी पलकों और रुँधे गले से अपने आँसुओं की कहानी सुनाने लगी—

"आज रात को पाँड़े जी ने मुझे बहुत मारा है। वे मुझपर कलंक लगाते हैं कि क्यों मैंने दरोग़ा के हाथ से गोविन्द और किशन को छुड़ाया। क्यों उतनी रात तक, उस दिन तुम्हारे और किशन के साथ रही।"

अहिल्या रोती हुई, अपनी करुण कहानी कहती जाती थी और गोविन्द से अपनी सहमी हुई वाणी में प्रश्न करती जाती थी—"बताओ गोविन्द बाबू ! इसमें दोष किसका है ? सोचो···बेईमान दरोग़ा के पास मुझे इन्होंने जानबूझ कर भेजा या मैं स्वयं गई ?··बताओ कलंकी कौन है ?···मैं या पाँड़े जी ! या मैं और दरोग़ा ? या मैं या मेरी क़िस्मत ! या मेरे माँ-बाप, जिन्होंने इस बूढ़े से मेरी शादी की थी ?···बताओ, कलंकी कौन है ?··पापी कौन है ? मैं या मेरे ईश्वर ? बोलो गोविन्द बाबू ! सज़ा किसे मिलनी चाहिए ?··बोलो, इन्हीं पापियों को न ?"

गोविन्द ने गंभीरता से, अहिल्या को समझाते हुए कहा—"पापी को सज़ा नहीं मिलती, अहिल्या !···यह वह दुनिया है, जहाँ चरित्र-हीन दोषी राज्य करते हैं और निर्दोष का गला नापा जाता है। यह पाप की दुनिया है, पुण्य की नहीं और फिर अब तो पाप पुण्य का दृष्टिकोण ही बदल गया है !"

अहिल्या निर्दोष बच्चे की तरह रो रही थी, और धरती पर उसके गिरते हुए आँसू स्वयं अपनी कहानी लिख रहे थे—ऐसी कहानी जिसका संबंध भारत में, भारत के गाँवों में, भारत की धरती पर, करोड़ों नारियों की मौन कहानी है। ऐसी कहानी, जिसे वाणी नहीं कह सकती; बल्कि ये कहानियाँ कितनी उदास आँखों में स्वयं आँसुओं की डबडबा-हट में तैरती हैं, बहते हुए आँसुओं की नदी में उभरी रहती है।

अहिल्या रो रही थी और गोविन्द समझा रहा था—"रोओ नहीं अहिल्या ! इतने आँसू काफ़ी हैं ! सोचो, तुम्हारी ही तरह कितनी औरतें रोती हैं—नारी के कितने स्वरूप रोते हैं—कभी तुम्हारे स्वरूप में, कभी सब्बो के रूप से, कभी मेरी सरस्वती दीदी के रूप में, कभी पारो भाभी के रूप में, कभी·····।···इतने आँसू एक तूफ़ान लाने के लिए काफ़ी हैं। बहुत जल्द एक इतना बड़ा तूफ़ान आने वाला है, जिसमें हमारी आवाज़ ऊपर उठेगी। सब का न्याय होगा, दोषी-निर्दोषी, कलंकी और पवित्र सब का उस तूफ़ान के बीच धरती की

इन रोती हुई आँखों में अमृत की वर्षा होगी, धरती के सूखते हुए ओंठ फिर मुस्कराएंगे।···इसलिए हमें सिर्फ़ सच्चाई के रास्ते पर रहना है··और इसकी आखिरी मन्ज़िल की ओर चलते हुए, सब लड़ाइयों को जीतना भी है; क्योंकि आखिर में पहुँच कर जीत सच्चे इन्सान को मिलेगी, इन्हे नहीं!"

अहिल्या चुप हो गई। वह गोविन्द के साथ अपने बाहरी आँगन में खड़ी हो गई। आसमान में अब भी वर्षा के काले-काले बादल थे।

गोविन्द ने पूछा—"पाँडे जी घर में सो रहे हैं क्या?" नहीं, खाना खाने के बाद, मुझे जी भर पीट कर, राजा की कोट गए हैं! और अभी तक वहीं हैं।"

"राजा की कोट!" गोविन्द ने आश्चर्य्य से कहा!

"हाँ, राजा की कोट! सुना है··राजकुमार और राजा जगतपुर के नौजवानों को खुश करने के लिए, सब के दिमाग से सब्बो की मौत को जीतने के लिए; जगतपुर को ढाई सौ मन ग़ल्ला मुफ़्त में बाँटने के लिए सोच रहे हैं।"

गोविन्द चुपचाप अहिल्या की बातें सुनता रहा और न जाने, अचानक क्या सोचकर, उसने आगे बढ़ते हुए कहा—"अच्छा, अहिल्या··अब रोना नहीं, आँसुओं को पीकर चुप रहना··अब मैं जा रहा हूँ!"

* * *

जिस समय गोविन्द, ज़ैनब के घर पहुँचा, सुबह होने में थोड़ी सी रात बाकी थी। गोविन्द ने देखा, ज़ैनब के घर का दरवाजा बाहर से बंद था, और चारों तरफ सूनसान था। गोविन्द, कुछ क्षणों तक सोचता खड़ा रहा, फिर उसने धीरे से किवाड़ खोल दी, क्योंकि अब तो थोड़ी देर मे सुबह ही होने वाली थी।

किवाड़ खुलने की आहट पा ज़ैनी ने भीतर से पुकार—"कौन?",

"मैं··हूँ,गोविन्द !" गोविन्द ने भीतर बढ़ते हुए कहा।

ज़ैनी फज़र की नमाज़ पढ़ने जा रही थी; और गोविन्द का इस समय आना, उसके दिल में एक आवाज़ उठाने लगा। वह क्षण भर में सोच गई—"काश ! ख़ुदा मेरी आँखें अच्छी कर देता !"

"ज़ैनब कहाँ है !" गोविन्द ने पास आकर पूछा।

"मेरे पास आ जाओ गोविन्द !" ज़ैनी ने दोनों हाथ बढ़ाते हुए कहा,"नज़दीक आ जाओ गोविन्द !···आज तुम कितने दिनों के बाद मिल रहे हो !"

गोविन्द पास आ गया, और ज़ैनी उससे बिल्कुल सटकर खड़ी हो गई, और उसने एक अजीब प्यार के लहज़े में धीरे से कहा,"ज़ैनब, टीले के जिन्नात को शराब चढ़ाने गई है !"

"टीले पर ! अकेले !" गोविन्द ने आश्चर्य्य से कहा।

"अभी आ रही होगी !" ज़ैनी ने कहा।

लेकिन गोविन्द आशंका से सिहर उठा। वह उसी क्षण, तेज़ी से टीले की ओर भाग निकला।

टीले पर पहुँचते-पहुँचते, गोविन्द ने एक दौड़ में, मस्जिद और मन्दिर; दोनों के खंडहरों को देखा; वहाँ कोई न था। गोविन्द और सिहर उठा।। उसने धीरे से आवाज़ लगाई—"ज़ैनब !"

कोई उत्तर नहीं।

और गोविन्द परेशान, टीले पर चक्कर काटने लगा फिर दूसरे ही क्षण, टीले की ऊपरी ऊँचाई पर उसने क्षीण आभास के रूप में देखा—कुछ सफ़ेद चीज़ हिल रही रही है।

गोविन्द ने उधर ही बढ़ते हुए पहचाना—'ज़ैनब वह है !'

धीरे-धीरे पास जाकर, गोविन्द ने देखा—ज़ैनब, इबादत की मुद्रा में खामोश बैठी है; उसके सामने दो शराब की बोतलें ढरकी पड़ी हैं।

गोविन्द की नाक, शराब की उड़ती हुई हवा से भर गई; और वह ज़ोर से हँस पड़ा। ज़ैनब घबड़ाकर उठ खड़ी हुई, और गोविन्द से लिपट गई "अजीब पागल हो ज़ैनब!" गोविन्द ने स्नेह से उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"क्यों?"

"क्या कर रही थी तू····तुझे डर नहीं?··"

"मैं जिन्नता को फिर याद दिलाने आई थीं कि···।"

गोविन्द ने बीच ही में बात काटते हुए कहा, "हुँ, एक बार आई थी, तो जिन्नात ने खुश होकर वह बरदान दिया, वह बरदान दिया कि अब तक नहीं खर्च हो रहा है!···अब और क्या चाह रही हो?"

"नाखुश हो गए, गोविन्द!" ज़ैनब ने हटते हुए कहा।

"नाखुश होने की बात ही है,···मैं पूछता हूँ, अगर उस रात की तरह, आज भी विजय यहाँ तुझे अकेले पा जाता तो?"

"उसके लिए मैं तैयार होकर आई थी!" ज़ैनब ने अपनी कमर से एक तीखी कटार निकालते हुए कहा।

"लेकिन!···लेकिन वह तुम्हारी ही कटार से तुम्हे मार भी डालता!" गोविन्द ने कटार लेते हुए कहा।

"अच्छा नाख़ुश न हो; चलो घर चलें!"

"लेकिन वादा करो कि अब से तुझे किसी जन्नात, शैतान, हैवान, देवी, देवता वगैरह की इबादत नहीं करनी है···तुम इन बेकार की बातों के लिए फिर इस सूने टीले पर नहीं आवोगी?"

ज़ैनब घबड़ाई हुई, गोविन्द के तमतमाए हुए चेहरे को देख रही थी। गोविन्द उसके सामने गाँव वालों के अंधविश्वास के खिलाफ बोलता जा रहा था; और ज़ैनब खामोश होकर सुन रही थी।

गोविन्द टीले से खामोश नीचे उतरने लगा, और ज़ैनब साथ-साथ चल रही थी।

"इन खंडहरों के भगवान की भी पूजा और इबादत से खिलाफ़ हो गए हो गोविन्द ?" ज़ैनब ने धीरे से कहा।

"खिलफ़त की कोई बात नहीं, मेरा इन पर विश्वास नहीं रह गया··ज़ैनब !"

"लेकिन उस रात को तुम्हारी ही इबादत; इन देवताओं में तुम्हारा ही विश्वास देखकर··मैं इन पर और भी यक़ीन करने लगी थी !"

गोविन्द ने रुककर उत्तर दिया—"वह मेरे संस्कार के फलस्वरूप था। मेरे दिमाग़ में, माँ बाप द्वारा यह बात घुसाई गई थी; और इस पर विश्वास दिलाया गया था कि मैंने बी० ए० अपने पुरुषार्थ और स्वावलंबन से नहीं किया है; वरन इस सफलता के पीछे, भगवान्, देवी देवताओं के हाथ हैं। लेकिन जब मैं अपने बी० ए० की कठिनाइयों, कड़ी से कड़ी परिस्थियों को याद करता हूँ; तब मेरा उस दिशा का विश्वास कँप जाता है। और इधर जब मेरी आत्मा से आवाज़ आई कि मैं एम० ए० करूँगा; तब मेरे संस्कारों ने, पिताजी और सूरा दीदी ने विवश किया कि मैं भगवान्, देवता की शरण में जाऊँ, उनसे भीख माँगू; अगर वे खुश हैं, उनकी इच्छा है तो मैं एम० ए० भी कर लूँगा।"

ज़ैनब ने बीच में टोकते हुए कहा, "तब क्यों तुम भगवान्, देवताओं की इबादत से रूठते हो ?"

गोविन्द ने उत्तर देते हुए कहा, "लेकिन मुझे अपने पर शरम आती थी, मेरा मन आत्म-प्रतारणा से भर जाता था—यही कारण है ज़ैनब ! मैं गाँव के मन्दिरों में उस रात उपासना न करके, इन झाड़ियों से ढके, गाँव से दूर एकाकी खंडहर में गया था; और किसी अज्ञात शक्ति से भीख माँग रहा था··लेकिन··।"

गोविन्द यह कहते-कहते रुक गया, और उसका मुँह तमतमा आया, जो दूसरे ही क्षण मुरझा सा गया। ज़ैनब ने उसे उसी क्षण प्यार से आगे बढ़ाते हुए कहा।—"मत इतने दुखी हो, गोविन्द !"

"लेकिन··लेकि·· ।" गोविन्द अपनी बात को पूरा करना चाहता था—पर बार-बार उसकी जबान रुक सी जाती थी। "लेकिन क्या गोविन्द ?··कह डालो न पूरी बात !" ज़ैनब ने कहा। गोविन्द फिर रुक गया और उसने बहुत नज़दीक से ज़ैनब को देखते हुए कहा, "··लेकिन ज़ैनब !··उस खंडहर में कोई शक्ति नहीं थी,··मैं जिससे भीख मांग रहा था, वह शायद मेरी ही कमजोरी का धुँधला सा भूत था। अगर मैं किसी शक्ति के शरण से गया था, तो उस दिन के संयोग के आधार पर उठाए गए तूफ़ान का यह रूप न होता वह अज्ञात शक्ति स्वयं, जगतपुर वालों से कह देती कि राजकुमार—विजय झूठा है, सब धोखा है, सब प्रपंच है।

लेकिन हुआ क्या ?··जिस खंडहर के देवता से मैं भीख माँगने आया था वही खंडहर, उसके देवता मेरे दुशमन बनं गए—"

"सच,··सच कहते हो गोविन्द !" ज़ैनब ने धीरे से कहा।

गोविन्द के ओंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई और उसने ज़ैनब को प्यार से आगे बढ़ा दिया। दोनों गाँव की ओर बढ़ते जा रहे थे और गोविन्द कहता जाता था—"मैंने जो बात अभी तुमसे कही है, वह भी ग़लत है··सिर्फ तुम्हें समझाने के लिए मैंने उसे उस रूप में कहा है—लेकिन सच तो यह है कि उस खंडहर में न कोई देवता है न कोई ईश्वर ! फिर बेचारे उस खंडहर का क्या दोष।"

"फिर क्या बात है··गोविन्द ?"

"परिस्थितियाँ सब कुछ हैं !··वही कमजोर मनुष्य के लिए ईश्वर है और विवेकी, स्वावलम्बी के लिए किसी मंजिल तक पहुँचने के लिए टेढ़े-मेढ़े, सीधे-साधे रास्ते हैं; जिससे इन्सान को गुजरना पड़ता है।"

"क्यों इतने सख़्त होते जा रहे हो गोविन्द !" ज़ैनब ने पूछा—

"किस माने में ज़ैनब ?··मैंने तुम्हारा मतलब नहीं समझा !" ज़ैनब ने समझाते हुए कहा, "अपने ख्यालत में क्यों··इतने सख्त होते जा रहे हो ?···एक दिन जिन बातों पर तुम्हारा विश्वास था, तुम क़ायल थे; उसे क्यों छोड़ते जा रहे हो ?"

"ज़ैनब तुमने यह क्यों नहीं पूछा कि गोविन्द एक दिन तुम इतना मुस्कराया करते थे, इतने खुश रहते थे अब क्यों नहीं मुस्करा रहे हो ?···अब··· ।"

"ऐसा न कहो···ऐसा न कहो··गोविन्द !" ज़ैनब ने बीच ही में बात काटते हुए कहा ।

"कहना पड़ता है ! बदलना पड़ता है··ज़ैनब !··यह सब तो बहुत ही सत्य बातें हैं !··परिस्थियाँ इन्सान को बदलती रहती हैं·· लेकिन ज़ैनब ! इन्सान वहाँ; फतहयाब होता है, जहाँ··परिस्थितियाँ भी इन्सान से प्रभावित हो जाँय । इन्सान उनसे ऊपर उठकर मुस्कराए और परिस्थिति पीछे छुटकर दूर खड़ी होकर शरमाती रह जाय ।··इसलिए··ज़ैनब ! बदलना,··थोथी भावनाओं, झूठे ख्यालात के प्रति सख्त हो जाना, मुँह मोड़ लेना—इन्सान की जीत है··· अनिश्चिय से···निश्चय की ओर बढ़ना है, खोखलेपन से ठोस होना है—धीरे-धीरे पूरी सच्चाई से ज़िन्दगी की मंज़िल की ओर बढ़ना है ।"

गोविन्द बातें करते-करते रुक गया और खड़ा होकर ज़ैनब को मज़बूती से पकड़ लिया—जिसमें प्यार की मुलायमिर्यत थी, पवित्रता की खुशबू थी । और गोविन्द ने मुस्कराती हुई ज़ैनब से कहा—"जब जगतपुर का यह विश्वास है कि हम लोगों के नाते जगतपुर की धरती रूठी है··देवता नाखुश हैं··खंड़हर की किसी शक्ति ने जगतपुर पर श्राप दिया है; और दूसरी ओर हम अपनी सच्चाई और पवित्रता के लिए खड़े हैं··और यह कह कर उनका सामना कर रहे हैं कि सब झूठा है····सब ग़लत है !··सब प्रपंच है··न कभी धरती रूठती

है···न कहीं ईश्वर है···न देवता·· और फिर तो गोविन्द और ज़ैनब···दोनों ने खंडहर में पूजा की थी··और कोई बुरी बात नहीं की थी··फिर कहाँ हैं··न्याय करने वाले देवता? निष्पक्ष ईश्वर?·· अगर कोई है··तो क्यों नहीं आकाश वाणी होती?··क्यों नहीं ··एक ऐसी आवाज़ उठती कि सब की आँखें खुल जायँ··सब को सच्चाई मालुम हो जाय··!"

गोविन्द का मुँह लाल हो गया था। ज़ैनब ने प्यार से मुस्करा कर गोविन्द की जबान बन्द कर दी और बढ़ते हुए ज़ैनब ने भोले स्वर में पूछा—

"तब क्या किया जाय गोविन्द?"

"ज़ैनब!··छोड़ दो··इन देवी-देवताओं··जिन्नात··ईश्वर वगैरह की बातें··ये बातें जगतपुर के ठीकेदारों के लिए हैं··और हमारी लड़ाई भी उनके इन्हीं विचारों से है। उनका हथियार उन्हीं के हाथों में रहने दो····यह सब उन्हीं के रास्ते हैं जिन पर वे चल रहे हैं··और चलेंगे और भटकते रहेंगे··। ज़ैनब! हमारी ही जीत उस दिन होगी जब उन्हें उनके ग़लत रास्ते कांटो की तरह चुभेंगे····और हमारा सही रास्ता फूलों की सड़क की तरह चमक उठेगा।"

गोविन्द चलता हुआ, अपने विचारों को वाणी रूप देता हुआ गाँव के रास्ते को छोड़कर चलने लगा। एकाएक उसके पाँव··एक मकोइये की झाड़ में पड़ गए··और न जाने कितने काँटे चुभ गए··।

ज़ैनब ने चीखकर कहा—"गोविन्द!" और उसके पास पहुँच गई। गोविन्द को कुछ पता न था—वह स्वाभाविक रूप से झाड़ के बाहर हो गया था, और मुस्करा कर कहने लगा—"हमारा रास्ता, हमारा ही होगा,··और हम उस पर लाख मुसीबत सहते हुए··चलेंगे··और एक दिन जगतपुर वालों की आँखें खुल जायँगी कि उनका रास्ता ग़लत है····उनके संस्कार उनके

विश्वास ग़लत हैं··पुराने हैं··उन्हें बदलना होगा··समय के साथ चलना होगा····। एक दिन वे स्वयं सोचेंगे कि—उनके राजा, उनके तालुकेदार उनके दुश्मन हैं··उनके विश्वास, उनके संस्कार सब ग़लत हैं। और मुझे पूरी उम्मीद है ज़ैनब ! कि एक दिन··जगतपुर की नई धरती पर, नए आसमान के नीचे नई फ़सल उपजेगी—नया दिन होगा—राजा की हार होगी; जगतपुर वाले अपने सड़े हुए विचारों से आगे बढ़ेंगे··और एक दिन जगतपुर के सब बच्चे स्कूलों में पढ़ने जाएँगे, नौजवान तरह-तरह की कारीगरी सीखेंगे। शेख़पट्टी ऊँची पट्टी में कोई दीवार न होगी··गाँव की भी सब बहनों को सब लड़कियों को तालीम मिलेगी सब सोचेंगे··सब नए रास्ते पर चलेंगे। फिर न कभी मासूम बहनों की आत्महत्या होगी—न फिर कभी कली, फूल बनने के पहले मुरझाएगी—न सावित्रियां शरीर त्यागेंगी, न अहिल्याएँ रोएँगी, न सूरा ऐसी दीदियाँ विधवा बनकर जन्म काटेंगी,··न··।"

इतने ही में ज़ैनब ने बढ़कर गोविन्द के मुँह पर अपनी दायीं हथेली रख दी, और ज़ैनब हँसती हुई कहने लगी "मैं तो थक गई ! गोविन्द मैं तो थक गई। मैं तो·····।" और यह कहकर, वह बच्चों की तरह इधर उधर लड़खड़ाने लगी"

गोविन्द ने पूछा—"क्या है ज़ैनब ?"

ज़ैनब ने हँसते हुए उत्तर दिया—"मैं तो थक गई····मैं तो··· नहीं, नहीं, मैं भूल रही हूँ····गोविन्द ! वह देखो ···आसमान का एक सफेद सितारा····वह इस समय तुम्हें देखकर मुस्करा रहा है···।"

ज़ैनब आसमान की ओर उँगली उठाए खड़ी हो गई। गोविन्द भूल गया—सब भूल गया और उसने बढ़कर ज़ैनब को प्यार से अपनी गोद में उठा लिया और उसे देखकर कहा—"वह सफेद सितारा मुझसे मुस्करा कर कह रहा है, ज़ैनब थक गई ! ज़ैनब थक गई ! ओह ! ज़ैनब थक गई।"

गोविन्द अपने गाँव के रास्ते पर चल रहा था। गाँव समीप था, सुबह भी समीप थी, रोशनी भी समीप थी। गोविन्द ज़ैनब के समीप था, और ज़ैनब गोविन्द के समीप थी।

गोविन्द मुस्कराता हुआ चल रहा था। गोविन्द अपनी गोद में ज़ैनब को उठाए हुए चल रहा था दोनों मुस्कराते हुए चुप थे। दोनो एक होकर चल रहे थे—जैसे हवा सुगन्धि को लेकर चलती है, शरीर आत्मा को छिपाकर चलता है।

गोविन्द बढ़ रहा था। ज़ैनब उसकी गोद में बैठकर चल रही थी। जैसे धरती ने अपनी गोद में आसमान को लेलिया हो! जैसे आसमान ने अपनी गोद में सब सितारों को बटोर कर छिपा लिया हो—जैसे चाँद चाँदनी में छिप गया हो, जैसे सौरभ सुगन्धि में छिप गया हो! बात मुस्कराहट में छिप गई हो!

गोविन्द अपनी गोद में अपना साम्राज्य लिए हुए धीरे-धीरे चल रहा था। ज़ैनब, मानों गोविन्द की गोद में सो गई थी, मानों वह जिन्नात से, उन खँडहरो से यही बरदान माँगने आई थी। ज़ैनब अपनी सुनहरी दुनियाँ में मानो सच्ची नींद से सो गई थी, गोविन्द बढ़ता जा रहा था और ज़ैनब के नाक, कान, आँख, ओंठ, माथा सर आदि को चूमता जा रहा था—आखिर में गोविन्द, ज़ैनब के सीने की पवित्र गहराई में अपना सर छिपाकर खड़ा हो गया, रुक गया, जैसे पत्थर की एक ग्रीक मूर्ति हो गया; जिसे संसार के सबसे बड़े मूर्तिकार ने अभी अभी बनाया हो।

ज़ैनब ने अँगड़ाई ली, जैसे वह अब सुनहरे आसमान से, ज़न्नत से पृथ्वी पर आना चाहती हो।

गोविन्द ने धीरे से ज़ैनब को नीचे उतारते हुए कहा—"तुम मेरी धरती हो!"

"और तुम मेरे आसमान हो!"

ज़ैनब ने बहुत धीरे से कहा। और अजीब गंभीरता से गोविन्द से चिपक गई। मानो अब ज़ैनब, गोविन्द को अपनी गोद में उठा लेना चाहती हो।

फिर ज़ैनब मुस्कराने लगी, लेकिन चाहती हुई भी कुछ बोल नहीं पा रही थी। दोनो गाँव में पहुँच गए—लेकिन गाँव जैसे अब भी सो रहा था।

गोविन्द और ज़ैनब दोनों शेख पट्टी में, एक नीम के पेड़ के नीचे खड़े थे। दोनो ख़ामोश थे, और दोनो मुस्करा रहे थे। नीम की डाल से एक बच्चों का झूला लटक रहा था। दूर पर नूरेशेख़ चच्चा के चार बैल बँधे थे, वे सब कान उठाए, गोविन्द और ज़ैनब को देख रहे थे। दूसरी ओर आविद मामू का चौपाल था जिसमें सिर्फ़ उनका सबसे वफादार कुत्ता मोतिया, एक खाट पर सो रहा था।

रात बीतने जा रही थी, यह कुदरत की ईर्षा थी, रात बीतने जा रही थी, ज़ैनब का ख्वाब तड़पने लगा। रात बीतने जा रही थी, और उस समय शायद छोटी पट्टी से कोई औरत गीत गाने लगी थी—

"कँवल से भँवरा बिछुड़ल हो, जहाँ केहू न हमार।
भव-जल नदिया भयावन हो, बिना जल कै धार॥
न देखो नाव न बेड़वा हो, कैसे उतरब पार।
सत कै नैय्या सिरजावल हो, सुकीरति करवार,
कँवल से भँवरा बिछुड़ल हो, जहाँ केहू न हमार।"

गोविन्द-मंत्र मुग्ध होकर इस बहती हुई गीत को सुनने लगा। वह इस बहकर आते हुए गीत के पतले रेशम की डोर के सहारे, भावनाओं में उड़कर एक ऐसे निर्जन प्रदेश में पहुँच गया—जहाँ एक ओर तूफ़ानी समुद्र आवाज़ कर रहा है, दूसरी ओर ऊँचा पहाड़ है, तीसरी ओर खूँखार जंगल है—और बीच में एक अजीब सूनसान मैदान है। गोविन्द वहीं खड़ा हो गया और वह देख रहा है कि उसके सामने

कितनी औरतों, लड़कियों, सुहागिनियों, कुमारियों, बच्चियों, फूलों, मासूमों, बहनों, माँओं, दादियों की डबडबाई हुई आँखें बिछी हैं; उसके सामने कितनी बेबश, बेनाम, बेशक्ल औरतें और लड़कियाँ खड़ी हैं; जो अपनी रोती हुई आँखों से, ख़ून की कितनी मौन कहानियाँ कह रही हैं—कोई अपने हत्यारे पति की, कोई अपनी नागन सास की, कोई अपने विश्वासघाती प्रेमी की, कोई वहशी इन्सान की, कोई समाज की, कोई ग़रीबी की, और कोई क़िस्मत की।

और सब के ऊपर सब्बो बिछ गई। गोविन्द को लगा, जैसे सब्बो अपनी सहस्र आँखों से रोती हुई उसके सामने खड़ी हो गई। गोविन्द की आँखें डबडबा आईं। ज़ैनब परेशान होकर गोविन्द को देखने लगी और बार-बार पूछने लगी—"क्या है गोविन्द ?...गोविन्द क्या है?" गोविन्द चुप था, और अब भी अपनी भावनाओं की दुनियाँ में खड़ा होकर देख रहा है—सब्बो को; जो सब्बो अब अपने गोविन्द भइया से चिपटकर रो रही थी और उसे उलहना दे रही थी—भइया ! तुम क्यों नहीं आए ?...मैं मर गई, तुम बचा क्यों न सके ?

गोविन्द सिहर उठा और उसके मुँह से एक धीमी चीख़ निकल पड़ी, और वह ज़ैनब के हाथ को अपनी हथेलियों में लेते हुए कहने लगा—"सब्बो !..सब्बो की याद..सब्बो की मौत..हमारी हार..।"

"गोविन्द ! अब भूल जाओ..सब्बो को !" ज़ैनब ने अपनी ओढ़नी के आँचल से गोविन्द की आँखों को पोछते हुए कहा।

गोविन्द बेदना से कहने लगा—"ज़ैनब !..सब्बो..मुझे कभी नहीं भूलती।...उसकी मौत हमेशा मेरे कलेजे पर धुँआ उठाती रहती है।"..

"क्या कहा जाय, बेचारी की क़िस्मत को ?" ज़ैनब ने धीरे से कहा।

गोविन्द ने दूर आसमान की तरफ़ देखकर कर कहा, "मुझे लगता है कि अगर कहीं ईश्वर है, और अगर वह इन्सान की क़िस्मत भी

लिखता है...तो..तो...ज़ैनब !...वह ईश्वर या ख़ुदा ..मब्बो की क़िस्मत लिखते समय इतना रोया होगा, उसकी आँखों से दर्द के इतने आँसू बहे होंगे कि मैं कह नहीं सकता !''

ज़ैनब दर्द से भर आई, और वह चुप थी। गोविन्द ज़ैनब को देख रहा था, और उसके पाँव पर आबिद मामू का कुत्ता, मोतिया प्यार से चिहुँ, चिहुँ..चिं...चीं करता हुआ लोट रहा था।

"मेरे घर कब आवोगे ?" ज़ैनब ने पूछा।

"चाहे जब...हर समय आ जाऊँगा।" गोविन्द ने कहा।

ज़ैनब अब तक नीम की छाया में खड़ी थी—गोविन्द बड़ी पट्टी की ओर बढ़ रहा था। उसके पीछे-पीछे मोतिया कुत्ता दुम हिलाता हुआ चल रहा था।

ज़ैनब मदहोश अब भी नीम के नीचे खड़ी थी और गोविन्द उसकी आँखों से ओझल हो गया। ज़ैनब नीम तले खड़ी थी और उसे लग रहा था कि वह अब भी गोविन्द की गोद में बैठी है, गोविन्द उसे अपने अंक में छिपाए हुए...बड़ी पट्टी जा रहा है। ज़ैनब नीम की छाया में अब तक खड़ी थी और उसे लग रहा था कि गोविन्द उसकी बाहुओं में पंख बन गया है और दोनों नीले आसमान में उड़ते चले जा रहे हैं—जहाँ न किसी का डर है, न शंका, न किसी प्रकार की दिवारें।

ज़ैनब के शरीर में दर्द उठने लगा था, मीठा-मीठा दर्द जिसमें कराहने की तबीयत नहीं होती, जिससे दूर भाग जाने की तबीयत नहीं होती; बल्कि एक ऐसा मीठा-मीठा दर्द जिसमें आहे निकलती हैं, अँगड़ाइयों की लहरें फूटती रहती हैं।

ऐसा दर्द ज़ैनब के आज पहले पहल महसूस हो रहा था। गोविन्द से वह कितने दिनों से सच्चे दिल से, भाली आत्मा और समूचे अपने-पन से प्रेम करती थी। गोविन्द अब तक उससे दूर रहता था, उसे लगता था कि उसका कुछ खो गया है, वह जगतपुर में अकेली हो गई

है, उसकी कहीं तबियत नहीं लगती थी—लेकिन आज ज़ैनब को, उस नीम तले ऐसा लग रहा था जैसे उसकी आत्मा उसके शरीर से निकल कर गोविन्द में मिल गई; और गोविन्द उस आत्मा के साथ बड़ी पट्टी चला जा रहा है—अब तो ज़ैनब के पास केवल शरीर है—केवल शरीर··और उसमें भी मोठा-मीठा दर्द हो रहा था।

जैनब के दोनों हाथ, अनायास बड़ी पट्टी की ओर हवा में उठे—जैसे नन्हा सा बच्चा अपनी माँ की गोद के लिए अपने भोले हाथ उठता है—और ज़ैनब के मुँह से एक पुकार निकलते-निकलते रह गई कि ओ गोविन्द !··ओ गोविन्द मेरे राजा !!··मुझे मेरे घर पहुँचा दो··मैं अपने घर का रास्ता ही भूल गई हूँ··ओ मेरे बादशाह।·· मेरे नूर··! ··लौट आवो··लौट आवो मेरे नूर !

* * *

दिन भर ज़ैनब हैरान थी, लगता था कि अब गोविन्द से अलग रहकर एक क्षण के लिये भी नहीं जी सकती।

सुबह ज़ैनब, जब गाँव के उत्तर थारून की बाग़ में, ज़ैनी की आँखों में एक दवा डालने के लिए सुलोचना की पत्तियाँ लेने गई तो उसे अज़ीब सा लगा। वह झुककर जिस नन्हीं-कोमल-सुलोचना की पत्ती को तोड़ने के लिए बढ़ती—लगता कि उसे नींद आ गई है और वह किसी ख्वाब में सुलोचना की पत्ती तोड़ रही है—इसलिए उसकी चुटकियाँ बँध ही नहीं पाती थीं। वह बार-बार झुकती, और सिहर उठती—मानो गोविन्द बार-बार पीछे से उसकी कमर में हाथ डालकर उसे अपनी ओर खींच लेता।

बहुत मेहनत के बाद ज़ैनब, सुलोचना की चार पत्तियाँ तोड़ सकी और थककर ज़मीन पर बैठ गई। उसकी आँखों में गोविन्द नाच रहा था। वह स्वयं बेसुध होती जा रही थी। वह मौन बैठी थी और अपनी ख़ामोशी में सोचती जा रही थी—गोविन्द मेरा राजा है, उससे मेरी

शादी होगी...शादी। ज़ैनब सोचती-सोचती यहीं रुक गई। वह बेहद ज़ोर मार कर आगे सोचना चाहती थी, पर जैसे कोई बहुत बड़ा रोड़ा उसकी मानस-गति में आकर फँस गया हो और वह आगे कुछ सोच नहीं पा रही थी।

ज़ैनब अपनी दोनों हथेलियों को स्वयं कसती जा रही थी और सोचने के लिए बेक़रार थी। उसकी हथेलियों में सुलोचना की पत्तियाँ पिस गईं और उसकी ख़ुशबू से ज़ैनब के खामोश ओंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई और वह आगे सोचने लगी—शादी होगी...होगी... ज़रूर होगी...लेकिन कैसे ?

ज़ैनब फिर रुक गई और अब वह देखने लगी; उसकी आँखों के सामने—मुसलमान, और हिन्दू की दो अलग-अलग तस्वीरें नच गईं—जग्गतपुर नच गया, उसकी शेख़ पट्टी नच गई, उसकी अम्मी, उसके मामू का गाँव शाहपुर नच गया।

ज़ैनब ने एक बार सिहर कर अपने दामन में अपना सर झुका लिया और अपनी दोनों हथेलियों में क़िस्मत की रेखाएँ देखने लगी। स्वयं अपने से यह कहने की सच्चाई ढूढ़ रही थी कि ज़ैनब घबड़ाओ नहीं.. तुम्हारी क़िस्मत की रेखाएँ अच्छीं हैं...शादी की रेखाएँ तो इतनी अच्छी हैं कि क्या कहने !

ज़ैनब को कुछ साहस मिल रहा था और सुलोचना की सुगन्ध उसके दिमाग़ में आगे सोचने के लिए विवश करने लगी।

ज़ैनब फिर सोचने लगी—शादी। होगी...ज़रूर होगी...लेकिन कैसे ?...लेकिन कैसे क्या ?...गोविन्द मेरा बादशाह है...वह मुझसे अलग नहीं हो सकता...और अगर गोविन्द हिन्दू है...ब्रह्मन है...मैं मुसलमान हूँ..शेख़ हूँ..तो इससे क्या ?.. मैं भी हिन्दू बन जाऊँगी.. गंगा जल पीकर...तुलसी की पत्तियाँ खाकर !.. गोविन्द मेरा बादशाह है..मैं उसकी रानी हूँ...फिर तो हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न ही मिट गया...कोई सवाल ही नहीं उठता। और हाँ..मैं तो भूल ही गई...

मेरी दादी और अम्मी तो कहती थीं कि—हम शेख़ लोग..ब्रह्मन की औलाद हैं..हम किसी ज़माने के ब्रह्मन हैं। फिर क्या है ?

ज़ैनब ने मुस्कराते हुए कहा। और उसकी बदन में मीठी-मीठी अँगड़ाइयों की लहरें फूटने लगी; और ज़ैनब बेताब होकर धरती पर लेट गई। लेकिन उसी क्षण वह चौंक उठी। उसने देखा उसके सिर-हाने ढोर चराती हुई पांच लड़कियाँ हँसती हुई खड़ी हैं।

ज़ैनब घबड़ा कर बैठ गई। पाँचो लड़कियाँ खड़ी खड़ी, ज़ैनब को एकटक देखती हुई मुस्करा रही थीं।

सब लड़कियाँ एक उम्र की थीं—यही चौदह-पन्द्रह सालों की। सब लड़कियाँ एक तरह से खूबसूरत थीं, इसीलिए उनकी मुस्कराहट भी एक तरह की थी। और सब लड़कियों का पहनावा एक तरह होते हुए भी··उनमें थोड़ा थोड़ा अन्तर था।

सबो ने लहँगा पहना था, सबों ने ओढ़नी ओढ़ रक्खी थीं, सब के पैर नंगे थे, सब के बाल बिखरे थे, सब के हाथों में छोटे छोटे ढोर हाँकने के डन्डे थे, सब की आँखें मुस्करा रही थीं, सबसे बचपना फूट रहा था, सबके हाथों में चूड़ियाँ थीं, सब के गले में एक-एक काले धागे बँधे थे। सब के चेहरे पर धूल पड़ी थी।

लेकिन सबमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर था। किसी का लहँगा सादा था, किसी का बुटौलिया, किसी का छत्तीस फेरन ढंग का; किसी का गोटे दार, किसी का कामदार। किसी की ओढ़नी सब्ज थी, किसी की धानी, किसी की गहरी हरी, किसी की आसमानी, किसी की बादलों जैसी। सब के कसे हुए चुस्त झुल्वे स्वदेशी थे, पर अलग अलग रंग के, अपनी-अपनी ओढ़नी से मेल खाते हुए।

एक के पूरे पैर में मेहदी की सुर्खी थी, रंगी हुई एड़ियों में मानो बसंत बँधा था। एक के सिर्फ पंजों में मेहदी लगी थी और ऊपर मेहदी के छोटे छोटे बुन्दे झलक रहे थे। एक की सब उँगुलियों में

मेंहदी लगी थी, ऊपर तीन-तीन रेखाएँ चमक रही थीं, लेकिन पंजों से फूटी हुई मेंहदी की लाली की धाराएँ पीछे एड़ियों तक जाते-जाते बीच ही में रुक गए थे। एड़ियाँ सफेद छुट गई थीं और एक का पैर बिल्कुल सादा था, धूल से सना हुआ—उदास। एक के माथे पर सुहागबिन्दी थी, एक की माँग सिन्दूर से लाल थी, एक के माथे पर केशर बिन्दीं थी, पर माँग सफेद थी एक का लिलाट चमक रहा था, उसके बिखरे हुए बालों के बीच, उसकी मुस्कराती हुई सफेद माँग पर मानो अमृत बरसने को था। लेकिन एक का माथा सूना था, उदास ललाट पर कई सिकुड़न की रेखाएँ खिंच गई थी, बिखरे हुए बालों में उसकी माँग मानो खो गई थी।

ज़ैनब, इन पाँचो लड़कियों से घिरी हुई ज़मीन पर हँसती हुई बैठी थी। सब लड़कियाँ, ज़ैनब को देख रही थीं, ज़ैनब उन पाँचो की अल्हड़ मुस्कराहट को देख रही थी।

"आप लोग ढोर चरा रही हैं?" ज़ैनब ने पूछा।

सब लड़कियों ने हँसकर स्वीकार किया और उनमें से तीन ने एक स्वर में पूछा—"और आप यहाँ झुकी-झुकी क्या कर रही थीं?"

"मैं आँख की दवा के लिए सुलोचना की पत्तियाँ तोड़ रही थी!"

"लेकिन आप पर तो जैसे किसी का जादू लगा है?" एक ने जल्दी से कहा।

"जादू!···" ज़ैनब ने धीरे से कहकर दूर सुलोचना की पत्तियों में देखने लगी—जैसे गोविन्द खूबसूरत बादलों में छिपकर मीठा बाँसुरी बजा रहा है और ज़ैनब हैरान होकर उसे बादलों के बीच ढूढ़ रही है!

"आप रूठ गईं?...मैंने झूठ तो नहीं कहा है?" उसी लड़की ने फिर कहा।

ज़ैनब ने फिर जग कर कहा—"नहीं,···नहीं आपने ठीक कहा है;···लेकिन आप को कैसे किसी का जादू मालूम?··क्या आप भी इसकी·····।"

दूसरी लड़की ने फौरन बात काटते हुए कहा; "अरे पूछिए न !•••रूपा•••एक बादशाहपुर वाले से••जादू खा गई है•••और उसकी याद में दिन रात तड़पती है।"

रूपा का मुँह लाल हो गया••वह शरमा कर इतनी हल्की हो गई कि उसने फौरन अपना सर नीचे कर, नीरी को ढकेल दिया और प्यार की झुँझलाहट में कहने लगी—"अपना नहीं कहती !•••जो मुरारपुर में•••।"सहसा तीसरी लड़की नैना ने बीच ही में रूपा के मुँह पर अपन हाथ रख दिया, और सब हँसने लगीं।

लेकिन नीरी ख़ामोश हो गई थी, लगता था कि वह अभी रो देगी। उसकी आँखें भर आईं थीं ! ज़ैनब ने इसको देख लिया और उसने स्नेह से पूछा—"क्या हो गया नीरी बहन तुम्हें ?······नैना ••तुम्ही बताओ•••नीरी की आँखें क्यों डबडबा आईं ?"

"पूछो न बहन ज़ैनब ! हर जगतपुरवालियों की अपनी करुण कहानियाँ होती हैं !••••बेचारी नीरी सचमुच मुरारपुर में अपने एक ऊँचे बिरादरी के ख़ूबसूरत नौजवान से मुहब्बत करती थी•••लेकिन बदक़िस्मती !•••पिछले फागुन में इसकी मँगनी••••ऊँचे गाँव के एक मुखिया से हो गई है !"

"मुखिया से !" ज़ैनब जैसे चीख़ उठी।

"जी हाँ•••मुखिया से,•••यह उसकी दूसरी शादी है।"

ज़ैनब ने बढ़कर ख़ामोश नीरी को अपने हाथों में खींच लिया। नैना ने और दो शेष लड़कियों को परिचित कराते हुए कहा—"इसका नाम जमुना है••••इसकी शादी•••पिछली गर्मियों में पहाड़पुर हुई है••,इसका दूल्हा•••बहुतअच्छा !•••उसे बहुत प्यार करता है•••अब वह कलकत्ते में दरबान हो गया है•••बरसात के बाद वह अपनी जमुना को भी कलकत्ते ले जायगा !"

"और रूपा ?"ज़ैनब ने बीच ही में मुस्कराते हुए पूछा।

"रूपा !···जमुना ने मुस्करा कर कहा, "रूपा···के दादा भी बहुत अच्छे हैं कहते···रहते हैं—

"दुनियाँ चाहे जितने खिलाफत करे!··चाहे जात बिरादरी ही क्यों न छूट जाँय···मैं अपनी प्यारी रूपा बेटी की शादी··जहाँ वह चाहती है; वहीं करूँगा···बाशाहपुर ही।"

रूप मुस्कराकर जमुना से लिपट गई और उसके मुँह पर अपना हाथ रख दिया। ज़ैनब की रूह में सिहरन उठने लगी। उसकी आँखों के सामने कितने सुनहले पर्दे खिंच गए,··जिसके बीच में, ज़ैनब देखने लगी कि उसके प्यारे मरहूम अब्बा अपनी सफ़ेद दाढ़ी में अब भी अपने मुहब्बत का खजाना छिपाए हुए···ज़ैनब को देखने लगे··और धीरे-धीरे ज़ैनब के पास आकर अपनी बेटी को गोद में उठा लिया··और ठीक रूपा के दादा की तरह प्यार से कहने लगे थे कि बेटी ज़ैनब !·· घबड़ाओ नही··चाहे जो हो···तुम्हारे आँचल को तुम्हारे गोविन्द के ही दामन से बाँधूगा··रोओ नहीं··मेरे देखते आँखो मैं आँसू न लाओ बेटी !

ज़ैनब मुस्करा उठी और उसने रूपा से धीरे-से कहा—"जगतपुर में तुम बड़ी किस्मतवर हो रूपा !"

नैना ने पाँचवी लड़की की ओर संकेत करते हुए कहा—"इसका नाम गंगा है ··बेचारी जब दो साल की थी तभी इसकी शादी बड़े बाड़ा हुई थी··अभागयवश···तीसरे ही साल यह विधवा हो गई।"

ज़ैनब ने दर्द से गंगा की ओर देखा। गङ्गा बाहुओं में अपना मुँह छिपाए धीरे-धीरे रो रही थी। उसकी रुलाई देखते ही सब की आँखें डबडबा आईं—जैसे आज जगतपुर के उमड़ते हुए आँसू अपनी धरती माता से फरियाद कर रहे थे कि माँ जगतपुर का समाज—बदल दो···जगतपुर वालों को समझा दो माँ···कि ये बचपन

में क्यों शादी कर देते हैं··? और एक क्वाँरी दूल्हन को सदा के लिए क्यों वैधव्य की आग में तड़पने के लिए छोड़ देते हैं?

सब चुप थीं; ज़ैनब से लिपटकर बैठी हुई नीरी चुप थी जिसकी आँखों में मुरारपुर वाला आँसू बन गया था। नैना चुप थी, रूपा चुप थी, और रूपा से लिपटी हुई जमुना चुप थी··लेकिन··गङ्गा अपनी ख़ामोशी में भी इतनी जोर जोर से रो रही थी कि सुलोचना की पत्तियाँ तरस खाने लगी थीं। और उसके चरते हुए ढोर··उसके आस पास खड़े हो गए थे।

उसी समय गाँव की ओर से जमुना और नैना के दो छोटे-छोटे भाई हीरा और मोती उन्हें पुकारते हुए बाग की ओर आ रहे थे।

सब उत्सुकता में खड़ी हो गईं। हीरा और मोती दौड़ते हुए बाग में पहुँच रहे थे।

जमुना ने दूर से ही पूछा—"क्या है हीरा?"

"दीदी!··" हीरा और मोती ने एक स्वर में कहा,

"दीदी···राजासाहब··गाँव में अनाज बँटवा रहे हैं··मुखिया साहब के दरवाज़े पर कई गाड़ियों में अनाज आया है!···चलो घर चलो दादा ने बुलाया है!"

ज़ैनब ने फिर से सुलोचना की पत्तियाँ तोड़ीं और सबके साथ गाँव की ओर बढ़ने लगी। हीरा और मोती ढोर सँभालने लगे।

* * *

गाँव में प्रश्न छिड़ा था कि राजा साहब का अनाज लिया जाय कि नहीं। इस विषय के सम्बन्ध में जगतपुर में दो दल थे। एक बहुत बड़ा दल; जो जगतपुर की बूढ़ी आत्माओं से बनी थी, जिसमें जगतपुर के ठीकेदार अधिक थे, परम्परा और अंधविश्वास के अधिक भक्त थे।

इस दल का मत था कि राजा साहब का अनाज ले लिया जाय' क्योंकि आखिरकार राजा ही अन्नदाता होता आया है। क्योंकि राजास ाहब अब जगतपुर से इतने खुश हैं कि वे इस अनाज को जगतपुर वालों से वापस न लें गे; उन्हें इस अनाज पर कोई कर नहीं लेना है; फिर तो जगतपुर की कुछ छोटी पट्टी, कुछ बड़ी पट्टी कुछ शेख़ पट्टी अनाज की तंगदस्ती में भी पड़ा है ।

दूसरे दल में, जिसकी आत्मा जगतपुर की नई आत्माएँ थीं, जवानी की आत्माएँ थीं, सब्बो की वहशी मौत पर तड़पने वाली आत्माएँ थीं; जिनपर राजकुमार ने घाव किया था, जिनकी चोटों से अभी ताजे ताजे ख़ून टपक रहे थे, जो अपने भीतर क्रान्ति की आग लिए थे; उनका मत था कि हम भूखों मर जएँगे पर इस पापी का अन्न न खाएँगे। हम मानते हैं कि यह अन्न हमी लोगों की पैदावार के न जाने कब के इकट्ठा किए हुए सूद हैं; यह अन्न हमारे हैं, जगतपुर की धरती के हैं। लेकिन चूँकि इस अन्न पर राजमहल के पापों, अन्यायों की बदबूदार छाया पड़ी है। इन अनाज की बोरियों के पीछे जगतपुर के वर्ग संघर्ष की विजय को अपूर्व पराजय देने की भावना है, झूठी सहानुभूति देकर अपनी ताक़त को मज़बूत करने की नीति है! सब्बो की मौत पर एक पर्दा डालने की चाल है। ज़मीदारी टूट जायगी, तालुक़ेदारी चली जायगी, भविष्य के आने वाले संकटों के प्रति एक छोटा मोटा हथियार है; इसलिए हम लोग भूख से तड़पते हुए भी, अपनी नई खेती की हरियाली को देखते हुए जीलेंगे।

फिर अब तो अषाढ़ बीतने को है। हमारी नई फसल क्षण-क्षण बढ़ती जा रही है। इसकी निकाई हो रही है, इस वर्ष इसमें घास भी नहीं है··बहुत जल्द सावन आएगा फिर भादों··फिर क्या··गरीबों के जीने के लिए··मक्का,··साँवा···कोदो ककड़ी वगैरह तैयार मिलेंगी··और फिर क्वार में ही तो हमारी धान की फसल··।

गोविन्द, छोटी पट्टी में, एक आम की छाया में बैठकर, जगतपुर

की नई आत्माओं के साथ इसी प्रकार की बातें करता जा रहा था। उसी समय मुखिया बद्री पाँडे, नम्बरदार और सरपंच वगैरह इधर ही आते दिखाई दे रहे थे।

पास आते ही, मुखिया ने मुस्करा कर कहा—"अरे! गोविन्द, चलो अनाज बटँवा दो गाँव में!··पूरे ३०० मन अनाज है··जरा देखो राजा की उदारता!"

गोविन्द ने बीच ही में कहा, "बहुत दिनों से देख रहा हूँ राजा और राजकुमार की उदारता!··उनकी यह इन्सानियत तब कहाँ थी कि जब उन्होंने जगतपुर को सड़ा सा बीज दिया था, जगतपुर की फस्ल नष्ट की थी, और जब जगतपुर पहली भूख से तड़पा, तब उनकी यह उदारता कहाँ थी?··तब उन्होंने यह ग़ल्ला क्यों नहीं दिया?··· तब तो राजा ने यह किया कि लाल साहब के तिलकपुर वाले बखार में ही आग लगवा दी··उसका अमिट चिन्ह यह है।" गोविन्द ने अपने जले हुए हाथ के दाग़ को दिखाते हुए कहा।

"लेकिन जगतपुर में बहुत से लोग राजा के इस गल्ला लेने को तैयार हैं!" सरपंच और लम्बरदार ने कहा और मुखिया ने गर्व से इसका समर्थन किया।

उस समय तक उस आम की छाया, और उससे दूर, छोटी पट्टी और शेख़ पट्टी की बहुत सी ग़रीब औरतें, उनके छोटे-छोटे नंगे और धूल से पुते हुए बच्चे खड़े हो गए थे। मुखिया ने फिर पूछा—"गोविन्द ग़ल्ला बँटवाने चलते हो कि नहीं?"

"नहीं जाता!" गोविन्द ने कहा, "क्यों··इसके लिए भी राज्यदंड है क्या?··मैं नहीं जाता··आप लोग जगतपुर में मुनादी करवा दीजिए—जिसे ग़ल्ले की ज़रूरत होगी··वह ले लेगा!"

"पूरे जगतपुर को ग़ल्ले की ज़रूरत है,—और पूरा जगतपुर राजा का ग़ल्ला लेगा! मुखिया ने कहा, और उन्होंने अर्थभरी दृष्टि से वहाँ

के लोगों को देखा। वहाँ के एकत्रित जवानों ने क्रोध से एक स्वर में कहा—"हमें पाप का गल्ला नहीं चाहिए ! जो राजा के कुत्ते हों··वही उनके अन्न खाएँ !"

मुखिया, सरपंच और लम्बरदार तमतमाए हुए बड़ी पट्टी की ओर बढ़ने लगे। गोविन्द चुप था, और आस-पास से आती हुई औरतें, वहाँ की खड़ी हुई लड़कियाँ और बच्चे अपनी भोली वाणी में एक-एक करके गोविन्द से कहने लगे—

"गोविन्द भइया !··कल ही से··यह मुखिया··हम लोगों को राजा के अनाज लेने के लिए धमका रहा है ! कहता है कि राजा की रियाया बनकर रहो; और खूब खाओ··और खूब मस्त रहो··इन बिगड़े हुए जगतपुर वालों से दुश्मनी लेना है··इन्हें मिटाना है !!"

"लड़कियाँ सहमी हुई, गोविन्द से उलहना देने लगीं—

"गोविन्द भइया ! लम्बरदार और सरपंच बार-बार हम लोगों की पट्टी वालों को तुम्हारे ख़िलाफ़ बर्गला रहे हैं ! और सबसे अनाज लेने को कह रहे हैं !"

गोविन्द ने मुस्कराते हुए कहा, "बड़े अच्छे हो तुम लोग !··लेकिन··इसके बारे में जैसा तुम्हारे माँ-बाप करेंगे; वही होगा··लेने दो अनाज़'··ठीक ही है !"

गोविन्द कुछ देर तक अपनी नई फ़सल के बारे में बातें करता रहा, फिर यहाँ से किशन के घर चला आया, कुछ क्षणों तक पारो भाभी के पास बैठा रहा फिर अपने घर लौट आया।

दिन ढलता जा रहा था, गोविन्द अपनी दालान में चारपाई पर लेटा था और सूरा बहन धीरे-धीरे उसके कबके तैल्य-शून्य मस्तक पर धीरे-धीरे तेल लगा रही थी !

"पिता जी कहाँ है, दीदी ?" गोविन्द ने धीरे से पूछा।

"पिता जी पहाड़पुर गए हैं !"

"पहाड़पुर ?"

"हाँ···वहाँ के द्वारका मिश्र, जो बड़े से ज़मीदार हैं न,··तुम्हारी शादी के लिए बहुत दौड़ रहे हैं!"

"मेरी शादी ?" गोविन्द चौंककर उठ गया, जैसे किसी ने अकस्मात उसे गर्म सलाखे से छू दिया हो !

गोविन्द क्षण भर तक सरस्वती के मुँह को अपलक देखता रहा।

"मुझे क्यों इस तरह देख रहे हो ?:,, सरस्वती ने प्यार से कहा, "लेट जाओ··तुम्हारे सर पर का तेल तो मिला दूँ"

गोविन्द, चुपके से लेट गया, सूरा दीदी मुस्करा कर कहने लगी "पहाड़पुर वाली शादी बहुत ही अच्छी, पिछले वर्ष जब मैं पहाड़पुर की शिवरात्रि के मेले में गई थी, मैंने··पद्मावती को देखा था, शिव की पूजा करने आई थी··बहुत ही··सुन्दर—··सुशील··बहुत··।"

"पद्मावती कौन ?" गोविन्द मानो अब जगा था।

"पद्मावती।··पद्मावती··द्वारका मिश्र की एकलौती लड़की, सुना है··पिता जी कह रहे थे कि वह भी दसवाँ दर्जा पास है··और··।"

गोविन्द सचेत होगया। वह अपनी उगलियों से अपने बिखरे हुए बालों में कंघी करते हुए कहने लगा, "दीदी !··पिता जी से कह दो कि··वे इतनी बड़ी गल्ती न करें··मेरी हालत देख कर कुछ मेरे लिए सोचें··मुझे एक तरफ एम०ए०करना है, उसके लिए स्वालम्बन का सहारा लेना है, दूसरी ओर जगतपुर की यह विकट समस्या।·· मेरे पीछे··इतने बड़े-बड़े दुश्मन !"

गोविन्द का मुँह तमतमा आया था, जैसे उसे किसी ने अभी मारा हो!··खूब मुँह-मुँह मारा हो।

गोविन्द चुपचाप अपने कमरे में चला गया, सरस्वती ने पास आकर गोविन्द को प्यार से पकड़ते हुए कहा, "मुझसे रूठ गए भइया क्या ?··मुझसे न रूठो··।"

गोविन्द सरस्वती के सामने सर नीचा किए हुए खड़ा था; और जाने क्या-क्या सोचने लगा।

"बोलो गोविन्द भइया !··मुझसे रूठ गए ?" सरस्वती ने कोमल वाणी से कहा, "रूठो नहीं··।"

"मैं रूठता नहीं दीदी !"गोविन्द ने गंभीरता से कहा, "मुझे चिन्ता करनी पड़ती है।"

"पगले कहीं के !" सरस्वती ने मुस्करा कर कहा, "तभी तो अपनी भरी पूरी बदन सुखाते जा रहे हो··बोलो··पगले !··क्या ज़ैनब से शादी करोगे ?"

"दीदी !"गोविन्द ने सरस्वती दीदी से लिपट कर अजीब पीड़ा से कहा।

सरस्वती मुस्करा रही थी, गोविन्द अन्तर्लोक में मुस्कराता हुआ सोच रहा था—गोविन्द, एम०ए०··शेख़ ज़ैनब··एक प्यारी लड़की··दो पवित्र इन्सान··शादी मंगल शहनाई··ज़ैनब मेरी दूल्हन ज़ैनब मेरी धर्मपत्नी··ज़ैनब··मेरी धरती···ज़ैनब··जशोदा·· ज़ैनब··जानकी··ज़ैनब·· एक नया घर··नयी दुनियाँ··

गोविन्द फिर अनायास ही मुस्करा उठा और उसने जल्दी से दीदी के दोनों हाथों को अपने हाथों में प्यार से दबाते हुए कहा, "दीदी ! ··सूरा दीदी !!··मैं जब एम०ए०पास कर लूँगा तब तुझे मोटर में घुमाऊँगा··रेलगाड़ी पर घुमाऊँगा··चारो धाम कराऊँगा·· बद्री नाथ, रामेश्वरम्, जगन्नाथ जी, द्वारकापुरी··और सब तीर्थ·· और··।"

इसके आगे गोविन्द न जाने क्या और कहने वाला था, पर उसके ओंठ फड़फड़ा कर रह गए··आवाज़·· ओठों पर बिखर कर रह गई..।

"ईश्वर तुम्हारी मनोकामना पूरी करे, गोविन्द भइया।" सरस्वती ने अदृश्य भगवान के सामने अपना सूना अँचल पसारते हुए कहा, "तुम जुग-जुग जिवो मेरे...राजा भइया !..तुम्हारे दुश्मनों का सर नीचा हो"..!

"और दीदी...!" गोविन्द के ओंठ फिर फैलकर रह गए !

"कहो...और...क्या कहना चाहते हो भइया ?"

"कह दूँ दीदी ! मेरी अच्छी दीदी !..मेरा साथ दोगी न ?"

"हाँ...हाँ..कहो तो सही !"

"दीदी !..तब मैं खूब रुपया कमा लूँगा..और तब..।"गोविन्द की वाणी फिर रुक गई ।

सरस्वती को हँसी आ गई, उसने मुस्कराते हुए कहा—"हाँ..हाँ कहा न !...डर किस बात की..ज़ैनब को अपनी दूल्हन बनाकर किसी शहर में रहने लगोगे न ? यही बात न ।..कह दो...!"

"नहीं..और बात है..मेरी दुखिया दीदी !"

गोविन्द ने सूरा दीदी को अपने दामन में खींच लिया; और धीरे-धीरे कहने लाग.."मेरी रानी दीदी !...और..और..मैं खूब रुपया कमा लूँगा..और..तब मैं...तब मैं..तुम्हारी फिर से शादी करूँगा दीदी !"

गोविन्द ने यह कहकर बहुत ज़ोर से सरस्वती को अपने दामन में चिपका लिया और क्षण भर वातावरण शान्त हो गया । जैसे गोविन्द, अपनी बेक़सूर विधवा दीदी को अपनी आत्मा में छिपाकर किसी स्वर्ग के कोने में छिप गया हो ।

सरस्वती सामने खड़ी होकर, नतशिर चुप हो गई थी । उसकी आँखों से बड़े-बड़े आँसू के बूँद धरती पर गिरने लगे थे । गोविन्द सामने खड़ा होकर चुपचाप उन आँसुओं की मौन कहानी सुनने लगा ।

दूसरे ही क्षण गोविन्द ने फिर दीदी को अपने दामन में खींचते हुए कहा—"रो क्यों रही हो, दीदी !..मुझे बताओ !"

सरस्वती रुँधे गले से कहने लगी—"भइया ! तुम जितनी ऊँचाई पर खड़े होकर सोचते हो...दुनियां उतनी ही नीचे खड़ी होकर सोच रही है !...तुम्हारी ऊँचाई कैसे निभ सकेगी ?...मेरे राजा भइया !

तुम्हारी एक शेख लड़की से मुहब्बत...तुम ब्राह्मण परिवार के..तुम्हारे पूर्वज राजा के पुजारी..कट्टर सनातन धर्मी..तुम...और..जगतपुर की बड़ी पट्टी !.."

"यह सब क्या कह रही हो दीदी ?" गोविन्द ने पूछा।

"मैं सोच रही हूँ भइया !...कि तुम अपनी ऊँचाई पर कितने अकेले हो !...तुम्हारा कौन साथ देगा ? बल्कि दुनियाँ..इसका भरसक विरोध करेगी !..तुम और अकेले कर दिए जाओगे !"..

"मुझे सब मंजूर है..दीदी !...लेकिन मैं तुम्हारी फिर से शादी करूँगा..मैं अपने रास्ते पर अकेला चलूँगा..और अकेला ही चलते-चलते अपने रास्ते पर घिस कर मर जाऊँगा..कमसे कम एक नया रास्ता तो बना लूँगा दीदी ! हो भी सकता है कि एक दिन अँधकार में भटकती हुई दुनियाँ..उसी रास्ते पर चल पड़े और सूने रास्ते पर पड़ी हुई मेरी लाश को दुआ भी दे !"

"मत अशुभ बातें करो..भइया !" सरस्वती ने आँचल से अपना आँसू पोंछते हुए कहा, "मरें तुम्हारे दुश्मन ! मरें तुम्हारे विरोधी.. ! तुम बहुत दिन जिओ मेरे राजा भइया !!"..ईश्वर तुम्हारा साथ दे..।"

"तो पिताजी पहाड़ गए हैं दीदी ?" गोविन्द ने बात का सिल-सिला बदलते हुए कहा !

"हाँ,..वे तो आज कुछ तड़के ही गए हैं !..करते भी क्या बेचारे..उधर द्वारका मिश्र जी पीछे पड़े हैं और इधर बड़ी पट्टी के तमाम बूढ़े,..मुखिया, लम्बरदार, सरपंच शेख पट्टी के भी कुछ लोग पिता जी के पास आ आकर उनके नाको दम कर दिया है कि..अपने गोविन्द की शादी क्यों नहीं कर डालते ?...जात-बिरादरी..की इज्ज़त मिट्टी में मिलाने को लगे हो क्या ?..आदि आदि बातें रोज़ बरोज़ जब तुम घर पर नहीं रहते तब ये नमकहराम लोग यहाँ पिल पड़ते

हैं..और घंटों पिता जी को डराते हैं, धमकी देते हैं,..उनके कान पका डालते हैं !"

"लेकिन पिता जी मुझसे क्यों नहीं कहते ?"

"इसमें वे बेचारे तुमसे क्या कहें ? सोचो तुम्ही··पिता जी की परिस्थिति सोचो··उनका स्थान सोचो··उनके संस्कार सोचो··।"

"लेकिन ये जगतपुर वाले मेरे सामने क्यों नहीं··पिता जी को धमकाते ?··अगर वे सही सलाह देते हैं··तो वे चोरों की तरह मुझसे छिपते क्यों हैं ?··उन्हें जो कुछ कहना हो मेरे सामने कहें !"

"वे तुम्हे खूब जानते हैं, मेरे गोविन्द भइया !···नाराज़ न हो !··"

"पहाड़पुर से पिता जी कब तक लौट आँएगे··दीदी ?"

"शाम तक"

"उनसे मेरी रक्षा करना··दीदी !··मेरी अपनी ऊँचाई पर खड़ा रहने की ताक़त देना··तुम मेरे साथ हो न दीदी ?" गोविन्द ने प्यार से पूछा ।

"क्यों नहीं हूँ भइया ?··तुम्ही तो मेरे ईश्वर हो !"

"आज से मैं बहुत मोटा हो जाऊँगा दीदी ! देखती रहना··सच कहता हूँ ।"

गोविन्द मुस्काने लगा, सरस्वती दीदी आशीर्वाद देने लगी ।

११

और दूसरे दिन गोविन्द को मालुम हुआ कि राजा के दिए हुए सौ मन गल्ले में से जगतपुर ने सिर्फ़ सौ मन गल्ला लिया है।

गोविन्द यह खबर सुनते ही झूम उठा। उसने मन ही मन जगतपुर की श्रेष्टता तथा चरित्र बल का अभिवादन किया। आज उसका भूखा जगतपुर उसके सामने उस राजा की तरह झूम उठा जो किसी पर्व में अपना सर्वस्व दान करके भिखारी के रूप में भी गर्व से ऊँचा सिर उठाए रहता है।

वह जगतपुर की धरती के प्रति श्रद्धा से भर गया' और अब वह गर्व से मुखिया बद्री पाँडे के घर की ओर चल पड़ा।

पाँडे जी अपनी दालान में कई आदमियों के साथ बैठे थे। अहिल्या दरवाज़े पर किवाड़ की आँड़ में चिन्तित मौन खड़ी थी। गोविन्द को देखते ही, पाँडे जी ने अपना सर झुका लिया, जैसे उन्होंने गोविन्द को देखा न हो। उधर अहिल्या गोविन्द को देखते ही बिल्कुल दरवाज़े पर स्पष्ट होकर मानो उसे पुकारने लगी—ओ गोविन्द बाबू! '' कैसे हो?' 'आवो मैं तुम्हारे थके हुए पैर को मल दूँ' 'सूखे हुए पैरों को अपने आँसुओं से धो दूँ' 'आज रात को तुम्हारी चर्चा मात्र से इस मुखिया—मेरे पति ने मुझे फिर पीटा है! और इसने मुझे उस रात की तरह रोने भी नहीं दिया!!

गोविन्द ने बरामदे के नीचे से ही मुखिया जी को नमस्कार किया। मुखिया जी ने झट सर ऊँचा करते हुए कहा—"अब कहाँ आए हो?' 'मैं अब इस बचे हुए राज़ा के गल्ले को जगतपुर के किसी भी आदमी को न दूँगा' 'सौ मन बाँटने के बाद लोग गल्ला माँगते ही रह गए' 'लेकिन मैं न देसका; न अब तुम्हारे सिफारिश से दूँगा।"

"आप क्या पागलों की तरह बातें कर रहे हैं"? गोविन्द से रहा न

गया। उसने कहा, "मुबारक रहे यह दो सौ मन ग़ल्ला आपको··जगतपुर को अब इसकी ज़रूरत नहीं··जगतपुर अपनी नई फसल देख-देख कर अपने दिन काट लेगा।"

"वाह! रे तेरी नई फसल!" मुखिया जी ने हाथ चमकाते हुए कहा, "भली हो जायगी तुम्हारी फसल!···कल के लौन्डे!···जब से नई फसल, नई फसल, नए बीज, नई खेती की आवाजें लगानी शुरू की···तब से मटिया मेट कर डाला; राजा प्रजा को दुश्मन बना डाला, अपना धर्म और सनातन फूँक डाला! इसे नहीं देखते कि हमारे देवता हमसे रूठे हैं, हमारे ही पाप-कर्म से ग्राम देवता जगतपुर के दुश्मन बन गए हैं, सब कुछ मटिया मेट होता जा रहा है, लेकिन आंखें नहीं खुलती?"

"कैसी आंखें नहीं खुलतीं?" गोविन्द ने बहुत इतमीनान से पूछा।

"यह भी मेरे बताने की बात है!" मुखिया ने कहा, "सोचो तो सही जब से तुमने अपने रूठे हुए टीले. क्रोधित देवताओं की परवाह न करके नई खेती, नई फसल का कार्य आरम्भ किया तबसे शुरू ही में···दैव-क्रोध से तिलकपुर का बखार ही जलने लगा, मंडी में अनयास ही आग लग गई, तुम मरते-मरते बचे!···जब बीज जगतपुर में बँटा···तब तुम एक मिनट में बीमार हो गए···मरते-मरते बचे···किशन का घर बर्बाद हो गया···उसकी बहन सवित्री मरी···अनायास···अभी तक मौत के कारण का पता भी न चल सका···और···और···।"

मुखिया जी और न जाने क्या कहना चाहते थे, सहसा उनकी वाणी मौन हो गई। गोविन्द ने मुस्करा कर कहा, "कहते जाइए!···रुक क्यों गए?···कहिए और जो कुछ कहना है।"

"कहना क्या है!" मुखिया के साथ और बैठे हुए लोगों ने सम्मिलित स्वर में कहा, "जगतपुर के टीले की पूजा करनी होगी!···पुराने

जगतपुर की आत्मा को प्रसन्न करनी होगी !' - 'खंडहर को मनाना होगा' 'धरती के एक-एक देवता को प्रसन्न करना होगा' 'नहीं तो जगतपुर फिर एक नया टीला बन जायगा' ' '!"

गोविन्द ने तत्काल गंभीरता से कहा, "मुझे इसकी चिन्ता नहीं ! ' ' अगर इस जगतपुर का भी नया टीला बनेगा ' ' तब एक नया जगतपुर फिर इसके पार्श्व में बसेगा; जिसमें झूठी धार्मिकता के पीछे नंगी मानवता में आग नहीं लगाई जायगी। एक आत्मा को खा जाने की असफल चेष्टा से उत्पन्न प्रतिशोध की ज्वाला कभी जल न सकेगी। झूठ और विश्वासघात की अंधी भावना कहीं मर जायगी और उसमें से सत्य की आवाज़ आएगी। झूठ और पापी के शरीर से बहुत दूर से बदबू निकलेगी। ' ' मैं तो मानता हूँ कि यह बूढ़ा अंधविश्वासी जतगपुर ढहकर एक और नया टीला बन जाय !"

"तुमतो यही चाहते ही हो !" लोगों ने क्रोध से कहा।

"हाँ मैं ज़रूर चाहता हूँ" गोविन्द ने आँखों में उदासी लाते हुए कहा, "मैं चाहता हूँ ' ' जगतपुर का एक नया टीला बने ' ' जिसकी एक लम्बी सी जबान हो; वह सब लोगों के पाप-पुण्य को बताता रहे ! ' ' उसकी आँखें सब पापियों को देखती रहें ' '। जगतपुर एक नया टीला बने जिसके दामन में दो ऐसे देव मन्दिर के खंडहर शेष हों ' ' जो पापी और चोर को देखते ही जोर से चिल्ला उठें कि ऐ सोने वाले जगतपुरी ! ' ' यह चोर भागा जा रहा है, वह पापी ! अपने महलों में खड़ा है जो एक पवित्र लड़की को जिन्दा खाना चाहता है ! ' ' जिसने यहाँ की धरती के प्रति विश्वासघात किया है ' ' यह है चोर ! ' ' वह है ' ' वह है फरेबी, चालबाज, ' ' मक्कार ' ' वहशी ' ' ।"

"यह पागल है ' ' लगता है ' ' देवताओं का कोप इसके दिमाग़ पर भी हो गया है ! ' ' " मुखिया ने उठते हुए कहा।

और सब ऊपर से नीचे · · उतर आए · · आसमान के नीचे खड़े हो गए।

"तो तुम गाँव को टीला करवाने की कामना रखते हो?" मुखिया ने ताव से कहा।

"क्यों नहीं · · ?" गोविन्द ने व्यंग करते हुए कहा, "एक जगतपुर को महर्षि हिम्मतसिंह ने गद्दारी करके टीला बनाया है, राजकुमार विजय उन्ही हिम्मतसिंह का ही तो रक्त है · · यह इस जगतपुर को नष्ट करके दूसरा टीला बनवाएगा! खुशी की बात है राजकुमार के इस कर्म में आपका भी सहयोग है · ·। बनवाइए · · जगतपुर का दूसरा टीला! · · लेकिन याद रखिए · · किसी भी दिन, किसी भी रात को राजकुमार को साथ लेकर सुनिए · · जगतपुर · · रात के असीम सन्नाटे में अपनी कहानी स्वयं कहता है, · · · · राजकुमार विजय और ज़ैनब की, मेरी और ज़ैनब की, जगतपुर के नौजवानों और आप लोगों की · · राजा और प्रजा की · ·।"

गोविन्द यह कहकर धीरे-धीरे, सीधे उत्तर की ओर बढ़ने लगा। उसी समय मुखिया ने चिल्ला कर कहा, "लेकिन सुनते जाओ · · हम लोग जानते हैं · · तुम लोग बच्चे हो · · अभी गर्म खून है · · राजा साहब की ओर से, हम लोग इसी दो सौ मन गल्ले से जगतपुर के ग्राम देवताओं की पूजा करेंगे।

"पूजा! · · ग्राम देवताओं की, ! · · "गोविन्द ने दर्द से कहा और जैसे उसके बढ़ते हुए पैर में बिच्छू ने डंकमार दी हो! और गोविन्द मुखिया को अपलक देखता हुआ खड़ा हो गया।

मुखिया ने गर्व से फिर कहा, "हम लोगों को जगतपुर को सत्यानाश होने से बचाना है · · इसलिए इसी अन्न से जगतपुर के टीले पर एक बहुत बड़ी हवन होगी · · · मन्दिर के खंडहर में एक बहुत बड़ी पूजा होगी · · · और · · ·।"

"और ब्राह्मणों का भोजन होगा! अब यह कहो · ·।"

गोविन्द का मुँह लाल हो गया। उसके सामने जगतपुर के भूखे घर, भूखे बच्चों के मुरझाए हुए चेहरे नच गए'' 'आधी ढकी हुई जगतपुर की कितनी बहनो का शरीर नच गया'' 'कितनी दूल्हनो का फटा हुआ घूँघट'' 'पैबन्द लगे हुए कितने आँचल लहरा उठे। दूसरी ओर दो सौ मन गल्ले की बोरियाँ''।

गोविन्द सामने लोगों को मुस्कराते हुए देखकर सिहर उठा। उसे जलते हुए अन्न की लपट लगने लगी''जो जगतपुर के टीले पर अनायास जलाया जायगा'''उसके उन शब्दों और दृश्यों से कान और आँखें जलने लगीं—जो खंडहर में पूजा और बलि के समय पैदा होंगी।

गोविन्द हार कर मुखिया के सामने खड़ा हो गया और उसने विनम्रता से कहा, "मुखिया साहब!''ऐसा न करिए!''राजा से कह दीजिए''राजकुमार से कह दीजिए कि उन्हें जो कुछ करना हो, मेरे साथ करें''लेकिन इस बेकसूर अन्न को न जलाइए''न नष्ट करिए''।"

"तब क्या किया जाय?" लम्बरदार ने पूछा।

"यह अन्न मुझे दे दीजिए''मैं इसे जगतपुर में बाँट दूँगा; आप लोग मेरी बात मान लीजिए।"

"अब आए रास्ते पर।" मुखिया ने गर्व से कहा,

"लेकिन अब तो देरी हो गई। राजा साहब और हम लोगों की पक्की स्कीम बन गई कि जगतपुर के देवताओं की अपूर्व पूजा होगी'''टीले को खुश किया जायगा, खंडहर को मनाया जायगा।"

गोविन्द एक हारे हुए सिपाही की तरह नीचे धरती की ओर देख रहा था''मुखिया साहब अपने साथियों के साथ हँसते हुए नीची पट्टी की ओर बढ़ रहे थे।

गोविन्द नीचे देखता हुआ वहीं अब तक खड़ा था, मानो वह जगतपुर की धरती से कोई सलाह ले रहा था। उसी समय अहिल्या ने आँखों में असीम प्यार लिए गोविन्द को स्पर्श करते हुए कहा, "चिन्ता न करो गोविन्द भइया !···चलो बैठो; मैं तुम्हें ताज़ा खोआ और गुड़ खिलाऊँगी··।"

गोविन्द ने दृष्टि उठाकर अहिल्या की ओर देखा और उसका उतरा हुआ मुँह मुस्करा उठा।

उसने उसी क्षण अहिल्या से क्षमा माँग कर फिर धरती की ओर देखा और धीरे-धीरे लाल साहब की कोट की तरफ बढ़ने लगा।

लाल साहब दरवाजे पर नहीं थे; कहीं दो दिनों से बाहर गए थे।

गोविन्द अन्तःपुर में प्रवेश करता हुआ चला गया और दूसरी मंज़िल पर इन्द्रा बहन के निवास-स्थान की ओर बढ़ गया।

इन्द्रा बहन के कमरे में प्रवेश करते ही, गोविन्द ने देखा इन्द्रा और रानी माँ दोनों आमने-सामने कुछ बातें करती हुई बैठी थीं। गोविन्द उल्टे पाँव क्षमा माँगकर लौट आने को था उसी समय रानी माँ ने बढ़कर गोविन्द को पकड़ कर अपने पास बिठा लिया और प्यार से कहा,

"मेरे दुखी बेटा, !···कहाँ थे ?···बहुत दिनों के बाद आए ?"

"क्या किया जाय, रानी माँ !" गोविन्द ने बहुत उदासी से कहा, "सब बातें तो चल ही रहीं हैं···लेकिन आज एक बात सुन कर असीम पीड़ा हो रही है !"

"क्या बात है, गोविन्द ?" इन्द्रा ने आशंका से पूछा।

गोविन्द ने कहा, "बहन ! तुम्हें तो मालुम ही होगा कि राजा साहब ने जगतपुरवालों को अपने पक्ष में करने के लिए, बहन सब्बो की मौत पर पर्दा डालने के लिए, सब को अपनी कूटनीति से ख़ुश करने के लिए···तीन सौ मन ग़ल्ला भेजवाया था···उसमें से जगतपुर ने केवल सौ मन ग़ल्ला लिया, दो सौ मन बच गया···"

"यह तो बहुत अच्छा हुआ", इन्द्रा ने प्रसन्नता से कहा, "इससे स्पष्ट है कि जगतपुर अपने बहुत बड़े हिस्से में जी रहा है।"

"लेकिन अफ़सोस और पीड़ा की बात यह है बहन, कि राजा, राजकुमार, मुखिया और जगतपुर के सभी अंध विश्वासी एक राय होकर उसी बचे हुए दो सौ मन ग़ल्ले से टीले पर हवन और यज्ञ करेंगे, खंडहरों को मनाएँगे··जहाँ एक-एक अन्न से जगतपुर तरस रहा है··वहीं दो सौ मन गल्ला अनायास फूँक दिया जायगा!"

"तो क्या करोगे बेटा?··देखते चलो··ईश्वर करे तुम्हारी नई खेती··सफल हो··बस तुम्हारी जीत होगी··!"

इन्द्रा चुप थी; लेकिन वह अपलक गोविन्द को देख रही थी और क्षण ही भर में वातावरण बहुत बुरा लगने लगा।

गोविन्द ने झट बात बदलते हुए पूछा—"लाल साहब कहाँ हैं, रानी माँ?"

इस प्रश्न मात्र से वातावरण बदल गया, रानी माँ के चिन्तित ओंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई। इन्द्रा बहन ने शरमा कर अपना सर झुका लिया; जैसे पवित्र चाँद लज्जा और शील से शरमा गया हो और नीला आसमान स्वयं घूँघट बनकर नीचे झुक आया हो!

रानी माँ ने कहा, "बेटा गोविन्द!··तुम्हारी इन्द्रा बहन की शादी तिलकहरा के राजा साहब के बड़े लड़के से ठीक हो रही है··।"

"सच रानी माँ!" गोविन्द प्रसन्नता से चीख उठा।

"हाँ बेटा!···अब जगतपुर में क्या ठिकाना?··जहाँ राजा और और राजकुमार··इतनी छोटी-छोटी बातों पर इतने भयानक हो गए हैं,··देखो लाल साहब गए हैं··क्या होता है?"

"कैसी शादी है··तिलकहरा की, रानी माँ?" गोविन्द ने पूछा।

"बहुत ही अच्छी शादी है गोविन्द!" लड़का केशरी उदय सिंह

ने इसी वर्ष लखनऊ युनिवर्सिटी से एम०ए०पास किया है...बहुत ही शील और रूपवान है।''

रानी माँ खुश थीं; गोविन्द सब कुछ भूलकर मुस्करा रहा था। इन्द्रा लज्जा से सिकुड़ती हुई उस अमृत की बूँद की तरह होती जा रही थी जो अभी-अभी स्वर्ग से धरती पर ढुलक आई हो! जिसके मौन व्यक्तित्व में निर्माण के कितने दीपक जल रहे थे, लज्जा के सुनहरे आँचल में पवित्र मन का प्राण जग रहा था।

"क्या सोच रही हो, बेटी?'' रानी माँ ने स्नेह से पूछा। इन्द्रा ने अपना सर ऊपर उठाया, पर लज्जा से बोझिल पलकें फिर झुक गईं, और इन्द्रा ने बात बदलते हुए कहा,

"मैं सोच रही हूँ, माँ!...कि आपको गोविन्द से कुछ और बातें करनीं थीं...आपको उसमें प्राण फूँकना था...।''

गोविन्द शरमाता हुआ, अपलक इन्द्रा की ओर देख रहा था।

रानी माँ बिना कुछ बोले-चाले अन्दर चली गईं और क्षण भर के बाद गोविन्द ने देखा, इन्द्रा बहन ने पास बैठकर उसको स्नेह से स्पर्श कर दिया।

गोविन्द की आँखो में न जाने किसके आँसू छलछला आए थे कुछ आँसू की बूँदों में से बहन से मिलते हुए असीम स्नेह के गीत थे, कुछ बरसती हुई बूँदों में अपूर्व उत्साह मिलने की पुकार थी, कुछ उमड़ते हुए आँसुओं में भाई की बहन से अर्चना थी कि बहन!... रानी बहन!...जुलाई आ गई...और मैं अभी जगतपुर में फँसा हूँ...मैं तुम्हारा भाई होकर सच्चाई से आँखें मूँदने वाला नहीं...मेरी रानी बहन!...पन्द्रह जुलाई पहुँच गई...अब तुम इलाहाबाद जाओ.. क्योंकि तुम्हें ही एम० ए० इतिहास में मेरा नाम लिखवाना होगा...मेरी ओर से फ़ार्म भर के तुम्हें ही इतिहास विभाग, रजिस्ट्रार आफ़िस में भी जाना होगा......।

इन्द्रा ने गोविन्द को चुप देखकर हँसना चाहा; इसलिए इन्द्रा ने गोविन्द को और स्नेह से छूकर कहा—"गोविन्द ! ··क्यों चुप हो गए ?··राजकुमार विजय से डर गए क्या ?···· ।"

गोविन्द ने अपनी डबडबाई आँखों से इन्द्रा को देखा। इन्द्रा ने अपलक गोविन्द को देखा, अब गोविन्द की आँखों के आँसू..मुस्कराहट में बदलते जा रहे थे, आँखों के गीत उसकी ओंठों पर सूर्य की किरनों की तरह चमकने लगे थे। और इन्द्रा ने चुप होकर जैसे गोविन्द की आँखों में तैरती हुई सारी फ़रियाद, सारी अर्चना, सारी कहानी को सुन लिया हो।

इन्द्रा ने फिर प्यार से कहा, "घबड़ाओ नहीं गोविन्द ! मैं तुम्हारे साथ हूँ न !··बोलो··मैं कब इलाहाबाद जाऊँ ?"

"इलाहाबाद।" इतना कहकर गोविन्द जैसे कोई सुनहरा स्वप्न देखने लगा हो कि··गोविन्द एम० ए० करके जगतपुर लौटा है, जगतपुर की धरती नन्हें-नन्हें आसमान के असंख्य सितारों से सजाई गई है। कुमारी इन्द्रा··तिलकहरा की राजरानी के रूप में जगतपुर अपने मायके लौटी हैं और रोनी के किनारे बने हुए शोशमहल के पास स्वर्णकमलों की शय्या पर बैठी हैं और गोविन्द बहन के स्नेहाँचल की शीतल छाया··और गरिमापूर्ण चरणों पर अपना सर टेक कर सो गया है। शय्या के पायताने ज़ैनब मुस्करा कर बैठी हुई अपनी गोद में गोविन्द के थके हुए पैर को स्पर्श कर रही है।

"गोविन्द ! मैं पूछ रही हूँ कि मैं इलाहाबाद कब जाऊँ ?" इन्द्रा ने गोविन्द को जैसे जगाते हुए कहा, "बताओ··मुझे वहाँ जल्दी से जल्दी पहुँच जाना है··क्योंकि मुझे तुम्हारा भी तो नाम लिखवाना होगा !"

"सत्य कहती हो बहन !" गोविन्द ने सोचते हुए कहा, "आज बारह जुलाई है··सोलह जुलाई को मंगलवार पड़ रहा है··उसी दिन तुम इलाहाबाद चली जाओ।"

"जगतपुर में अकेले रहकर घबड़ा तो नहीं जाओगे ?"

"नहीं··बहन !··कभी नहीं !"

गोविन्द ने गंभीरता से कहा और इन्द्रा के पवित्र चरणों में देखा, खुले हुए स्वर्ग के असंख्य वातायन, असंख्य बहती हुई गङ्गा असंख्य जलते हुए मंगल-दीप, जिसके सामने बैठा हुआ गोविन्द अपने प्राण में जीवन पा रहा था, अपनी आत्मा में चिरन्तन प्रकाश का अनुभव कर रहा था।

* * *

गोविन्द जब इन्द्रा बहन के साथ खा-पीकर, छोटी पट्टी की ओर बढ़ा; उस समय दिन काफी ढल चुका था।

किशन के घर पहुँचने पर, गोविन्द ने देखा—पारो भाभी सब्बो की याद में रो रही थी।

गोविन्द ने भाभी को समझाते हुए पूछा—"किशन कहाँ है। ?" पारो ने रुँधे कंठ से बताया—"आज सुबह ही सुबह रायगढ़ गए हैं !"

"रायगढ़ !··रायगढ़ किसलिए ?"

"ज़िला कांग्रेस कमेटी में, थानेदार राजकुमार विजय आदि के ऊपर दावा करने····सब्बो बीबी की मौत की—फ़रियाद लेकर··!"

पारो का गला रुँध गया और वह मौन होकर फिर रोने लगी।

गोविन्द ने परेशान होकर कहा; "वहाँ जाने की क्या ज़रूरत थी ! मैंने कितनी मरतबा समझाया··क्या हो सकेगा वहाँ जाकर !"

पारो चुप थी।

गोविन्द ने पूछा—"क्या किशन रायगढ़ अकेले ही गया है ?"

"हाँ अकेले ही गए हैं !"

"अजीब पागल है !"

यह कहकर गोविन्द बाहर चला आया और छोटी पट्टी से गाँव के दक्षिण ओर बढ़ने लगा। जगतपुर की हरी-हरी, उमड़ती हुई फ़सल को देखते ही गोविन्द फिर सब चिन्ताएँ भूलता हुआ आनन्द-विभोर हो गया।

वह तेज़ी से खेतों के बीच में घूम रहा था और अचानक घूमते-घूमते वह एक ऐसे हरे-भरे धान के खेत में छिपकर बैठ गया, मानो वह नए धान के पौधों से कुछ प्यार भरी रहस्य की बातें कर रहा था। गोविन्द अपनी प्रसन्नता में पागल था, उसने अपने अंक में कितने धान के मुस्कराते हुए पौधों को छिपा लिया, फिर धरती पर सो गया और फिर दौड़ते हुए एक मक्के के खेत में, दो लम्बे-लम्बे मक्के के पेड़ों को अपने दामन में छिपा कर मानो सोचने लगा कि मेरी ज़ैनब इतनी ही प्यारी है!··उसकी भी तो बदन से इसी तरह हरी-हरी ख़ुशबू निकलती रहती है··वह भी इसी तरह पतली है, इतनी ही नाज़ुक है; इतनी ही मुस्कराती हुई खामोश है··इसी तरह तो वह भी मेरे दामन में चुप होकर सो जाती है··ज़ैनब मेरी धरती··मेरे दामन की रागिनी।

गोविन्द फिर खेत की मेंड़ पर आकर खड़ा हो गया और एक दृष्टि से जगतपुर की हरी धानी रंग की बहुत ऊपर उठी हुई धरती को देखने लगा और यह सोचते-सोचते फिर ज़ैनब उसकी आँखों में आगई—ज़ैनब भी तो उस दिन ख्वाब में इसी तरह की धानी शिलवार और हरी ओढ़नी ओढ़ कर मेरे पास आई थी··ख्वाब में जब वह मेरे दामन से लिपट कर सो गई थी··तो वह इतनी ही ऊँची लगती थी जैसे यह ऊँची उठती हुई फ़सल··जैसे मैं आज इस हरी-भरी अन्न से बोझी हुई धरती को अपने दामन में नहीं कस पा रहा हूँ, इसी तरह तो उस ख्वाब में ज़ैनब भी मेरे दामन में नहीं आ पा रही थी, वह इतनी ही लम्बी, इतनी ही ऊँची, इतना ही बोझिल थी··जैसे आज यह सामने की धरती है।

गोविन्द की इच्छा हो रही थी कि वह यहीं से एक बहुत ज़ोर की आवाज़ लगाए कि··ओ ज़ैनब !··ज़ैनब मेरी रानी !! रानी··आवो मैं यहाँ हूँ··जगतपुर के दक्खिन··तुम्हारे खेतों के मेड़ पर··शाम हो गई है तो क्या··चली आवो··चाहे जिस तरह, मैं तुझे सर्दी नहीं लगने दूँगा··मैं तुझे यहाँ नया शिलवार पहनाऊँगा !··जिसमें धान की हरी पत्तियों की तरह चमकते हुए सल्मे-सितारे जड़े होंगे··मैं तुझे लम्बी चुस्त कुर्ती पहनाऊँगा जिसमें ज्वार के सफेद-सफेद फूल और ज्वार की बालियों के ऊपर रेशमी गुच्छे के उभरे हुए फूल बने होंगे··फिर मैं तुझे अपने इन्हीं हाथों से एक ऐसी ओढ़नी ओढ़ाऊँगा, जिसमें धान का धानी रंग होगा, मकई की बालियों-सा सुनहरापन होगा, अरहर की नन्हीं-नन्हीं पत्तियों की सी चिकनाहट होगी, बाजरे के फूलों-सी उम्दा-उम्दा मीनाकारी की हुई होगी,··चली आवो ज़ैनब, इसी वक्त; अपने इन खेतों में चली आओ !

और धीरे-धीरे शाम हो गई। गोविन्द अभी तक खेतों में घूमता रहा। फिर रात हो गई और गोविन्द किशन के घर लौटा।

किशन अब तक घर न लौटा था। गोविन्द को अब चिन्ता हो गई। पारो की भी तबीयत बहुत घबड़ा रही थी।

गोविन्द किशन की प्रतीक्षा में गाँव के दक्खिन फिर चला आया, और किशन के अकेलेपन के बारे में चिन्ता से सोचता हुआ—जगत-पुर से रायगढ़ जाने-आने के रास्ते पर खड़ा हो गया, और काफी देर तक उस निर्जन, सूनसान रास्ते पर इधर-उधर घूमता रहा।

रात अँधेरी थी, लेकिन आसमान सितारों से पट गया था और उसकी मद्धिम-मद्धिम रोशनी, अँधेरी रात से छनती हुई धरती की नयी फ़सल पर पड़ कर इस तरह लग रही थी जैसे कोई दूल्हन लज्जा से झुकी हुई, अपने सर पर पड़े हुए धानी रंग के घूँघट को थोड़ा-सा हटाकर, मुस्कराती हुई जगतपुर को देख रही हो।

गोविन्द रायगढ़ से आने वाली पगडंडी पर पश्चिम की ओर मुँह किए खड़ा था; सहसा कुछ दूरी पर पूरब की ओर अँधेरे में किसी के चीख़ने और साथ-साथ किसी के हँसने की आवाज़ सुनाई दी।

गोविन्द को काटो तो ख़ून नहीं! क्षणभर में वह पूरब की ओर घूमा और उसकी आँखों के सामने ज़ैनब, इन्द्रा बहन, ज़ैनी, पारो, अहिल्या, सूरा दीदी तथा जगतपुर की कितनी गंगा, जमुना, सोना रूपा, असमत, शबनम, गुलनार आदि मासूम लड़कियाँ नाच गईं; शेख़ पट्टी नाच गई, छोटी पट्टी और बड़ी पट्टी नाच गई; और सब के ऊपर हँसता हुआ राजकुमार विजय नाच पड़ा और उसके साथ उसके ख़ूँखार साथी बहादुरसिंह आदि अट्टहास कर पड़े।

गोविन्द अपनी असीम निर्भीकता में बहुत तेज़ी से पूरब की ओर बढ़ रहा था और गोविन्द को अब स्पष्ट सुनाई देने लगा—'कोई आदमी किसी लड़की को पकड़ रहा है, लड़की अपनी रक्षा के लिए लड़ रही है और अपने अबलापन में चीख़ती भी जा रही है। गोविन्द बहुत समीप पहुँच गया और उसने देखा, किशन है।···किशन अपने कंधे पर किसी लड़की को लाद चुका है··गाँव की तरफ़ भागने को है। आज उसकी आँखें गोविन्द को नहीं पहचान रहीं थीं।

किशन के कंधे पर लड़की रख उठी थीं लड़की धीरे-धीरे कराह रही थी और किशन गाँव की ओर बहुत तेज़ी से भागने लगा।

गोविन्द आश्चर्य और आशंका से विचलित हो उठा और उसने तब तक ज़ोर से पुकारा—"किशन!"

किशन अब और तेज़ भागने लगा। गोविन्द का सर चक्कर करने लगा। उसने दौड़ कर किशन को पुकारते हुए कहा—"किशन!·· रुको! मैं गोविन्द हूँ! कहाँ भागते जा रहे हो?"

किशन रुक गया। गोविन्द दौड़ रहा था। किशन गोविन्द को

दूर से पहचानते ही हर्ष से चीख़ पड़ा—"गोविन्द भइया !...आज मैं विजयी हुआ !"

गोविन्द किशन के पास पहुँचा किशन अपने कंधे पर से लड़की को उतारते हुए खिलखिला कर हँस पड़ा—"लो दुश्मनी का बदला!..यह है विजय की बहन तारामती।"

गोविन्द के नीचे की धरती कँप गई। वह किशन के पागलपने पर खीझ उठा, और फटकारते हुए कहने लगा—"पागल किशन ! खोल जल्दी..तारा के मुँह पर बँधी हुई पट्टी।"

"अरे ! गोविन्द !! क्या बातें करते हो ?" किशन गोविन्द के समीप खड़ा हो गया।

किशन आश्चर्य से गोविन्द को देख रहा था, गोविन्द पागलों की तरह तारा को देख रहा था, तारा रोती हुई आँखों और फटी-कटी निगाहों से गोविन्द को देख रही थी।

गोविन्द ने बढ़कर तारा के मुँह पर बँधी पट्टी को खोल दिया।

लेकिन किशन उसी क्षण क्रोध से कहने लगा, "गोविन्द तुम क्या करते हो ?.. अपनी जान को खतरे में डाल कर, मैंने तारा को पाया है...हट जाओ तुम बीच से !..मैं तारा को सात दिन तक अपने घर में बंद रक्खूगा.. और जो-जो चाहूँगा..!"

आगे के शब्द किशन के कँपते हुए ओंठ पर आने ही को थे कि गोविन्द ने बढ़ कर किशन का मुँह दबा दिया—"चुप, आगे ख़ामोश !"

किशन ने आवेश में गोविन्द को धक्का दे दिया। गोविन्द कुछ दूर पर हटकर, फिर किशन को देखने लगा—उसी समय तारामती तड़पकर गोविन्द से चिपक गई।

गोविन्द ने तारा को सामने खड़ाकर गंभीरता से कहा, "तारा इस तरह डरने की कोई बात नहीं !··यहाँ कोई राजकुमार विजय नहीं, जो बेगुनाह, मासूम बहन की जिन्दगी लेता है। तुम निर्भय रहो ! और जाकर अपने राजमहल में आनन्द करो··।"

"गोविन्द ! तुम कितने अच्छे हो !" तारा ने फिर गोविन्द को प्यार से पकड़ते हुए कहा और गोविन्द को अपलक देखने लगी।

"तारा, मुझे गलत समझने की कोशिश मत करो !" गोविन्द ने गंभीरता से कहा, "राजमहलवालों के लिए अच्छे बुरे कोई नहीं होते। वे अपनी सत्ता के आगे किसी भी इन्सान को नहीं मानते, और अगर मानते भी हैं तो अपती सत्ता को चरितार्थ करने के लिए।"

किशन ने एक बार फिर उफ़न कर कहा, "गोविन्द !··चाहे जो हो—मैं तारा को नहीं छोड़ूँगा··मैं इसी से बहन के खून का बदला लूँगा।"

गोविन्द ने किशन को डाँटते हुए कहा, "किशन !··पहले सोच लो कि ज़िन्दगी और मौत क्या है, फिर··राजकुमार की तरह नीचता पर उतरो !··मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी, किशन !"

गोविन्द का गला, क्षणभर में सँध गया और उसने मुँह मोड़कर एक बार अन्धकार में देखा, फिर घूमकर तारा से पूछा, "तारा !·· तुम्हारे साथ इसने और कोई अन्याय तो नहीं किया ?"

"कुछ नहीं गोविन्द !··किशन निर्दोष है··मैं ही राजकुमार की बहन होने के नाते दोषी हूँ।"

"नहीं,··किशन का साथी, जन्म का मित्र होने के नाते मैं दोषी हूँ··।"

गोविन्द ने कहा, और वह फिर अंधकार में देखने लगा। किशन गिड़गिड़ाता हुआ गोविन्द से अपने पाप के लिए क्षमा माँग रहा था और गोविन्द उसी तरह अंधकार में देखता हुआ कहता जा रहा था

—"तुझे मेरे साथ की सौगन्ध ! किशन··अगर तुझे इस लड़ाई में मेरे साथ धरती के एक पवित्र लाल की तरह रहना है··तो रहो·· नहीं मुझे इस जेगतपुर की लड़ाई में अकेले छोड़ दो··मैं अपने रास्ते पर अकेला बढ़ता रहूँगा और इसे न भूलना··कि जब तक मेरे पैर धरती पर चलते रहेंगे, मुझे किसी चीज़ की कमी न होगी क्योंकि इस धरती में अपार स्नेह है ! अपार शक्ति है ! निधियों का ख़ज़ाना है·· प्रमाण के लिए··देखलो, यह उभरती हुई फ़सल !··इस धरती में महापुरुषों और देवताओं की भी कमी नहीं··सब इसके अन्दर अबतक बैठे हैं, और सदा बैठे रहेंगे क्योंकि वे सतमार्ग पर चलते हुए···मानवता के लिए लड़ाई लड़ने वाले थे··लेकिन इसी संसार ने उनकी मौत गोलियाँ चलाकर और विष पिला कर की है··यह है जीना और मरना··और किशन !·· यही अपार बल मेरे साथ है !"

"गोविन्द भइया ! मुझे माफ़ कर दो ! मैंने बहुत बड़ी ग़लती की है," किशन अजीब बेदना से गोविन्द के सामने नत सिर क्षमा माँग रहा था, "मुझे माफ़ कर दो गोविन्द !··मैंने तुम्हारी भावनाओं और विश्वास पर चोट करके बहुत बड़ा पाप किया है !"

गोविन्द ने घूमकर किशन को देखा, और उसे देखता रहा, फिर धीरे-धीरे उसे अपने दामन में खींचता हुआ उसकी आँखों में उमड़ते हुए पाश्चाताप के आँसुओं के बीच अपने पवित्र किशन को देखा। गोविन्द ने गंभीरता से किशन को अपने सीने से लगा लिया और उससे प्यार से कहा, "तारामती को उसके राजमहल तक पहुँचा आवो !"

"और तुम गोविन्द ?" तारामती ने प्यार से पूछा।

"तब तक यहीं··आसमान के नीचे खड़ा रहूँगा और अपनी गाती हुई फ़सल से धरती का संगीत सुनता रहूँगा।"

"कुछ देर मुझे भी यहाँ रहने दो !"

"ऐसी भूल मत करो; नहीं तो तुम्हारा भाई··तुम्हारा भी दुश्मन हो जायगा··वह न जाने क्या इसका अर्थ लगा लेगा!··जाओ—जल्दी जाओ··किशन!··पहुँचाओ तारा को··।"

गोविन्द फ़सल के बीच अकेले टहल रहा था, और वह बार-बार सितारों से भरे हुए आसमान को देखता जा रहा था। उस समय गोविन्द बहुत ख़ुश था, ऊपर सितारे गा रहे थे, नीचे धरती गा रही थी, रोनी नदी में मछली मारते हुए धीवरों के भजन सुनाई दे रहे थे, पिपरी से लौटकर रायगढ़ जाते हुए बंजारों के बिरहे सुनाई दे रहे थे। उनके बैलों की गर्दनों में बँधी हुई छोटी-छोटी घंटियाँ बहुत सुन्दर संगीत प्रस्तुत कर रहीं थीं।

१२

पौ फटते ही जगतपुर आज फिर दो दुनिया में बँट गया। एक खुशी और रंगीनियों की दुनिया, जगतपुर के टीले पर जमा थी, मन्दिर के खंडहर के सामने खड़ी थी और अपूर्व उत्सव तथा पूजा की तैयारी में लगी थी।

जगतपुर का अन्न, जगतपुर की भूख के सामने से छीनकर बेंच दिया गया था और उसी से टीले की पूजा होने वाली थी। खंडहर में बलि और हवन की सारी सामग्री उस दुनिया की धरती पर इकट्ठा थी।

दूसरी दुनिया जगतपुर में ही थी और अपने-अपने घरों से टीले को देख रही थी—टीले के ऊपर और टीले के भीतर।

यह दुनिया, टीले के ऊपर देख रही थी, बड़ी पट्टी, छोटी पट्टी, नीची पट्टी, शेख़ पट्टी की कितनी औरतें और मर्द, बूढ़े, तथा प्रौढ़ उनके साथ कुछ छोटे-छोटे अबोध बालक, सब प्रसन्नता और धर्म के गर्व में इधर-उधर घूम रहे थे। दूसरी ओर, इस दुनिया ने देखा—टीले पर माली और शेख़ों की पार्टियाँ नृत्य और संगीत के लिए बैठी थीं, टीले पर हवन कुंड खुदा था, उसके किनारे-किनारे कई मन अन्न, घी, फल, फूल, मेवे वस्त्रादि ख़ूब सजाकर रक्खे गए थे। जगतपुर के छोटे-छोटे बच्चे ललचाई आँखों से घी, फल, फूल और मेवे देख रहे थे, जगतपुर की औरतें किसी तरह अपने शरीर को ढँके हुए उन अच्छे-अच्छे वस्त्रों को देख रहीं थीं।

मन्दिर के खंडहर के सामने पाँच बड़े-बड़े बकरे नहला-धुलाकर बँधे थे जो करुणा से में में की आवाज़ कर रहे थे।

पास में बीस बड़े-बड़े कलशे रक्खे थे, पाँच तूल के कपड़े के शैतान बनाए गए थे, पाँच बड़ी-बड़ी झंडियाँ रक्खी थीं, सात केले

के पेड़ काटकर रक्खे थे, बीस कमल के फूल रक्खे थे, मन भर अढ़ऊल और केले के फूल आए थे, मरघट की राख आई थी, एक थान कफ़न आया था, एक तेली की खोपड़ी आई थी; एक घड़ा शराब आया था।

शेख़ पट्टी की नीम तले गोविन्द के साथ किशन तथा तमाम उसके नौजवान दोस्त खड़े थे। गोविन्द से सटी हुई ज़ैनब, अहिल्या, पारो, सूरा, रूपा, जमुना, गंगा, नैना, शबनम, गुलनार आदि कितनी लड़कियाँ खड़ी थीं। सब टीले की ओर देख रहे थे।

इस तरह जगतपुर ख़ामोश होकर टीले को देख रहा था—टीले के ऊपर और टीले के भीतर।

टीले के भीतर यह जगतपुर देख रहा था—अपने सैकड़ों वर्षों के पूर्व के जगतपुर को—जब यह जगतपुर स्वर्ग था, एक रुपये का दो सेर ढाई सेर शुद्ध घी मिलता था, जब जगतपुर भरपेट दूध पीने के बाद एक रुपये का दस सेर दूध बेचता था, ख़ूब खाने, पीने, पहनने के बाद, अपने अन्न को एक रुपए में बीस सेर बेंचता था।

गोविन्द टीले के भीतर सारी चीज़ों को देखता हुआ अपने जगतपुर को दिखा रहा था—"नील की खेती हो रही है, अफ़ीम के कारख़ाने बने हैं; छींट की बुनाई और रँगाई चल रही है, धरती अन्न से लदी हुई है। रोनी पर सुन्दर पत्थर का पुल बँधा है, चारो ओर चौड़ी-चौड़ी सड़कें फूटी हैं; लड़कियाँ, मौसमी कपड़ों और आभूषणों से लदी हुई हैं, सावन, तीज, कजरी, झमार, होरी, साहना, गज़ल, चैती, बारहमासे गा रही हैं। दूल्हने मंगल गीत गा रही हैं, नौजवान बिरहे, फाग, कव्वाली, होरी, कहरवा गा रहे हैं। क़ुरान और रामायण एक साथ पढ़े जा रहे हैं, मन्दिर और मस्जिद में एक साथ प्रार्थना हो रही है। धरती स्नेह लुटा रही है।"

गोविन्द ने फिर बताया, "ऐसे जगतपुर के सामने एक बार इसी तरह और धरती के दुश्मन पाँच अँगरेज़ आए थे। जगतपुर में लड़ाई

हुई थी, जैसे लोग आज टीले के ऊपर खंडहर और टीले की पूजा करने के लिए इकट्ठा हुए हैं; ऐसे ही लोगों ने उस जगतपुर के प्रति विश्वासघात किया था। राजकुमार विजय के परबाबा ठाकुर हिम्मतसिंह ने जगतपुर के प्रति ग़द्दारी की थी। पाँच अँगरेजों की मौत के बाद लखनऊ से गोरों की फ़ौज आई थी और उस जगतपुर को नष्ट कर दिया—फूँक दिया, लूट लिया और इस तरह वह जगतपुर आज टीला बन गया है।

आज उसी के ऊपर, उसी के सीने पर जगतपुर के वही दुश्मन मूँग दल रहे हैं...नीचे जगतपुर की आत्माएँ टीले में तड़प रहीं हैं, और हमें आशीर्वाद देती हुई कह रहीं हैं—घबड़ाओ नहीं, तुम्हारी धरती तुम्हारी है, और इस धरती में सब कुछ है, धन-धान्य, फल-फूल सब कुछ। इसे जो प्यार से खोदेगा, पानी से सींचेगा, ख़ूब खाद डालेगा, उसे धरती की लक्ष्मी मिलेगी।

जैसे राजा जनक को हल जोतते समय स्वयं धरती को खोदते हुए धरती की पुत्री, धरती की लक्ष्मी सीता मिल गई थी..और धरती के सबसे पवित्र, सबसे अच्युत मनुष्य राम से विवाह हुआ था।

उस युग में भी धरती के दुश्मन रावण ने ऐसे राम-सीता से दुश्मनी ली थी, सीता को हर लिया था। रावण की बाहरी शक्ति कितनी थी?.....अथाह, असीम। प्राकृतिक शक्तियाँ उसके यहाँ दासियाँ थीं, देवता बन्दी थे, नक्षत्र और राशियाँ सामने झुकी खड़ी रहती थीं।

ऐसे शक्तिशाली, लेकिन धरती के दुश्मन रावण की पराजय हुई। धरती माँ ने उसे श्राप देकर सदा के लिए नष्ट कर दिया—"

गोविन्द ज़ैनब, किशन को देखता हुआ कहता जा रहा था, "फिर ऐसे मामूली जगतपुर की धरती के दुश्मन राजा साहब या राजकुमार की क्या हस्ती!··स्वयं अपने पापों से नष्ट हो जाएँगे।"

ज़ैनब प्रसन्नता से पागल हो, गोविन्द की कही हुई कहानी अपनी आँखों में छिपा कर··गोविन्द को संकेत करती हुई अपने घर के पास चली आई।

गोविन्द उसके सामने गया और उसने हँसती हुई ज़ैनब को देखा।

ज़ैनब ने उसके दामन में लिपटकर कहा, "तुम मेरे राम हो!"

"और तुम इसी धरती से पैदा हुई हो!" गोविन्द ने कहा। ज़ैनब ने शरमाकर उत्तर दिया, "लेकिन उस रात को, टीले के खंडहर के सामने··मैंने ही तुम्हें स्वयंबर में अचानक पा लिया था! और रावण बैरी होकर खीझ उठा था।"

दोनो फिर नीम तले लौट आए। उनके साथी गोविन्द की कही हुई बातों को प्रसन्नता से दुहरा रहे थे।

* * *

टीले पर उत्सव होने लगा, टीले का हवन समाप्त हो गया था। खंडहर के सामने शराब का घड़ा उड़ेला जा चुका था, लोग शराब का प्रसाद ले रहे थे। खंडहर में पाँचो बकरों की बलि होने लगी। लेकिन उनके मरने की आवाज़, मालियों और सोखों की नाच, उनके बजते हुए मृदंग, सारंगी झाँझ, मजीरे घूँघुरुओं, तुरुही, शंखों, दफलों, सिहीं बाघू के उठते हुए स्वरों में खो गई।

मुखिया ने अपने हाथों से एक छौने को टीले पर जोर से पटकज़ी दी; उसके भी मरने की आवाज़ वाद्यस्वरों में खो गयी। कितने बच्चे और औरतें डर से रो पड़ीं।

खंडहर के सामने एक थान कफ़न में आग लगाई गई। मरघट की राख डाली गई, तेली की खोपड़ी डाली गई। तूल के बने हुए शैतानों में आग लगाई गई।

फिर लोग अभुआने लगे। अभुआनेवाले लोगों में माली भी थे, सोखे भी थे, मुखिया बद्री पाँडे भी थे, जगतपुर के लम्बरदार और सरपंच भी थे और कुछ बूढ़ी औरतें भी थी।

सब अभुआने वालों ने एक बात कही—वही पुरानी बात–कि हम देवता लोग जगतपुर से क्रोधित थे—खंडहर में, देवस्थान पर जगतपुर के एक नौजवान ने पाप किया है—एक मुसलमान की लड़की का इसमें सबसे अधिक दोष है··यह देवस्थान के प्रति अपूर्व पाप आदि-आदि !

अभुआनेवालों ने शेष जगतपुरवालों को श्राप देते हुए कहा कि—गोविन्द की पार्टी में रहने वालों की जल्दी हार होगी··बुरी तरह हार होगी··जगतपुर की यह नई फ़सल फिर हम देवताओं के कोप से नष्ट होगी··एक छटांक अन्न भी न पैदा होगा··हमारी प्रसन्नता से दूसरी रबी की फ़सल वास्तव में ठीक होगी, खूब होगी··—।

छोटी पट्टी की एक बूढ़ी औरत ने हाथ जोड़कर पूछा—

"महाराज !··खंडहर बाबा !···एक बात बताइए··कि सावित्री की मौत कैसे हुई ?"

मुखिया ने अर्ध विक्षिप्तावस्था में कहा, "सावित्री की मौत हम देवता लोगों ने की··क्योंकि उसके भाई ने हमारे दुश्मन का साथ दिया था··।"

"जल जाएँ ऐसे देवता !" बुढ़िया ने क्रोध में आकर कहा, "जो एक बेक़सूर लड़की की जान लेते हैं।"

राजकुमार विजय ने फौरन बुढ़िया को [illegible] बुढ़िया देवताओं को गालियाँ सुनाती हुई गाँव की ओर [illegible]

एक दूसरे बूढ़े ने बरसती हुई आँखों से [illegible] से पूछा—"महाराज ! टीले के [illegible] बाबा !·· [illegible] बताइए··कि हमारी यह फ़सल कैसे नष्ट हो [illegible] बहुत अच्छी फ़सल है !"

लम्बरदार ने पागलों की तरह देवताओं की भाषा में कहा।

"हम खा लेंगे··यह जगतपुर की नयी फ़सल खा लेंगे!··हम देवता··इससे अप्रसन्न हैं!··हमारा इस पर कोप है।" कैसा अच्छा और बुरा बीज।··एक मिनट में हम सब कुछ करते हैं।

बूढ़े ने विनम्रता से कहा, "हाथ जोड़ रहे हैं! महाराज!··हम ग़रीब अनाथ हो जाएँगे··महाराज ध्यान दीजिए··।"

बूढ़ा अभी गिड़गिड़ा ही रहा था कि बहादुरसिंह ने बूढ़े को झटकते हुए कहा, "क्या पागलों की तरह सवाल करते हो?··देवता को बहुत बोलवाओगे तो··तुम्हें ही श्राप दे देंगे?··यहीं ख़त्म हो जाओगे, कुछ न पूछो··ये देवता जो कुछ कह रहे हैं, कान फाड़कर सुनते जाओ··और शेष जगतपुरवालों को समझा दो कि गोविन्द का साथ अब से छोड़ें!"

उसी समय एक नौजवान ने भीड़ को चीरते हुए मुखिया के सामने आकर पूछा, "देवता! महाराज!!···सच बताइए··हमारी पिछली मारी हुई फ़सल का बीज ख़राब था न?"

"बिलकुल नहीं···बिलकुल नहीं··बीज ठीक था···वह हम देवताओं का कोप था···श्राप था।"

"झूठ!···सरासर झूठ!!" नौजवान ने दूर हटते हुए कहा, "मुझे अभी अपने कोप से भस्म कर दीजिए···तो मैं आपके श्राप को जाँनू?"

नौजवान दूर जाकर खड़ा हो गया था। सब अभुआनेवालों ने एक स्वर में उसे श्राप दिया। भीड़ को अपूर्व कौतूहल और आश्चर्य हो रहा था। नौजवान दूर मुस्कराता हुआ खड़ा था। बनावटी देवता और शराब पी-पीकर झूमते हुए लोगों ने नौजवानों को बहुत श्रपा दिया;

उसी समय एक नौजवान ने चिल्ला कर कहा, "सब झूठ। सब झूठ!! गोविन्द भइया की सारी बातें सही!··।"

नौजवान चिल्लाता हुआ टीले से नीचे उतर गया। वहाँ के उपस्थित लोग आपस में फुसफुसाने लगे। औरतें आश्चर्य से चुप खड़ी रह गईं।

*   *   *

खंडहर की पूजा और टीले के अपूर्व उत्सव के दूसरे दिन जगतपुर में फिर दो तरह की बातें ज़ोर पकड़ने लगीं!

गोविन्द के दुश्मन—जगतपुर के दुश्मन, गाँव भर में, तथा जगतपुर के किनारे-किनारे के गाँवों में बातें करने लगे कि 'खंडहर में पाप की बात सत्य निकली न! जिन-जिन के सिर देवता आए थे सब ने गोविन्द और ज़ैनब का नाम लिया है, सब ने रहस्य का उद्घाटन किया है।'

राजकुमार विजय ने अपने महल के सामने जगतपुर को प्रीति-भोज दिया। नाच गाने भी हुए, और अंत में राजा शिवप्रसाद ने सभा के सामने भाषण करते हुए कहा, "कि मैं जगतपुर को अपना समझता हूँ, और इसके दुःख-सुख में मेरा दुःख-सुख है। ज़मीदारी के पहले, और ज़मीदारी टूटने के बाद भी मैं उसी तरह रहूँगा; लेकिन मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि आपने स्वयं जगतपुर के उपद्रवी, धरती के दुश्मन के नाम और कार्य को, पूजा में सिर आए हुए देवताओं के मुख से सुन लिया है। उनकी हार जगतपुर की जीत होगी, जगतपुर के सामाजिक प्रतिनिधियों को चाहिए कि उन्हें जात और बिरादरी से अलग कर दें!...उनका हुक्का-पानी, नाता-रिस्ता दोनों छोड़ दें ...फिर उनकी हार होगी, वे भी हम लोगों के साथ आएँगे और फिर जगतपुर स्वर्ग हो जायगा जैसा कि देवताओं ने स्वयं कहा है कि इस नयी फ़सल पर उन लोगों का श्राप है; अतः यह तो हो नहीं ही सकती। हम लोगों की फ़सल, रब्बी की फ़सल होगी—मैं उस फ़सल के लिए पूरे जगतपुर को नया बीज मँगवा कर विसार पर दूँगा।"

"नया बीज !...और फिर बिसार !" सभा में लोग धीरे-धीरे बातें करने लगे। राजा साहब चुप होकर लोगों की फुसफुसाहट सुनने लगे। इसी बीच एक ने उठते हुए पूछा—"राजा साहब !... रब्बी के लिए नया बीज आप बाहर से मँगाएँगे ?..क्या पहले वाला आपके बिसार में दिया हुआ रब्बी का बीज सचमुच खराब था ?" राजा के कान खड़े हो गये। उन्हें लगा कि उनका पाप उन्हीं से पकड़ा गया। विजय का मुँह सुर्ख हो गया।

राजा साहब घबड़ा गए। कैसे परिस्थिति क़ाबू में आए ? इतने में राजकुमार ने कहा, "नहीं बिल्कुल नहीं !... आप लोगों का भी दिमाग़ मिट्टी है ! देवताओं की बात का भी तो विश्वास करिए... हमारा दिया हुआ रब्बी का बीज बिल्कुल ठीक था..चूँकि अब हमारे पास रब्बी का बीज खत्म हो गया है, इसलिए राजा साहब ने बाहर से बीज मँगवाने की बात कही है।"

लोग अब भी आपस में सरगोशियाँ कर रहे थे। राजकुमार ने सबको चुप करते हुए कहा, "हम चाहते हैं कि जगतपुर के दुश्मनों को आप लोग सामाजिक दंड दें...उनकी हार आप लोगों की जीत होगी !"

* * *

गोविन्द का जगतपुर आशंका से अपने में बातें करने लगा कि हमारी नयी फ़सल पर दुश्मन फिर कोई बज्र ढाहने वाला है—चाहे खड़ी फ़सल को रातों-रात कटवा कर, चाहे खड़ी फ़सल में आग लगा कर, चाहे हमारे खलिहान को फूँक कर।

दानवी पूजा में, खंडहर के सामने तमाम राक्षसों ने देवता की वाणी में कहा है, "हम इस नयी फ़सल को बर्बाद कर देंगे !...इस फ़सल पर हमारा कोप है !..क्योंकि यह नयी फ़सल हमारे दुश्मनों की, हमारी शक्ति के लिए चुनौती है।"

उसी समय गोविन्द से एक बुढ़िया ने पूछा, "क्यों बेटा गोविन्द ! ..क्या हमारे देवता इतने क्रोधी होते हैं कि वे हम ग़रीबों की फ़सल अनायास ही खा लेंगे ?" गोविन्द ने समझाते हुए कहा,, " नहीं माँ ! हमारे देवता कभी ऐसे नहीं होते !..हमारे देवता तो मानव-कल्याण के लिए विष तक पी लेते हैं।...कालकूट बन जाते हैं।

माँ ! देवताओं के गुण प्रेम, क्षमा, उदारता, दया, स्नेह, होते हैं ....केवल राक्षसों के ही गुण क्रोध, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध, कटुता, वैर, घृणा आदि होते हैं। ....और उस दिन उस टीले पर, खंडहर के सामने..घड़ों शराब पीने वाले, बकरों के गोश्त खाने वाले..राक्षस थे.. और अपनी मदहोशी में सर पर देवताओं का बहाना लाद कर, न जाने क्या-क्या कह रहे थे !"

उसी समय दो प्रौढ़ मनुष्यों ने खड़ा होकर कहा, "गोविन्द भइया !..आज राजा साहब की बात से मैंने भी कुछ संकेत पा लिया है, कि हमारी पिछली नष्ट हुई खेती की फ़सल के बीज राजा-द्वारा ख़राब दिए गए थे ?" गोविन्द ने प्रसन्नता से कहा, " ख़ैर !... मैं जगतपुर को किस तरह समझाऊँ ?...निश्चित रूप से वह पहला बीज बहुत बड़ी चाल के आधार पर जान-बूझ कर ख़राब दिया गया था। फिर से समझ लीजिए कि वह कौन सी चाल थी ?..वह भयानक चाल इसलिए चली गई थी कि आगे ज़मींदारी ख़त्म होगी..और जगतपुर स्वतंत्र होकर हमारी ताक़त से शासन के अनुसार निकल जायगा तो जगतपुरवालों को फिर भी अपने चंगुल में रखने का एक उपाय है—कि रब्बी का बीज ख़राब दे दो।...जब बैशाख में फ़सल कम होगी, जगतपुर भूखों मरेगा; तब न जगतपुर सरकार का भूमिधर बनेगा, न और पैतड़े बदल सकेगा।..वह हमसे फिर अनाज कर्ज़ लेता रहेगा, और भूख का कर्ज़ सारे जगतपुर पर इतना लदता जायगा कि यह कभी भी हमसे बाहर न निकल सकेगा। और..इधर, राजकुमार विजय जगतपुर में अपना शिकार खेलता

रहता था..वह जी जान से ज़ैनब के पीछे पड़ा रहता था..मैंने इसके पहले कभी जै.नब को देखा भी न था..मैं तो हर दम अपनी पढ़ाई, अपने एम० ए० करने के पागलपन में इधर-उधर परेशान रहता था। संयोगवश उस रात को खंडहर में मैं देवताओं से अपने एम० ए० कर लेने का आशीर्वाद लेने गया था; उसी समय ज़ैनब भी...परेशान होकर अपने दुश्मन राजकुमार विजय की मौत के लिए, अपनी इज़्ज़त क़ायम रखने के लिए..खंडहर के देवता से भीख माँगने पहुँची थी। क्योंकि इस खंडहर की पूजा, उस शक्ति पर असीम विश्वास रखने का कारण हमारा और ज़ैनब का संस्कार था हमारे बाबा और पिताजी दोनों बराबर कहते थे कि बेटा! तुमने इस ग़रीबी में जो कुछ पढ़ा है वह देवताओं की प्रसन्नता, खंडहर के देवता, के कारण पढ़ा है! अगर वही तुम्हें आशीर्वाद देंगे हैं तो तुम एम० ए० भी कर लोगे। ज़ैनब की दादी और अम्मा ने उस बेचारी के भी दिमाग में यह बात भर रक्खी थी कि ये टीले के मन्दिर और मस्जिद के खंडहर अकबर बादशाह के बनवाए हुए हैं। और इन खंडहरों में इतनी ताक़त है कि अगर किसी मुसलमान लड़की की बड़ी सी बड़ी आरज़ू अहने मस्जिद में इबादद करने से न पूरी होती हो, तो वह अगर ऐसी हालत में उस मन्दिर के खंडहर में इबादत करें, तो उसकी आरज़ू जरूर पूरी हो सकती है। इसलिए हम अपने-अपने संस्कार के आधार पर अपनी-अपनी पवित्र कामना, और आरज़ू लेकर अकस्मात उस मन्दिर के खंडहर में, रात के पिछले पहर में मिले थे। हम दोनों एक-दूसरे की करुण कहानी ही सुन रहे थे कि विजय राजकुमार ने, जो दिन रात ज़ैनब के पीछे पड़ा रहता था, उस रात को मुझपर बन्दूक चलाई थी, पर मैं बच गया था लेकिन उसने हम लोगों को देख लिया था। इसके बाद उसने ज़ैनब से स्पष्ट कहा था, कि ज़ैनब! तू अगर अब भी मेरे चंगुल में नहीं आती तो मैं उस रात की बात का बहुत बड़ा ढिंढोरा पिटवा दूँगा कि ज़ैनब और गोविन्द.......

इसी बात पर ज़ैनब ने राजकुमार विजय के मुँह पर कस कर चाँटा मारा था।

उसी क्षण से विजय, पवित्र ज़ैनब का और मेरा दुश्मन बन गया। और बदक़िस्मती से राजा की दोनों बदबूदार चालें एक-दूसरे से जुड़ गईं। जगतपुर की रब्बी की फ़सल की पैदावार कम होनी] ही थी; क्योंकि पहली चाल के अनुसार रब्बी का बीज ख़राब दिया गया था। इधर ज़ैनब और मेरे प्रति उसकी प्रतिहिंसा की आग को धर्म का झूठा पर्दा मिल गया; और उसने अनुकूल परिस्थित पाकर जगतपुर के दिमाग़ में भर दिया कि "देव-स्थान में पाप हुआ है !··जगतपुर की धरती गोविन्द और ज़ैनब के पापों से क्रोधित है,।··देवता अप्रसन्न हैं···जगतपुर टीला हो जायगा, धँस जायगा··आदि-आदि··।"

गोविन्द अपने जगतपुर को समझा रहा था, "तो··यह है सच्ची बात !··राजा का राज्य ख़त्म हो रहा है; राजकुमार का शिकार बन्द होने को है; इसलिए··उसने जगतपुर के कमज़ोर पक्ष, झूठी धार्मिकता, झूठे देवी-देवताओं के विश्वास का नाज़ायज़ फ़ायदा उठाया है··और जगतपुर में फूट की आग लगाकर··इसे जलाना चाहता है, कम से कम उसके राज्य भर में जगतपुर उसके क़ब्जे में रहे; इसीलिए वे इतनी चालें चल रहे हैं··। हम नई रोशनी वालों को ख़त्म करने के लिए अपनी ओर से कुछ उठा नही रख रहे हैं।"

गोविन्द कह ही रहा था कि उसका जगतपुर··आवेश में चिल्ला उठा। उसके सामने बैठे हुए लोगों में एक ऐसी नयी लहर दौड़ गई जैसे उठते हुई समुन्दर की पहली लहर आसमान छूने को दौड़ पड़ती है। सब, नौजवान लड़के, लड़कियाँ, बूढ़े, बुढ़ियों का मानस-लोक गोविन्द और ज़ैनब के प्रति इतना साफ़ होगया जैसे, खूब रोने के बाद नन्हे-नन्हे बच्चे की बड़ी-बड़ी, खूबसूरत आँखें साफ़ हो जाती हैं, जैसे खूब पानी बरसने के बाद नीले आसमान में सफ़ेद चाँद चमक उठता है। और आसमान के सब सितारे, कोने-कोने के छोटे

से छोटे सितारे साफ नज़र आने लगते हैं, इसी तरह, इस जगतपुर की सब बातें, सब रहस्य स्पष्ट हो गए।

गोविन्द ने उत्तेजित सभा के लोगों को प्यार से चुप कराते हुए फिर कहा, "इस तरह हमारे जगतपुर का युद्ध सत्य और असत्य का युद्ध है! इस युद्ध का नैतिक और सच्चा फ़ैसला हमारी नई फ़सल के ऊपर आधारित है। हमारे दुश्मन, झूठे देवताओं को अपने सर पर रखकर बोलते हैं कि जगतपुर की यह नई फ़सल मारी जायगी, नष्ट हो जायगी, क्योंकि जगतपुर के देवता, धरती, आसमान, सब इससे अप्रसन्न हैं, और सब का इस पर श्राप है, कोप है।.......और अगर सचमुच अभाग्यवश हमारी यह नई फ़सल मारी जाती है, अकारण नष्ट हो जाती है..तो मैं अपने पाप को स्वीकार कर लूँगा.. मेरा और ज़ैनब का पाप स्वयं सिद्ध हो जायगा। और अगर हमारी यह नई फ़सल इसी तरह अपनी सफलता पर पहुँच जाती है, तब हम लोगों की विजय होगी। तब सब बातें स्वयं सिद्ध हो जायँगी—कि रब्बी का बीज सचमुच जानबूझ कर ख़राब दिया गया था, झूठी धार्मिकता के पीछे, भूखे राजकुमार ने गोविन्द और ज़ैनब को जगतपुर का दुश्मन बनाया था। सारी की सारी बातें सिद्ध हो जायँगी..सब छोटे से छोटे, बड़े से बड़े पाप; सब..।"

गोविन्द का जगतपुर अपनी संख्या में बढ़ता जा रहा था। उसके अपूर्व उत्साह, न्यायपूर्ण भाषण से अधिक से अधिक जगतपुर उसकी वाणी से खिंचता आ रहा था। सभा अपनी संख्या में बढ़ती जा रही थी, लोग—बच्चे, नौजवान, बूढ़े, अपाहिज सब गोविन्द की बातें सुन रहे थे—

गोविन्द ने अपने जगतपुर को चेतावनी देते हुए कहा—"मेरे भोले—ग़रीब, दुखी, जगतपुर वालो!...हमारी नैतिक विजय, हमारे युद्ध का एकमात्र फ़ैसला हमारी नई फ़सल की सफलता पर आधारित है! इसलिए दिन-रात अपने-अपने खेतों के मेड़ों पर घूमते रहें..किसी

भी खेत में अन्न के पेड़ के अतिरिक्त एक भी जंगली घास न दिखाई दे !··खूब धरती की सेवा करो। धरती की लक्ष्मी तुम्हारे खेतों में सर्वत्र हँस रही है, उसकी रक्षा करना··दिन-रात अपनी नई लक्ष्मी की परिक्रमा करते रहना—नहीं तो जैसा राक्षसों ने टीले और खंडहर के सामने कहा है, वे तुम्हारी लक्ष्मी को किसी न किसी तरह नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।··दोस्तो··अपने घर में पैदा हुई लक्ष्मी को दिन-रात देखते रहना, उसे अपनी शक्ति के प्राणों से, अपने स्नेह से सफलता पर लाना··!ख़बरदार ! कहीं··धरती की इस नई सीता को··नया रावण न चुरा ले जाए··। कहीं धरती का यह नया सुहाग उनकी कालिमा से न धुल जाय !··कहीं धरती की ये आँखें··फूट न जायँ।··

अपनी इस नई लक्ष्मी को बचाने के लिए··तुम्हें लक्ष्मण, हनुमान की तरह धरती का साथ देना होगा। नई सीता की रक्षा के लिए··तुम्हें धरती का राम बनना होगा।··धरती के इस मंगल सुहाग के लिए··तुम्हें भोर का सूर्य बनना होगा··धरती की इन आँखों के लिए तुम्हें अमिट प्रकाश बनना होगा··।"

इसके उपरान्त गोविन्द की वाणी जनता के उभरते हुए उत्साह-पूर्ण कोलाहल में खो गई। गोविन्द की वाणी से धरती मानो मुस्करा उठी, आसमान मानो स्नेह से कुछ नीचे झुक गया। गोविन्द की वाणी जनता की आत्मा में खो गई, किसी की डबडबाई हुई आँखों में अमृत बनकर, किसी के सूखे हुए अधरों पर अमन्द राग बनकर; किसी की मरी हुई आत्मा में प्राण बनकर; किसी की थकी हुई पलकों में आशा की मंगल ज्योति बनकर।

१३

ज़ैनब अब तक बेहोश सो रही थी, और आज की बीती हुई रात उसके लिए बहुत ख़तरनाक थी; क्योंकि इस रात को जब सारा जगत-पुर सो रहा था, गोविन्द सो रहा था; ज़ैनब अकेली रात को पिछले पहर तक कभी सितारों से भरा आसमान, कभी अपना सूना कमरा, कभी आइने में अपनी तस्वीर, कभी अपनी सोती हुई अम्मी; कभी ज़ैनी, फिर कभी सितारों से भरा हुआ आसमान, फिर कभी अपना सूना कमरा, घूम-घूम कर देख रही थी। और उसे नींद नहीं आ रही थी! लगता था कि पगले गोविन्द ने बरबस उसे न जाने कितनी शराब पिला दी है। उसकी आत्मा में कुछ ऐसी बेनाम ख़ुशबू भर दी है कि वह पागल मृगिनी की तरह बन-बन में पागल घूम रही है।

आख़िर में, ज़ैनब परेशान होकर अपने पलँग पर बैठ गई और गोविन्द को सोचते-सोचते धीरे-धीरे रोने लगी। उसके मन में आख़िर में, एक बार यह भी आया था कि वह चुपके से अपनी किवाड़ खोल कर गोविन्द की पट्टी चली जाए··और बहुत आहिस्ते-आहिस्ते, जा कर गोविन्द की खाट पर सो जाए··। गोविन्द में इस तरह सिमटकर मिल जाए कि उसका कभी अलग पता न चले। उसे अलग कोई ढूँढ़ न पाए।

लेकिन ज़ैनब तीन बार बाहरी दरवाजे तक गई, और तीन बार अपने पलँग पर लौट आई। अंत में ज़ैनब पलँग पर रोती हुई अपने तकिए में मुँह छिपाकर न जाने कब सो गई।····और ज़ैनब अबतक अपने पलँग पर बेहोश सो रही थी।

अम्मी ने दो बार जगाया, एक बार सूरज निकलते-निकलते एक बार आधी घड़ी दिन चढ़ते-चढ़ते; लेकिन ज़ैनब अब तक बेहोश सो रही थी।

आखिर में ज़ैनी के बहुत तंग करने पर ज़ैनब की आँखें खुलीं और वह अगड़ाइयों का तूफ़ान लिए पलँग पर बैठ गई। इस सुबह को उसके अणु-अणु में दर्द उठ रहा था।

वह अब तक मदहोश थी। उसके खुले हुए सर के काले-काले बाल बिखरे थे। उसकी पतली ओढ़नी नीचे गिर गई थी। लम्बी चुस्त कुर्ती, ऊपर सीने के बीच में मसक गई थी, जिससे उसके खूबसूरत सीनों के बीच की पवित्र, अथाह गहराई दीखने लगी थी, एक ऐसे पाक समुन्द्र की तरह जिसके दोनों छोरों पर प्रकृति के दो मंगल दीप जल रहे थे, जिसमें से इतनी रोशनी फूट रही थी कि आसमान का चाँद शरमा गया था और वह जल्दी से कहीं छिप गया था।

ज़ैनब के ओंठ सूख गए थे, पर उनमें किरनों की लाली फूट रही थी। ज़ैनब की आँखें शर्बती हो गईं थीं, पर धुलकर इतनी खूबसूरत लगने लगीं थीं कि जैसे दो क़ुदरत के हाथों से साफ किए हुए प्यालों में रात के वक्त आसमान के चाँद ने अपने हाथों से उसमें लबालब शराब भर दी हो।

* * *

ज़ैनब ने उसी तरह, मदहोशी की हालत में, प्यार से ज़ैनी को अपने दामन में खींच लिया और बच्चों की तरह धीरे से कहा, "बाज़ी !··· मेरे जिस्म के ज़र्रे-ज़र्रे में दर्द हो रहा है !···बोलो··बाज़ी !" ज़ैनी ने प्यार से कहा, "तो··बुला लाऊँ··गोविन्द को !··जैसी कहो···।"

ज़ैनी हँसती जा रही थी और ज़ैनब उसे अपने दामन में कसती जा रही थी—"बोलो फिर मज़ाक करोगी !···बोलो···तभी छोड़ूँगी···माफ़ी माँगो···।"

"माफ़ी क्यों माँगू ?" ज़ैनी ने अपने को छुड़ाते हुए कहा, "अगर मैं अंधी न होती···तो मैं अभी गोविन्द को बुला लाती।"

ज़ैनब का दिल भर आया। उसने प्यार से कहा, "बाज़ी !··मेरी अच्छी बाज़ी !··तुम्हारी आँखें बहुत जल्द अच्छी हो जायँगी !·· देखना बाज़ी !··अबकी हमारे सब बीघों में आठ-आठ मन धान की फ़सल होगी··।"

"कैसे मालूम ?"

"एक फ़रिस्ते ने मुझे बताया है बाज़ी। मैंने उसकी इबादत की है··और उसने मुझे वरदान दिया है··मैं ताज़िन्दगी उस जन्नत के फ़रिस्ते की इबादत करती रहूँगी !"

ज़ैनी ने बीच में ही व्यंग्य से कहा, "चल ! चल री !··देखी है··तेरी पहले की ही इबादत··पिछले मर्तबा यही मेरी ही तो आरज़ू लेकर तू उस नापाक टीले पर मन्दिर के खंडहर में इबादत करने गई थी न !··ख़ूब मिला था तुझे वरदान !··तुम्हारे बीघे में आठ-आठ मन को कौन कहे, दो-दो मन भी अनाज न हुआ; उल्टे जगतपुर में इतनी बड़ी लड़ाई छिड़ गई !"

"ओह, ओ !··बाज़ी ! यही बातें तो तुम नहीं जानती !" ज़ैनब ने समझाते हुए कहा, "बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेय··। समझी न बाज़ी !··उस बार इबादत करने में ही ग़लती हो गई !·· मैंने पत्थर को देवता समझा था, खंडहर और टीले को ताक़त समझा था··पर सब मिट्टी के ढेले निकले··बाज़ी !··अब की मैंने सचमुच अपनी इन्हीं आँखों में बिठाकर एक ज़न्नत के फ़रिस्ते को पूजा है ! उसने दरअसल मुझे बरदान दिया है··कि बाज़ी !··हमारे खेतों में इस नयी फ़सल से एक-एक बीघे में आठ-आठ मन गल्ला पैदा होगा ··फिर क्या है बाज़ी ! तुम्हारी दो आँखों को ठीक करवाने को कौन कहे, तुम्हारी चार आँखें ठीक करवा दूँगी··हाँ··बाजी ! समझ लो !"

ज़ैनी ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं सब समझ रही हूँ ! खुदा करे

तुम्हारी पाक आरज़ू पूरी हो,···और···मैं अपनी नयी आँखों से पहले तुम्हें दूल्हन देखूँ···।"

ठीक इसी समय बाहरी दरवाज़े पर भीतर आती हुई गोविन्द की आवाज़ सुनाई पड़ी। ज़ैनी उठकर आँगन की ओर बढ़ गई। ज़ैनब अपने पलँग पर उसी तरह खामोश बैठी रही। उसकी आँखों में ज़ैनी के कहे हुए शब्द 'दूल्हन' के ख़ूबसूरत ख़्वाब चलने लगे थे। और उसे पता नहीं कि उसका गोविन्द उसके सामने खड़ा, अपनी पगली ज़ैनब को अपलक देख रहा था—बिखरे बाल, मदहोश शर्बती आँखें, सीने पर मसकी हुई कुर्ती, और उसमें रोशनी करता हुआ एक गहरा समुद्र···।

गोविन्द ने धीरे से अपनी दायीं हथेली को ज़ैनब के दीखते हुए गहरे सीने पर रख दिया और उसकी—कमर से उलझी हुई ओढ़नी को खींच कर उसके सर को ढक दिया।

तब ज़ैनब होश में आई और उसने उचक कर आश्चर्य से गोविन्द को देखा, और फिर शरमा गई। और पलँग से खड़ी होकर, आँखों को नीचे किए हुए धरती को देखने लगी; और अपने मासूम पैर के दाएँ अंगूठे से धरती पर कुछ खींचने लगी। जैसे आज ख़ूबसूरती अपनी मुहब्बत के शौहर से मिलने की पहली रात में शरमा गई हो और अपने हाथों से धरती के पन्ने पर इश्क़ की सच्ची तवारीख लिखने लगी हो!

उसी समय कमरे में ज़ैनी ने प्रवेश किया और उसने गभीरता से कहा, "ज़ैनब!...आओ...खड़ी क्या हो?...जाकर मुँह साफ़ करो···और जल्दी से गोविन्द के लिए चाय तैयार करके लाओ···जाओ!"

"अम्मी कहाँ है···बाजी?" ज़ैनब ने पूछा।

"अम्मी हलवाहों को बताने गई हैं—कि···आ···ज्वार के खेत

में मचान गाड़ देना; चार बीघे सरया के धान के खेत जिसमें अभी तीसरी घास निकाई बाक़ी है· · ·मज़दूर लगा देना,· · ·समझी !· · · अम्मी· · ·बाहर गई हैं।· · ·जाओ जल्दी चाय बना कर लाओ !"

ज़ैनब चुपचाप कमरे से बाहर निकल गई।

गोविन्द स्नेह से ज़ैनी को सामने पलँग पर बिठा कर, खुद एक कुर्सी पर बैठ गया। ज़ैनी ने प्यार से गोविन्द के बायें हाथ को पकड़ कर कहा।

"गोविन्द !· · ·ज़ैनब रात-दिन तुम्हारे लिए बेक़रार रहती है !· · खुदा जाने !· ·तुम कितने ख़ूबसूरत होगे !· · ·मैं ज़ैनब से तुम्हारे बारे में, तुम्हारी ख़ूबसूरती और ज़िस्म की बनावट के बारे में सुनती रहती हूँ· ·पर अब तक एहसास नहीं कर पा रही हूँ कि तुम कैसे होगे ?· · काश !· ·मेरी आँखों में थोड़ी भी रोशनी होती।"

गोविन्द करुणा से अभिभूत हो गया। उसने स्नेह से कहा, "बाजी !· ·तुम्हारी आँखें जल्द अच्छी हो जायँगी· ·।"

"न जाने कब अच्छी होंगी" ! ज़ैनी ने पलँग से उठते हुए कहा, "मेरा दम भीतर के अंधकार में घुटता रहता है, गोविन्द ! मुझे यह शोर करता हुआ संसार ऐसा लगता है कि जैसे मेरी इन ख़ामोश आँखों में एक तूफ़ानी समुन्दर आवाज़ कर रहा है।"

"नहीं घबड़ाओ नहीं· ·मेरी अच्छी बाजी !· ·तुम्हारी आँखें मैं ठीक कराऊँगा !· · ·अगर डाक्टर चाहेगा· ·तो मैं अपनी आँखों की आधी रोशनी तुम्हें दे दूँगा !"

"गोविन्द !" ज़ैनी ने चीखकर कहा और अपने हाथों से गोविन्द का मुँह पकड़ लिया। फिर धीरे-धीरे अपने दाएँ हाथ से गोविन्द के मुँह, उसकी ख़ूबसूरती, उसकी बनावट को महसूस करने लगी।

ज़ैनी धीरे-धीरे अपनी लम्बी-लम्बी मासूम अँगुलियों को गोविन्द पर फेरती जा रही थी, अपनी अँगुलियों से उसे देखती जा रही थी और

धीरे-धीरे कहती जाती थी, "तुम कितने खूबसूरत हो, गोविन्द !··यह है··तुम्हारी लम्बी नाक··कितनी बाँकी अदा से··ऊपर उठी हुई है···यह है··तुम्हारे पतले-पतले ओंठ कितने मुलायम हैं !··यह हैं··तुम्हारी अनमोल आँखें !···कितनी बड़ी-बड़ी हैं ! यह तनी भवें हैं !··यह है तुम्हारा चौड़ा माथा···कितना प्यारा है !··यह है··तुम्हारे बिखरे हुए बाल ! ··कितने घने और रेशम की तरह मुलायम हैं !"

इस तरह से ज़ैनी अपने हाथ से गोविन्द को देख रही थी। और अपने दिल में शायरी करती जा रही थी। जैसे घटाटोप अन्धेरे में कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को हाथों से महसूस करता हुआ उसे देख रहा हो।

गोविन्द को लगा जैसे ज़ैनी पगला उठी हो ! गोविन्द ने उसे बरबस फिर पलँग पर बिठा दिया। उसी समय ज़ैनी ने अजीब करुणा से कहा, "काश !···गोविन्द ! मैं इसी तरह···अपने हाथों से सारी दुनिया को छूकर महसूस कर पाती ! कि यह दुनिया कैसी है ?··मेरा जगतपुर कैसा है !···धरती कैसी है !···तुम्हारी नयी फ़सल कैसी है !··· दुनिया की और चीज़ें कैसी हैं !···काश ! मैं इसी तरह छूती हुई—महसूस कर पाती !"

"घबड़ाओ नहीं !···सब हो जायगा···सब हो जायगा," गोविन्द ने कहा, "और तब तुम पहले अपने को भी आइने में देखोगी। कि ·· तुम कितनी ख़ूबसूरत हो !·· शायद जगतपुर में·· अकेली"

"सच गोविन्द !···यह क्या कह रहे हो ?···मैं खूबसूरत हूँ !" ज़ैनी जैसे बच्चों की तरह हो उठी थी, "मैं ख़ूबसूरत हूँ !···मैं कैसी हूँ·· तुम मुझे बता दो !··· बता दो मैं कैसी हूँ गोविन्द, मेरी खूबसूरती पर अपनी अँगुलियाँ फेर कर मुझे दिखा दो···एहसास करा दो कि मैं··· कैसी हूँ।"

"बहुत खूबसूरत हो ! गोविन्द ने ज़ैनी को छूते हुए कहा, "यह

हैं · · · तुम्हारी ख़ूबसूरत आँखें, इनमें सब तरह की ख़ूबसूरती बरक़रार है· · · सिर्फ़ इनमें रोशनी ही तो नहीं है !· · ·यह हैं · · · तुम्हारी मासूम· · नाक !· · यह है· · · मुलायम मुँह 'ओंठ। यह है तुम्हारा रेशम और रुई की तरह मुलायम चेहरा· · · ख़ूबसूरत बाल !"

गोविन्द आगे· ·चुप हो गया ! उसने देखा कि ज़ैनी एकाएक · · सुर्ख़ होती जा रही है।· · उसका ज़िस्म काँपने लगा है, उसके सब रोंगटे खड़े हो गए हैं। गोविन्द की वाणी मौन हो गई। ज़ैनी ने फिर मचल कर कहा,"चुप क्यों हो गए ?· · ·आगे बताओ · · · मेरे हाथ पैर · · ·और सब कुछ कैसा है !"गोविन्द ने करुणा और प्रेम से विह्वल होकर कहा, "बहुत अच्छी हो ज़ैनब ! · · जैसे ज़न्नत की सब से ख़ूबसूरत परी ! · · · जिसकी ख़ूबसूरती के भरे हुए ख़जाने से किसी बदअक़्ल ख़ुदा · · · ने या किसी ज़लील चोर ने · · · आंखों की रोशनी का कोहनूर चुरा लिया हो !"

इसी समय चौके से ज़ैनब की आवाज़ आई, "बाज़ी ! ओ बाज़ी · · · वहीं बैठी शायरी ही करती रहोगी कि · · · यहाँ से कुछ सामान ले जाओगी ! · · मैं एक मर्तबा कैसे सब सामान ले आऊँ !"ज़ैनी ने मुस्करा कर उत्तर दिया · · · "अरे ! मेरी शहज़ादी ! तुझे कौन कह रहा है तू एक ही बार में सब कुछ ला ! · · "

ज़ैनब चौके में हँस पड़ी और गोविन्द कमरे में। तब तक बाहर से आती हुई अम्मी ने कहा, "अरे ! · · ·अभी तक तूने गोविन्द को चाय नहीं पिलाई !"

"हाय राम! मैं अकेले क्या-क्या करूँ, अम्मी !"

ज़ैनब ने ठुमक कर कहा। और अब अकेली ज़ैनी कमरे में हँस पड़ी। अम्मी और ज़ैनब ने सब सामान ले आकर एक छोटे से मेज़ पर रख दिया। गोविन्द ने उठकर अदब से अम्मी को नमस्ते किया और अम्मी ने बढ़कर गोविन्द को अपने मातृत्व के दामन में चिपका लिया,

"ख़ैरियत से रहो बेटा ! . . . जल्द एम० ए० हो जाओ . . . तुम्हारी नयी खेती . . कामयाब हो !"

अम्मी की विधवा आँखों में प्यार के आँसू छलक पड़े; उस पवित्र गंगा जल की तरह जो किसी पवित्र देवता के सामने बहाया जाता है।

सब एक ही साथ चाय पी रहे थे। सब एक ही तश्तरी में ज़ैनब के हाथ का नमकीन खा रहे थे ! · · · मीठी-मीठी रोटी खा रहे थे।

"बेटा तुम कितने बहादुर हो !"

"सब आप का आर्शिबाद है अम्मी !"

"तुम कितनी मुसीबतों को एक साथ लेकर चल रहे हो, मैंने सुना है · · इधर बड़ी पट्टी वाले · · · रात-रात भर सभाएँ करते रहते हैं ! "

"करने दो अम्मी ! · · · सब झूठे हैं ! · · नादान हैं ! · · · एक दिन उन्हें भी असलियत मालूम होगी · · · तब पछताएँगे · · · । हाँ अम्मी यह बताओ कि · · · तुम्हारे बाँध के किनारे वाले · · · सीतारामी धान की फ़सल कैसी है ?"

"क्या पूछने हैं बेटा ! · · जैसे काले बादल ! · · खेत में अभी कोई बारह साल का लड़का घुसे तो · · जल्दी बाहर नहीं निकल सकता · · छिप जायगा ! सब खेतों में निकाई पूरी हो गई है ! · · पीपल के किनारे वाले चार बीघे धान की पट्टी में कुछ निकाई बाक़ी रह गई थी · · आज मैंने उसमें भी मज़दूर लगवा दिया है।"

"और हमारे ज्वार के खेत में मचान गड़ गया न अम्मी !" ज़ैनब ने बीच ही में पूछा।

"हाँ आज शाम तक गड़ जायगा !"

"मैं मचान पर बैठ कर तब अपने सारे खेत रखाऊँगी अम्मी !" · ·

"सिर्फ़ अपने खेत ?" गोविन्द ने प्यार से पूछा।

"नहीं ! नहीं' 'भूल गई !—सब, जितनी दूरी में मेरी नज़र दौड़ेगी' 'मैं सारे जगतपुर की फ़सल रखाऊँगी !"

"लेकिन मैं तुझे अकेले मचान पर नहीं जाने दूँगी' 'अपने ख़ूँखार दुश्मनों को भूल गई क्या ?"

सब चुप हो गए। गोविन्द ने अर्थ भरी दृष्टि से ज़ैनब को देखा, और मुस्करा दिया। जैसे उसने समझा दिया हो' 'हाँ' 'ज़ैनब !' 'होशियार रहना !' 'असल में लड़ाई तुम्हारे ही लिए हो रही है। इस धरती की लक्ष्मी तुम्ही हो' 'जिसके लिए धरती के राक्षस बुरी तरह से पीछे पड़े हैं। ज़ैनब ने मुस्करा दिया, जैसे उसने गोविन्द से कह दिया हो,

अच्छा गोविन्द मैं कभी भी अकेले मचान पर नहीं जाऊँगी' 'जब तुम चलोगे' 'तब मैं भी चलूँगी' '।

* * *

जैसे ही चाय ख़त्म हुई। दरवाज़े पर किसी ने गोविन्द को बहुत जोर से पुकारा। गोविन्द ने बाहर निकल कर देखा, लम्बरदार का हलवाहा भीखू खड़ा है। और उसने गोविन्द से कहा, "गोविन्द बाबू !' 'गोविन्द बाबू ! आपको किरपाल बाबा जल्दी से बुला रहे हैं !"

"कृपाल बाबा ?' 'लम्बरदार के काका !" गोविन्द ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ' 'वही, गोविन्द भइया !' 'उनकी हालत बहुत ख़राब है, मौत की खाट पर पड़े हैं' 'आपको देखना चाहते हैं।"

"अकेले लम्बरदार के घर मत जाओ' 'गोविन्द !"ज़ैनब ने जाते हुए गोविन्द से कहा।

अम्मी ने भी पुकार कर कहा, "बेटा ! और किसी को साथ ले लेना !"

लेकिन गोविन्द अकेले, भीखू के साथ बड़ी पट्टी की ओर बढ़ गया।

दरवाज़े पर, लम्बरदार ने गोविन्द को घूरती हुई घृणा की आँखों से देखा; लेकिन गोविन्द मुस्कराता हुआ अन्दर चला गया। भीतर पहुँचकर उसने देखा; कृपाल बाबा मृत्यु शय्या पर पड़े हैं।

गोविन्द को देखते ही बाबा की आँखों से आँसू टपकने लगे। उन्होंने अपने कंकाल हाथों से गोविन्द का हाथ पकड़ते हुए क्षीण स्वर में कहा' "बेटा !··गोविन्द !!··ज़मीन्दारी कब खत्म ··होगी ?"

गोविन्द ने समीप से कहा, "मेरे अच्छे बाबा !··बहुत जल्द !"

"तुमने तो एक मरतवा बताया था कि "जमी··न्दारी··खत्म हो गई ··बेटा; अखबार भी दिखाया था ··सरकार ने ऐलान भी ·· किया ··था ··तब क्या देरी है ?"

गोविन्द ने बताया, "बाबा ! वैसे तो सरकार के ऐलान से, अखबार से ज़मीन्दारी टूट चुकी है ··कितने लोग, गाँव भूमिधर भी बन चुके हैं ··लेकिन कब सच्ची तरह टूट जायगी ··नष्ट होगी; इसे सरकार की नीति जाने ··बाबा !"

"लेकिन ··आह गोविन्द !··मैंने सोचा था कि मेरे मरते-मरते तक ज़मीन्दारी टूट जायगी। हम अपनी धरती के मालिक हो जाएँगे ·· मेरी लाश ··मेरी धरती पर फूँकी जायगी ··लेकिन हाय रे ··बद-क़िस्मती !"

इसके आगे बाबा की आवाज़ क्षीण हो गई ··उनमें बोलने की शक्ति न रह गई। वे केवल अपनी डबडबाई हुई आँखों से गोविन्द को देख रहे थे। और अपने उठे हुए हाथों से गोविन्द को आशीर्वाद दे रहे थे।

गोविन्द प्यार से समझा रहा था—"कृपाल बाबा !···अभी··· आप जीवित रहिएगा···आप अच्छे हो जाएँगे..घबड़ाइए नहीं··।"

गोविन्द ने कृपाल बाबा के चरण छुए और वह बाहर जाने लगा। सहसा उसने सामने देखा लम्बरदार काका की सबसे बड़ी लड़की

कौशल्या प्यार से गोविन्द को रोककर खड़ी हो गई है, "गोविन्द भइया। खाना खाकर जाओ··खाना तैयार है !··।"

गोविन्द चुप-चाप क्षणभर तक सामने एक सफ़ेद पर्वत की तरह खड़ी हुई कौशल्या को देखता ही रह गया।

कौशल्या ने फिर मचलते हुए कहा, "बिना आज तुम्हें खाना खिलाए··मैं जाने नहीं दूँगी··गोविन्द भइया !··तुमने तो मेरा घर ही छोड़ दिया।"

"मैं ज़रूर खा लेता बहन ! लेकिन इस समय मुझे बिल्कुल भूख नहीं है।"

"नहीं··थोड़ा ही खाकर जाओ !"

"और किसी दिन बहन, !" गोविंद ने हाथ जोड़ते हुए कहा।

"जब दरवाजे पर···लम्बरदार काका नहीं रहेंगे···।"

"क्यों ?···काका का क्या डर ?"

"वे क्रोधित होंगे···और इस गुनाह के लिए··तुझे पीटेंगे भी।"

"नहीं कुछ नहीं !···उनसे क्या मतलब ?···कुछ नहीं !··· तुम मेरे राजा भइया हो !···उनसे क्या ?"

कौशल्या ने बरबस गोविंद का कुर्ता उतार दिया और लोटे के पानी से उसके पैर धोने के लिए टूट पड़ी। बचाते-बचाते भी, कौशल्या के फेंके हुए पानी से गोविन्द का पैर धुल गया।

गोविन्द सब कुछ भूल गया। वह चौके में पीढ़े पर बैठा था। उसके सामने भोजन से परोसी हुई थाली थी। गोविन्द धीरे-धीरे खा रहा था। कौशल्या मुस्कराती हुई पंखा झल रही थी। और धीरे-धीरे बातें करती जाती थी, "गोविन्द भइया ! तुम मुझे अपने घर ले चलोगे ? मुझे तो काका ने तुम्हारे घर, ज़ैनब के घर, किशन के घर, जाने को

मना कर दिया है, कहते हैं कि तेरा अगर जाने को जो कहे' 'तो राजा की कोट चली जा' ' 'वह अपना राजघर है !''

गोविन्द खाता जा रहा था उसकी आँखों में एकाएक कौशल्या की तसवीर नच गई और उसकी सोलह वर्ष की अवस्था, पवित्र कौमार्य..। पर्वत की तरह' 'कौशल्या का नारी व्यक्तित्व' '। और फिर गोविन्द—विजय, तथा उसके अन्य दोस्त बहादुरसिंह वगैरह को याद करके सिहर उठा।

"तुम राजा की कोट कभी न जाना बहन ! अपने घर रहना।"

गोविन्द ने कहा। कौशल्या चौके में बढ़कर गोविन्द की थाली में और चावल रखने लगी। उसी समय गोविन्द ने देखा; आवेश में लम्बरदार उसकी ओर बढ़ते हुए चले आ रहे हैं। और उन्होंने एक पल में चौके में बढ़कर गोविन्द के सामने की थाली को लात मार दिया।

कौशल्या पागल हो उठी। वह चीख़कर काका से लिपट गई, और उसके सीने से अपना सर पटक कर रोने लगी—"हाय।..तूने यह क्या किया..काका ?..यह क्या किया ?.."

गोविन्द के थके हुए पैर धीरे-धीरे चौके से बाहर बढ़ने लगे। सहसा कौशल्या चीख़ती हुई गोविन्द के पैरों में लिपट गई।

लम्बरदार आँगन में खड़े होकर क्रोध में कहते जा रहे थे, "इस बेधर्मी को तूने आज चौके में बिठा कर खिलाया है..आज मैं तुझे काट कर फेंक दूंगा..।"

गोविन्द ने करुणा से छटपटा कर रोती हुई कौशल्या को नीचे से उठा लिया, और हाथ जोड़ कर लम्बरदार के सामने खड़ा हो गया —"लम्बरदार काका !..कौशल्या बहन को माफ करदो !..पाप मेरा है..इसके लिए तुम्हें जितनी सजा देनी हो..जितना पीटना हो.. मेरी नंगी देह आपके सामने है ..ख़ूब पीट लीजिए।"

लम्बरदार ने क्रोध में कहा, "कौशल्या ! चुप हो जा सुअर ! इस थाली को भीखू चमार को दे दे ! ..चौके के सब खाने को बैलों की नाँद में डाल दे.. इसके बाद यह दूषित, अपवित्र चौका गंगा जल, तुलसी की पत्तियों, ठाकुर जी के भोग से ठीक किया जायगा।..जा आज.. तुझे छोड़ दे रहा हूँ..फिर अगर..।"

लम्बरदार के सामने कुर्ता पहन कर गोविन्द धीरे से बाहर हो गया। उसके कानो में अब तक फूट-फूट कर रोती हुई कौशल्या की आर्त्त-पुकार आ रही थी—"मेरे राजा भइया ! मुझे माफ़ करना !.. तूने सच कहा था..लेकिन भइया..आज इस पगली बहन के नाते ..तेरी इतनी बड़ी वेइज़्ज़ती हुई। मुझे माफ़ करना..मेरे गोविन्द भइया !..तू जगतपुर की इज्ज़त है !.. आत्मा है..।"

* * *

गोविन्द धीरे से चुपचाप अपने कमरे सोया पड़ा था। उसके कानों में लम्बरदार की डाँटती हुई आवाज़ अब तक चुभ रही थी, और उसका विष उसके दिमाग पर इस तरह छा गया था कि उसकी इच्छा हो रही थी कि वह इसी क्षण किशन को साथ लेकर लम्बरदार का खून कर दे।

लेकिन दूसरे ही क्षण गोविन्द को लगा कि उसके पैरों पर।कौशल्या बहन गिरकर समझा रही है कि मेरे अच्छे गोविन्द भइया !..इसमें तुम्हारी क्या बेइज्ज़ती हुई ?..तुम और महान हो गए तुमने एक बहन को जिन्दा रक्खा है..अगर तुम उस दिन मेरा हठ न मानते.. तो मैं ज़हर खाकर मर जाती..तुम महान हो गोविन्द ! बहुत अच्छा हुआ..तुमने लम्बरदार का भर पेट अन्न तो नहीं खाया ! ..इसमें तुम्हारी बेइज्जती कहाँ...?.. इसमे तो लम्बरदार काका ने अपनी बेइज्ज़ती की है..बहुत बड़ा अपराध किया है...।

कौशल्या जैसे गोविन्द के पैरों में रोती हुई क्षमा माग रही थी —गोविन्द भइया !...चिन्ता न करो !...खुश हो जाओ...मेरी यही एक प्रार्थना और मान जाओ...मैं जगतपुर से बिदा—बिदा होती हुई ...अपने अपराधी काका के पैरों से लिपटकर कभी भी न रोऊँगी.. उसे कभी न क्षमा करूंगी..। जगतपुर से बिदा होने के पहले.. तुम्हारे पैरों में लिपट कर फिर-फिर रोऊँगी..।

१४

जगतपुर की उत्तरी सीमा की भूमि, पूरब में रोनी से लेकर पश्चिम शैदाबाद के सिवान तक सोई खलार (नीची) थी। और इस पूरे सिवान की धरती मटियार थी। इसलिए धान की फसल इधर बहुत होती थी। इस पूरे सिबान में पक्के दो सौ बीघे खेत जगतपुर वालों के थे। और इन दो सौ बीघों में धान की नयी फसल इसबार अपूर्व थी। यही जगतपुर के पूरे सिवान का उत्तरी हिस्सा, जगतपुर की भदँई फ़सल की आत्मा थी। इसलिए इस सिवान की उत्तरी सीमा पर, जगतपुर के राजा ने, रोनी के तट पर विहार करने के लिए ·· शीश महल बनवाया था। रानी का राजघाट बनवाया था।

हाँ तो जगतपुर के इस उत्तरी सिवान में, गाँव के पक्के दो सौ बीघे धान के खेतों में कुल सात मचान गड़े थे।

गाँव के समीप रामनाथ, शिवटहल, बड़ी पट्टी के दो मचान गड़े थे, पश्चिम तरफ, शैदाबाद के सिवान पर शेख़ पट्टी के रमजान चाचा, और अब्दुल के मचान गड़े थे। बीच में गोविन्द का मचान था और रोनी के किनारे तथा उत्तरी सीमा पर छोटी पट्टी के प्रताप और राधे के मचान थे।

* * *

जगतपुर के दक्खिनी सिवान की मिट्टी दोरस थी। और भूमि समतल थी। इसकी सीमा पश्चिम में नाथनगर के सिवान तक थी, दक्खिन और पूरब से रोनी से सीमित था। इस सिवान में कुल पक्के सौ बीघे खेत थे। जिनमें से साठ बीघे लहराते हुए धान के खेत थे; बीस बीघों में ज्वार फूल रहा था, दस बीघे में बाजरा और मकई की

फ़सल थी और शेष दस बीघों में ऊख, सांवाँ, कोदों और अरहर के खेत थे।

इस सौ बीघे फ़सल से भरे हुए सिवान में कुल बीस मचान गड़े हुए थे—क्योंकि हरसाल तो कम से कम गीदड़ों तथा अन्य जंगली जानवरों जैसे नील गाय, जंगली भैंसा, स्याही, बन्दर, हरिन आदि से ज्वार बचाने के लिए हर खेत में मचान ज़रूर गाड़ने पड़ते थे। इन मचानों की तो कोई बात नहीं, जगतपुर की तो यह पुरानी बात थी। नयी बात थी—धान कोदो के खेतों में माचन गाड़ कर जंगली आदमियों, राक्षसों से नयी फ़सल की रक्षा करना।

इसीलिए इधर उत्तर से छोटा सिवान होते हुए भी मचान बीस गड़े थे—यानी दस मचान दस बीघे ज्वार के खेत में और शेष दस मचान धान के साठ बीघे खेतों की रक्षा के लिए।

ज्वार के दसो मचान सब पट्टी वालों के थे। इनमें सबसे ऊँचा मचान ज़ैनब का था। इसके बाद किशन का था, फिर लम्बरदार, मुखिया सरपंच, फिर छोटी पट्टी, नीची पट्टी और शेख़पट्टी के मचान थे।

धान के खेतों में कुल दसो मचान गोविन्द के साथी जमुना, मुन्नू, खलील और सुखारी के गड़े थे

* * *

जगतपुर के पश्चिमी सिवान की गोद में जगतपुर का टीला सोता रहता था, और टीले के दामन में दो मस्जिद और मंदिर के खंडहर सो रहे थे।

इसके चारो ओर मिट्टी ढीली थी; मटियार बलुही और कंकड़ीली कीमेल। और इस सिवान की भूमि टीले की ओर चढ़ाव पर थी।

इस तरह से पश्चिमी सिवान में कुल पक्के सत्तर बीघे खेत थे,

जिसमें कुल बीस बीघे धान के खेत लहरा रहे थे और शेष में ऊख, अरहर, कोदों, ज्वार, और बाजरा, मकई के खेत थे।

लेकिन इस सिवान में केवल दो मचान थे—एक छोटी पट्टी का, एक शेख़ पट्टी का, क्योंकि यह सिवान जगतपुर का सबसे अधिक सुरक्षित भाग था।

* * *

जगतपुर के पूरब का सिवान पूरब में रोनी से सिमटा था, पश्चिम में राजा की लम्बी चौड़ी कोट का सीमा पड़ती थी। सामने बीस बीघे की अंग्रेजी बाग पड़ती थी।

इस सिवान की मिट्टी दोरस मटियार थी। इस सिवान में कुल पचास बीघे खेत थे, जिनमें ऊख और अरहर की फ़सल बहुत अच्छी थी। इसमें एक भी मचान नहीं गड़े थे, क्योंकि राजा का हुक्म नहीं था।

* * *

इस तरह से जगतपुर की आत्मा शाम से ही अपने-अपने मचानों पर, धरती की लक्ष्मी की रक्षा के लिए खेतों में चली जाती थी। रात को जब रिमझिम पानी बरसता था, तब सब मचान पर की आत्माएँ सावनी गाती थी, जब मूसलाधार पानी बरसता था, तब आत्माएँ और पागल होकर गाने लगती थीं—

"नेबुला तरे डोला रोकिदे बिदेशिया
अइलैं सवन की बहार रे !"

तूफ़ानी रात के देखकर जगतपुर में बहने गाने लगती थीं—

"बरसत बदरा झकोर,
बिरन मोरे भीजत होइहैं।"

विरह की काली रात में अनवरत पानी बरसने पर जगतपुर की दूल्हने, भाभियाँ गा उठती थीं—

"काले-काले बदरा बरसो न अँगना,
पइयाँ परों तोरे आज।

नान्हे के बलमा दूर नगरिया,
सूनी सेजरिया हमार॥"

और जब पानी बरस कर आसमान एकाएक साफ हो जाता था और उस पर चमकते हुए सितारों के बीच अजीब अदा से खूबसूरत चाँद निकल आता था, तब मचानों पर चनैनी और बारह लखन्दर, सदाबृक्ष आदि की गा-गाकर कहानियाँ उड़ने लगती थीं। और सूनसान जगतपुर के किसी घर में बारहमासा सुनाई पड़ता था—

"कापे करूँ मैं सिंगार,
बलम मोरे बारे हो ननदी!

चार महीना बरसा के दिनवाँ
टप-टप चुवत सेजरिया।
मैं विरहिन बैठि बलमा जगाऊँ,
हँसै लागीं सँखियाँ हमार—
बलम मोरे बारे हो ननदी··।"

इस तरह से यद्यपि इस वर्ष जगतपुर में सावन; कजली गाने के लिए पेड़-पेड़ और डाली-डाली में झूले नहीं पड़े थे पर जगतपुर अपनी नयी खेती के बीच, मचानों पर सब खुशियाँ मना लेता था। नौजवान, बच्चे, बूढ़े, लड़कियाँ, दूल्हनें, सब। और इस तरह से रात-रात भर जागकर, भीगते हुए पानी के बौछार से गीले होते हुए भी, जगतपुर जीने लगा था, और अपनी आई हुई धरती की लक्ष्मी की रक्षा कर रहा था।

* * *

उस दिन गोविन्द को शाम ही से रात जवान लगने लगी थी। और जब रात चार घंटे बीत गई तब उसे लगने लगा कि आसमान के चाँद ने उसे शराब पिला दी हो।

गोविन्द खा पीकर अपनी पट्टी से चला और अनायास शेख़ पट्टी में आते-आते ज़ैनब के घर चला गया। उस समय ज़ैनी अपने कमरे में खाना खा रही थी और अम्मी उसके पास ही में सो रही थी।

गोविन्द ने कमरे में आकर ज़ैनी को प्यार से छूकर कहा—"मैं गोविन्द हूँ··डरो नहीं,··!"

ज़ैनी आनन्द विभोर होगई। उसने हँसकर··गोविन्द को सामने वाली खाट पर बिठा दिया और रोटी का एक टुकड़ा सब्जी के साथ उठाकर गोविन्द के सामनेकर दिया—"लो इसे खालो !··तब मैं पूछूँगी कि··तुम कैसे हो ?"

गोविन्द ने रोटी को मुँह में लेते हुए कहा, "कुछ नहीं··मैं उत्तरी सिवान के मचान पर जा रहा हूँ—मैं सिर्फ़ यह जानने आया हूँ कि रात को तुम लोगों को किसी तरह का डर या भय त नहीं लगता ?"

"अगर लगता हो तो ?"

गोविन्द ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"लगेगा कैसे ?··रात भर तुम्हारे घर पर जो पहरा होता है !··"

"पहरा ?" ज़ैनी को आश्चर्य हुआ।

"हाँ हाँ पहरा !··छोटी पट्टी के मेरे दोस्त और बड़ी पट्टी के मेरे भाई लोग लगातार पाँच रात से पहरा देते हैं···और बाकी दो रात को··मेरे शेख़ पट्टी के दोस्त पहरा देते हैं!···बोलो!···अब तुम्हें डर कैसे लगता है ?"

"ओ ! हो !" ज़ैनी यह कहकर हँस पड़ी, "और तुम अकेले इस समय मचान पर जा रहे हो ?

"हाँ जा रहा हूँ !··ज़ैनब सो गई क्या ?"

"हाँ, अभी-अभी सोई है, शैतान आज दो दिनों से लगातार मुझसे लड़ रही है ··कि बाज़ी ! तुम मुझे दिन को भी क्यों नहीं अपने मचान पर जाने देती ?"

"ज़ैनब सो गई है ?" गोविन्द ने फिर पूछा।

"हाँ, सो गई है !··क्यों ?··उसे साथ ले जाओगे ?"

ज़ैनी यह कहकर मुस्कराने लगी।

गोविन्द शरमा कर तेज़ी से आँगन की ओर मुड़ गया···और तेज़ चाल से शेख़ पट्टी को पार करता हुआ उत्तर की आम वाली बाग में पहुँच गया।

आसमान में इधर-उधर भूरे-भूरे बादलों के टुकड़े धीरे-धीरे सितारों के ऊपर तैर रहे थे। चाँद, पूरब तरफ़ ओंठो के सामने तक आ गया था।

गोविन्द जिस समय आधी बाग पार कर रहा था, उसे पीछे कुछ आहट हुई। उसने घूम कर जैसे पीछे देखा, उसे लगा कि कोई पीछे-पीछे आता हुआ एक पेड़ के पास छिप गया है।

गोविन्द क्षणभर रुक कर फिर आगे बढ़ा और वह जैसे दस भी क़दम आगे न बढ़ पाया था कि उसने घूमकर देखा कोई पंजो पर दौड़ता हुआ अभी-अभी एक पेड़ के पीछे छिपा है। गोविन्द सहम गया, और उसने अपनी लाठी सँभाली और फिर आगे बढ़ा।

गोविन्द बाग को पार करता हुआ अब स्वयं पेड़ों के पीछे छिप-छिप कर देखने लगा—अब उसने स्पष्ट देख लिया कि कोई गाँव से ही उसके पीछे-पीछे आ रहा है।

गोविन्द तेज़ी से बाग़ को पार करके परती में सजग होकर खड़ा हो गया और उसने गंभीरता से पूछा—"कौन ?"

कोई उत्तर नहीं। बढ़ती हुई छाया फिर किसी नजदीक के पेड़ के पीछे छिप गई। गोविन्द घबड़ा गया, उसने जब तक सिवान की ओर

मुँह करके साथियों को पुकारना चाहा, तब तक वह पंजो पर दौड़ती हुई सूरत आकर गोविन्द से लिपट गई ।

गोविन्द आश्चर्य से चीख पड़ा, "ज़ैनब !··ओह··तू··।" ज़ैनब गोविन्द के दामन से इस तरह ख़ामोश होकर लिपट गई थी जैसे धरती पर चाँदनी लिपटी थी, चाँदनीं में रात खो गई थी ।

"ज़ैनब यहाँ तू कैसे चली आई ?··तू तो सो रही थी न !"

"मुझे नींद नहीं आती !" ज़ैनब ने धीरे से कहा ।

"अच्छा लौट चलो !··मैं तुझे घर छोड़ आऊँ ।"

गोविन्द जितना ही अपने दामन से लिपटी हुई ज़ैनब को छुड़ाते हुए समझा रहा था, ज़ैनब उतनी ही गोविन्द में चिपकती जाती थी ।

"आखिर कहाँ चलोगी ज़ैनब !"

"मैं तुम्हारे साथ मचान पर चलूँगी ।" बहुत धीरे से ज़ैनब ने कहा ।

"वहाँ ठंढक पड़ती है,···तुम भीग जाओगी और फिर इस कीचड़ में कैसे चलोगी ?··चलो मैं तुझे घर छोड़ आऊँ ।"

"नहीं मुझे अकेले घर पर डर लगता है ! मैं तुम्हारे साथ रहूँगी !' ज़ैनब मचल रही थी !

"पगली ! तुम्हारे घर पर तो मैंने डर ही के नाते पहरा लगवा दिया है !"

"मैं ख़्वाब में डर जाती हूँ··।"

"बाजी के साथ सोया करो !"

"नहीं मैं बिजली के कौंधने से सिहर जाती हूँ··और जब बादल गर्जता है··तब मैं अकेले रोने लगती हूँ ···।"

गोविन्द थोड़ी देर तक चुप होकर आसमान के दौड़ते हुए चाँद को देखने लगा, फिर उसने मुस्करा कर ज़ैनब को देखा और धीरे से कहा, "अच्छा··नहीं मानती तो चलो !"

ज़ैनब खुशी से पागल हो उठी। गोविन्द से सटी हुई जल्दी से परती को पार करने लगी। इसके बाद कीचड़ और पानी से भरे हुए धान के खेत आ गए।

गोविन्द ने रुकते हुए कहा, "कैसे चलोगी ?···मेड़ों पर बहुत कीचड़ है !··अगर कहीं फिसली तो ?"··

"नहीं फिसलूँगी, देख लेना···उँगुलियों को धरती में गड़ाती हुई चलूँगी।"

गोविन्द मुस्करा कर जैसे ही एक क़दम आगे बढ़ा, वह ज़ैनब को गंभीरता से देखता हुआ फिर चुप हो गया।

"चलो !··रुक क्यों गए ?" ज़ैनब अपलक गोविन्द को देख रही थी।

"मैं कठिनाई को सोच रहा हूँ कि चाँदनी रात है !··अपने-अपने मचान से ऐसा न हो कोई हमें देख ले ! और फिर कीचड़ में दो आदमियों के चलने की आवाज़—रामनाथ, अब्दुल, प्रताप के दिमाग़ में प्रश्न बनकर सामने आ जाएगी कि—ओ गोविन्द !··तुम्हारे साथ और कौन आ रहा है ?··तब बोलो···मैं क्या करूँगा ?···मेरा मचान भी तो बीचो-बीच है !"

गोविन्द के साथ ज़ैनब भी चुप हो गई। गोविन्द ने ज़ैनब को अब भी समझाया—"चलो···ज़ैनब···घर लौट चलो।"

ज़ैनब ने गोविन्द के दोनों हाथों को पकड़कर कहा, "तुम तो कुछ नहीं समझते ?···बेकार बी० ए० पास किया है···इस कठिनाई में क्या रक्खा है···मैं बताऊँ तरीक़ा ?"

"हाँ बताओ !" गोविन्द मुस्करा उठा।

"सुनो,···तुम मुझे अपनी गोद में ले लो !···मैं कितनी हल्की भी तो हूँ···और···जैसे ही इस नालायक चाँद के ऊपर कोई काला सा बादल का टुकड़ा आ घिरे··तुम मुझे मेंड़ से लेकर बढ़ चलो !"

"और जब चाँद साफ निकल आएगा तो ?"

"तब मुझे गोद में लिए हुए मेंड़ पर बैठ जाना ···समझे ! इसमें··कौन सी बड़ी बात है !"

गोविन्द को हँसी आगई। वह अपना मुँह बन्द करके खिलखिला कर हँसने लगा। ज़ैनब मुस्कराती हुई चाँद और उसके पास के काले बादल के एक चौड़े टुकड़े को देख रही थी। और क्षणभर में उसने प्रसन्नता से कहा, "चलो··मुझे ले चलो ! देखो चाँद काले बादलों में छिप गया !"

जल्दी से गोविन्द ने ज़ैनब को अपनी गोद में उठा लिया और मेंड़ से अपनी मचान की ओर बढ़ने लगा। उसके सामने से चाँदनी से ढके हुए धान के खेतों पर जैसे-जैसे एक छाया की काली परत भाग रही थी वैसे-वैसे थोड़ी देर के लिए काले बादलों से बनी हुई काली रात में गोविन्द ज़ैनब को छिपाए हुए भाग रहा था; जैसे लगता था कि काले बादलों के पीछे-पीछे चाँद अपने में अपनी चाँदनी समेटे हुए भाग रहा है।

और जैसे ही चाँद आसमान में साफ़ निकला। गोविन्द ज़ैनब को लिए हुए मेड़ पर बैठ गया और उसके ऊपर फिर दौड़ती हुई चाँदनी की एक सफ़ेद चादर बिछ गई।

इस तरह दो बैठकों में, गोविन्द ज़ैनब को लिए हुए अपने मचान के नीचे आगया और उसी दम ज़ैनब को सहारा देकर अपनी ऊँची मचान पर बिठा दिया और गोविन्द मचान से नीचे उतरने लगा।

ज़ैनब ने गोविन्द को रोकते हुए पूछा—"नीचे कहाँ जा रहे हो ?"

"पैर धोने जा रहा हूँ !··कीचड़ लगा है न !"

"नहीं नीचे मत जाओ !" ज़ैनब ने गोविन्द को मचान पर खींचते हुए कहा, "लाओ मैं तुम्हारा पैर अपनी ओढ़नी से पोछ दूँ !"

"नहीं··नहीं मैं एक सिकेन्ड में धो लेता हूँ।"

गोविन्द नीचे उतरने के लिए हट कर रहा था, पर ज़ैनब ने उसे बरबस मचान पर खींच लिया और अपनी ओढ़नी से गोविन्द के कीचड़ से सने हुए पैर को पोंछ दिया।

फिर गोविन्द का होश जाता रहा। वह ज़ैनब को अपने दामन में छिपाए हुए मचान की खाट पर लेट गया।

गोविन्द ज़ैनब के ओठों के भीतर अपनी जबान डालकर उसके मुँह के अमृत को पीता रहा और दाएँ हाथ से उसकी पतली कमर में न जाने क्या टटोलता रहा। गोविन्द का बायाँ हाथ ज़ैनब के घुघराले बालों में खेल रहा था; और उसके पैर ज़ैनब के मासूम पैरों से लिपटे थे।

फिर चाँद पर एक बहुत बड़ा घना बादल आकर टिक गया और चाँदनी रात जैसे शरमा कर घूँघट में छिप गई।

सफ़ेद चाँदनी काले सुनहरे पर्दे में छिप गई और गोविन्द धीरे से ज़ैनब को अपने सीने में लिपटाये हुए ही करवट लेट गया।

अब गविन्द का बायाँ हाथ ज़ैनब के सर के नीचे मुलायम तकिए का काम कर रहा था और दायाँ हाथ गहरे समुन्दर के दो छोरों पर जलते हुए पवित्र चिराग़ की लौ पर फिर रहा था जिसमें असीम प्रकाश था, प्रकृति की असीम गरमी थी, क़ुदरत का जबरदस्त आकर्षण था।

यह प्रकाश, यह पवित्र गरमी, यह एक दूसरे में मिल जाने का आकर्षण; ज़ैनब और गोविन्द के लिए पहला था; सबसे नया था; सबसे अनजान था। दोनों के रक्त अच्चुत थे, दोनों की फूलती हुई सांसों से ज़न्नत की खुशबू आ रही थी।

दोनो एक दूसरे से मिलते जा रहे थे, लेकिन दोनों को यह नहीं पता था कि यह क्या हो रहा है। दोनों के अणु-अणु, ज़र्रे-ज़र्रे एक दूसरे में खो गये थे, लेकिन दोनों को नहीं पता था कि वे इस धरती पर

ज़िन्दे हैं। दोनों के रक्त, दो तूफानी समुन्दर की लहरें बनकर एक दूसरे की होगई थीं, लेकिन दोनों को ज्ञान नहीं था कि वे कहाँ हैं ?

प्रकृति जवान होकर अपना कार्य करती जा रही थी और कायनातका ज़र्रा-ज़र्रा चुपके-चुपके मंगल गीत गाता जा रहा था।

चांद बादलों में छिपा हुआ नयी फ़सल के बीच, मचान पर दो शरीर और एक आत्मा देख रहा था। गोविन्द और ज़ैनब दोनों एक सुनहरा ख़्वाब देख रहे थे—एक आत्मा से, एक रक्त के जमे हुए बहुत बड़े पवित्र बूँद से; कि जगतपुर की धरती पर एक नन्हा गुलाब सा मासूम बच्चा खेलेगा••जो न बड़ी पट्टी का होगा; न शेख़ पट्टी का !••वह धरती का बच्चा होगा। उसकी जाति धरती होगी, उसका नाम 'अनाम' होगा— ।

धीरे-धीरे चांद पर से काला बादल हट गया और गोविन्द ने सर उठा कर देखा,

चाँद मुस्कराता हुआ उसके सर पर आ गया है।

ज़ैनब की आँखें बंद थी। गोविन्द ने उठकर मचान के छप्पर के बीचों-बीच में अपनी उँगली से एक गोल सा सूराख बना दिया, और अब चाँदनी उस गोल सूराख से ठीक ज़ैनब के मुँह पर पड़ रही थी।

ज़ैनब शिथिल होकर मानो कोई सुनहरा ख़्वाब देखती हुई सो रही थी। और उसके चमकते हुए चेहरे पर चाँदनी की पवित्र वर्षा हो रही थी।

गोविन्द झुका हुआ ज़ैनब को देख रहा था। उसकी बंद पलकों के बीच प्रेम का पवित्र संगीत, उसके सूखे हुए ओठों पर अमन्द राग, सुर्ख गालों पर ज़ैनब की शरमाई हुई सूरत; बिखरे हुए काले बादलों जैसे बालों में मलय की मन्द-मन्द गति। गोविन्द चाँदनी में भीगती हुई ज़ैनब की खूबसूरती देख रहा था, ज़ैनब की आँखे अब तक बन्द थीं, पर अब उसके ओठों पर धीरे-धीरे मुस्कराहट की किरने फूट रही थीं।

गोविन्द झुका हुआ था। ज़ैनब ने उच्छ्वास भरकर अपने दोनों हाथों को ऊपर उठा दिया, और गोविन्द मुस्करा कर उसकी उठी हुई बाहुओं में समा गया। अब ज़ैनब, गोविन्द के ओठों के पवित्र अमृत को पी रही थी, और गोविन्द को अपने दामन में जकड़ती जा रही थी। फिर ज़ैनब थक गई। उसके अंग-अंग थक गए। उसके हाथ, पैर, सर, ओंठ, आँखें, यहाँ तक कि जिस्म के रक्त का हर एक बूँद थक गया—और वह इतनी हल्की हो गई जैसे फूल की खुशबू।

फिर गोविन्द ने थकी हुई, फूलसी ज़ैनब को अपने दामन में लेलिया और धीरे धीरे कहने लगा—"ज़ैनब !...ओ ज़ैनब !!...कुछ बोलो !!...ज़ैनब !"

ज़ैनब गोविन्द को देख-देखकर केवल मुस्कराती रही और गोविन्द धीरे धीरे कह रहा था—"मेरी रानी ! ज़ैनब !!...तुम मेरी दूल्हन हो... मुझे देखो...।"

ज़ैनब ने आँखे खोलीं और अपलक गोविन्द को देखने लगी, फिर चीखकर गोविन्द के सीने में चिपक गई।

"क्या है ज़ैनब ?"

"मुझे डर लग रहा है।" ज़ैनब ने बहुत धीरे से कहा।

"मेरे दामन में भी ?" गोविन्द ने आश्चर्य से पूछा।

"नहीं, ख्वाब में डर रही हूँ...कि...मैं किस की दूल्हन बनूँगी ?... मुझे कोई डरा रहा है गोविन्द ?" ज़ैनब सख्ती से गोविन्द के सीने में चिपकती जा रही थी, और धीरे-धीरे अपनी कँपती हुई वाणी में कह रही थी, "मुझे कोई डरा रहा है गोविन्द !...बड़ी-बड़ी आँखें दिखाकर कह रहा है...कि ज़ैनब !...तू शेख है...तुम्हारा गोविन्द...ब्रह्मन है...तुम दोनो जगतपुरी हो !...आह ! मुझे कोई डरा रहा है गोविन्द !"

ज़ैनब चुप होकर गोविन्द के सीने में चिपक गई। गोविन्द प्यार से

उनके सर को सहला रहा था और सोच रहा था कि ज़ैनब को अनायास डराने वाले दुश्मन का मैं क्या करूँ ?

"मत डरो ज़ैनब !" "गोविन्द ने धीरे से कहा, "ज़ैनब मत डरो ! तुम मेरी लक्ष्मी हो ! मेरी धरती हो ! और एक दिन तुम्हीं ने मुझको भी तो कहा था—कि गोविन्द ! तुम मेरे आकाश हो ज़ैनब डरो नहीं धरती और आकाश बेजात होते हैं, वे एक तत्व के हैं न उसमें से कोई हिन्दू है न, मुसलमान दोनों एक हैं !"

"लेकिन धरती और आकाश ! आह गोविन्द !"

"धरती और आकाश !. .तुम शायद यह सोच रही हो कि दोनो. अलग-अलग हैं बहुत दूर-दूर हैं । पर मेरी रानी ज़ैनब ! यह दुनिया को धोखा है. .धरती पर आकाश खड़ा है—बिना धरती के आकाश का कोई अस्तित्व ही नहीं. . .धरती ही आकाश है और दुनिया को दिखाई देने वाला नीला आकाश इसी पृथ्वी की छाया है !. .मेरी दूल्हन ज़ैनब ! डरो नहीं. .मुस्कराओ !. .हँसकर मुझे देखो !. .बिना तुम्हारे मेरा अस्तित्व ही नहीं. .मैं तुम्हारी आत्मा की छाया हूँ. .तुम्ही. .मेरा सब कुछ हो !"

ज़ैनब खुश होकर इतनी वज़नदार हो गई कि सचमुच जैसे पृथ्वी; अडोल. .धरती. .।

गोविन्द ने धीरे से ज़ैनब को खाट पर लिटा दिया और स्वयं मचान की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा।

"नीचे मत उतरो गोविन्द !" ज़ैनब ने बैठते हुए कहा।

"अभी ऊपर आया।"

गोविन्द ने नीचे उतर कर एक धान के पेड़ को तोड़ा और उसे लिए हुए मचान पर चढ़ आया। गोविन्द ने ऊपर मचान के छप्पर वाली सूराख को और चौड़ा कर दिया और धान के पेड़ के गर्भ में आए हुए उसके फूल को अपनी चुटकियों में लेलिया। और फिर ज़ैनब के बिखरे

हुए बालों के बीच उसकी सफेद माँग में उन फूलों के पराग को भर दिया। ज़ैनब मुस्करा उठी। नीचे धरती मगंल गीत गाने लगी; ऊपर आसमान गाने लगा, चाँद अपनी चाँदनी उड़ेलता हुआ मँत्रमुग्ध हो गया।

गोविन्द अपनी लक्ष्मी, ज़ैनब को सुहाग लुटा रहा था। उसकी माँग, उसका माथा, उसका अणु-अणु सुहागन हो गया और गोविन्द ने धीरे से ज़ैनब की ओढ़नी को उसके शरमाए हुए मुँह तक खींच दिया और ज़ोर से अपने सीने में चिपका लिया। फिर धीरे-धीरे दुहराने लगा—"अब—कभी न डरना ज़ैनब !··कभी न डरना !!"

उसी समय पूरब से राधे ने अपने मचान से पुकारा—"गोविन्द भइया !··सो रहे हो ? ओ गोविन्द भइया !"

गोविन्द ने आवाज़ दी—"नहीं··जग रहा हूँ, राधे तुम सोओ !"

* * *

थोड़ी सी रात शेष थी। चाँद मुस्कराता हुआ पश्चिम चला गया था और उसकी पूरी रोशनी गोविन्द के मचान पर पड़ने लगी थी। गोविन्द और ज़ैनब दोनों मचान से उतरे।

गोविन्द ने ज़ैनब को अपनी गोद में उठा लिया और खिली हुई चाँदनी में गोविन्द खेतों को पार करता हुआ उसे बाग के पास धरती में उतार दिया।

जिस समय दोनों शेख पट्टी में पहुँचे, उस समय दोनों ने सुना कि बड़ी पट्टी में अब तक कोई बड़ी सभा हो रही है।

ज़ैनब गोविन्द से एक क्षण भर के लिए भी अलग होने को तैयार न थी। पर गोविन्द ने ज़ैनब को घर में कर दिया और स्वंय अपने घर चला आया।

* * *

प्रातः काल होते ही गोविन्द इन्द्रा बहन के कमरे में पहुँचा और इन्द्रा

को अभिवादन करते हुए कहा, "बहन ! एक खुशी की बात है। और अपने संसार में उसे पहले तुम्हीं को बताने आया हूँ !"

इन्द्रा ने प्यार से गोविन्द को अपने पास खींच लिया और कहा, "धीरे से मेरे कान में कह दो !"

"बहन ! रात का मैने ज़ैनब से अपनी शादी करली !"

"शादी करली !" इन्द्रा को प्रसन्नता युक्त आश्चर्य की सीमा न रही, "इतने चुपके से कैसे और कहाँ की ?"

"उत्तरी सिवान में, अपनी नयी खेती के बीच अपने ऊँचे मचान पर !"

"मचान पर ?"

"हाँ मचान पर, चाँदनी की वर्षा में, नये धान के ताजे फूल के सुहाग से मैंने उसकी माँग भरी है बहन ! उसके माथे पर फूल के पराग का कुमकुम लगाया है !"

"बहुत अच्छे हो गोविन्द !"

यह कह कर इन्द्रा में गोविन्द के उन पविम पाथों को प्यार से चूम लिया और धीरे से कहा, "तुम जगतपुर की आत्मा हो ! लेकिन तुम मेरी भाभी को क्यों नहीं साथ लाए ?"

"क्षमा करना, मैं भूल गया बहन !"

"अच्छा तुम्हारे इस अपूर्व बिवाह के उपलक्ष में, आज रात को तुम दोनों का मेरे यहाँ प्रीति भोज है जरूर आना। मैं अपनी दूल्हन भाभी को चुपके से बुला लूँगी मुस्कराओ गोविन्द। खूब मुस्कराओ मैं तुमसे यही आशा करती थी। आज रात को मैं आने हाथ से भोजन तैयार करूँगी और दूल्हन भाभी और राजा भाइया को खिलाऊँगी !"

गोविन्द श्रद्धा और विनय से झुका हुआ इन्द्रा बहन के पवित्र चरणों को देख रहा था। इन्द्रा प्रसन्नता से गोविन्द के ऊँचे मस्तक को देख रही थी !

इतने में लाल साहब, रानी माँ के साथ गोविन्द के पिता महेश दत्त जी ने इन्द्रा बहन के कमरे में प्रवेश किया।

गोविन्द ने आश्चर्य्य से पिता जी को देखा। उनकी आँखों में आँसू थे। गोविन्द ने दौड़कर पिता जी को सम्हालते हुए पूछा, "क्या है पिता जी?"

सब चुप थे।

गोविन्द ने परेशान होकर फिर पूछा, "क्या है पिता जी? बोलिए!..कुछ तो बताइए!"

"गोविन्द!" पिता जी का कंठ भर आया था, "बेटा!..हम बड़ी पट्टी की बिरादरी से अलग कर दिए गए!...रात को बिरादरी की सभा हुई है!"

"रात को!"

गोविन्द चुप होकर सोचने लगा। उसकी आँखों में बीती हुई रात की पवित्र अनुभूति बरबस छा गई। उसने मुस्कराते हुए पूछा, "किस बात पर हम बिरादरी से अलग किए गए हैं पिता जी?"

"इसे भी पूछना है!... याद नहीं जिन बातों के आधार पर उस दिन लम्बरदार ने तुम्हारे सामने से परोसी हुई थाली फेंक दी थी!"

"यह आपको कैसे मालूम पिता जी?" गोविन्द बहुत परेशान होग या था।

"तुम्हें नहीं मालूम! ऐसी बातें...मुझे जलाने के लिए..उसी दम कही जाती हैं!"

"लेकिन इन बातों से क्या हो सकता है?.." गोविन्द ने एक दृष्टि से बहन इन्द्रा, रानी माँ, लाल साहब और पिता जी को देखते हुए कहा, "मेरे प्रति उनकी दुश्मनी में..उन्हें जो कुछ सूझ रहा है... वे कर रहे हैं! और उन लोगों के अधिकार में जितनी बातें होंगी...वे एक न उठा रक्खेंगे...इसके लिए तो हमें तैयार ही रहना है!"

इन्द्रा बहन, रानी माँ और लालसाहब तीनों ने गोविन्द का समर्थन किया और अपनी बातों से उसे और शक्ति दी।

गोविन्द पिताजी के साथ नीची पट्टी को पार करता हुआ बड़ी पट्टी की ओर बढ़ रहा था।

पिता जी ने अजीब करुणा से कहा, 'गोविन्द ! तूने मुझे कहाँ छोड़ा ?...इसे भी तो सोचो..अपने खानदान को सोचो..मुझे सोचो...फिर अपने को सोचो...और..।

"और क्या पिता जी ?..उसे भी कह डालिए !"

"और जो इधर मैंने तुम्हारी पहाड़पुर की शादी तै कर ली थी !... सोचो !...में द्वारका मिश्र से क्या मुँह दिखाऊँगा !"

"आपको इन बातों के लिए परेशान होने की आवश्यकता ही नहीं पिता जी !..इसमें आपको प्रसन्नता होनी चाहिए कि गोविन्द आपका नालायक बेटा नहीं !"

"मेरे जीने का सिर्फ़ यही तो भरोसा है बेटा !"

उस समय पिता जी की आँखों से आँसू टपकने लगे और गोविन्द धैर्य्य से उन्हें समझाता जा रहा था।

घर में पहुँचकर गोविन्द ने सूरा दीदी को देखा। दीदा भी बहुत उदास थी। लगता था कि इस घर का सबसे बड़ा अधिकार किसी ने छीन लिया, कोई ऐसी विभूति छिन गई, जिसका कि जगतपुर में सबसे बड़ा महात्म्य था। जो इन जगतपुर वालों के ख्याल में सबसे बड़ा बदला था, सबसे बड़ा दंड था; गोविन्द की सबसे बड़ी हानि थी जिसका कि वह किसी भी तरह समझौता नहीं कर सकता। पर गोविन्द के लिए वह इतनी साधारण बात थी जैसे भूख में क्रोध लगने पर बच्चे का रो देना।

* * *

सुबह काफ़ी देर में जब ज़ैनब सोकर उठी, तब उसे लगा कि उसके पैर किसी इतने ऊँचे पहाड़ पर चल रहे हैं कि वह बार-बार सिहर उठ रही है। वह एक अजीब तरह भारीपन महसूस कर रही थी। उसे

लग रहा था कि कहीं किसी अज्ञात जगह पर, एक बेनाम तरह का मीठा मीठा दर्द हो रहा है। उसकी दोनों बाहुएँ बार-बार इस तरह फड़क रही थीं कि वह समूचे ख़ूबसूरत कायनात को अपने दामन में कसकर इतनी ज़ोर से दबा ले कि कायनात भी कल रात की तरह मीठे-मीठे दर्द से कराहने लगे।

ज़ैनब का कल रात वाला मीठा दर्द उसके दिल और आत्मा में चिराग़ जलाए बैठा था, जिसकी बाँकी ख़ुशबू से वह अब तक पागल थी।

आज सुबह के मीठे दर्द में खुमार था और जब ज़ैनब अपने पलँग से उठकर आगे क़दम बढ़ाने लगी तो उसे ऐसा लगा कि उसे कोई झकझोर रहा है और वह अब गिरी, अब गिरी।

ज़ैनब आँगन में आकर खड़ी हो गई और उसके दिल ने कहा कि वह अम्मी के गोद में अपना सर रखकर रात की सारी कहानी प्यार से रो-रोकर कह दे।

ज़ैनब फिर आँगन से अपने कमरे में भाग आई और शीशे में अपने को देखने लगी। वह कितनी हारी-हारी सी अजीब तरह से थकी सी लगती थी। उसकी सफ़ेद माँग में गोविन्द का भरा हुआ सफ़ेद सुहाग अब तक चमक रहा था, उसके माथे पर धान के फूल की सुहाग-बिन्दी अब तक अमिट थी। ज़ैनब उसे देखती गई, और उसके माथे की ओढ़नी अनायास उसके मुँह की ओर खिसक आई। उसे लगा कि गोविन्द आ गया। जैनब ने घूमकर देखा। वहाँ कोई न था। उसने फिर अपने को शीशे में देखा—उसकी माँग औरमाथे का सुहाग अजीब तरह से चमक रहा था। ज़ैनब ने सोचा कि इसे मिटाकर वह अपनी अम्मी के पास जाए। पर उसी क्षण जैसे उसके कानों में किसी ने कह दिया हो—"गुनाह न करो ज़ैनब! जगतपुर में सुहाग मिटाया नहीं जाता...।"

ज़ैनब सिहर उठी, फिर शरमा गई। उसने सोचा कि वह अपने सर को ओढ़नी से ढक करके अम्मी के सामने जाए। पर जैसे फिर किसी की आवाज़ आई, "गोविन्द से मिले हुए सुहाग को..अपनी अम्मी से न छिपा,..उसे दिखा दे ज़ैनब !..तुझे दुआ मिलेगी !"

ज़ैनब मुस्करा उठी। अपने शीशे को उठाकर प्यार से चूम लिया और दौड़ती हुई कमरे में अम्मी से लिपट गई।

अम्मी अपने पलँग पर बैठी हुई जामदानी में एक कसीदा बना रही थी। ज़ैनब उनकी गोद में सर रखकर मानो सो गई थी। "क्या है रे ज़ैनब ?" अम्मी ने काम बन्द करते पूछा।

ज़ैनब चुप थी।

"बोल रे लाड़ली मेरी !" अम्मी ने प्यार से ज़ैनब को देखा !

"अम्मी !...अम्मी।"

ज़ैनब ने फिर शरम से अपना मुँह अम्मी की गोद में छिपा लिया, और धीरे-धीरे अनायास उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे अम्मी ज़ैनब का मुँह अपने हाथों में लेकर देखते ही आश्चर्य्य में पड़ गई— "अरे ज़ैनब !...तू रो क्यों रही है ? बता क्या बात है बेटी ?"

"अम्मी !..मैं रो कहाँ रही हूँ ! मैं तो इतनी ख़ुश हूँ..इतनी ख़ुश..।" ज़ैनब ने आँसुओं को सुखाते हुए मुस्कराकर कहा, "अम्मी..मैंने कल रात को गोविन्द से..।"

ज़ैनब ने फिर सिहरकर अम्मी के आँचले में अपना सर छिपा लिया।

"अरी !..साफ़ साफ़ तो बता..क्या बात..गोविन्द से ?"

"अम्मी !..मैं सुहागन हो गई !"

ज़ैनब ने इतनी तेज़ी से कहा जैसे काले बादलों में छोटी सी बहुत बारीक बिजली चमक उठती है। और यह तेज़ी अम्मी के दिल और दिमाग़ में इस तरह उतरकर ख़ामोश हो गई जैसे आसमान से टूटता हुआ एक तेज़ सितारा फिर आसमान में ही छिपकर ख़ामोश हो जाता है।

अम्मी ने क्षण भर में ज़ैनब की माँग में धान के फूलों से भरे हुए सुहाग को देखा, उसके माथे पर एक इतना प्यारा निशान देखा कि अम्मी ख़ुशी से पागल हो उठी। अम्मी ने ज़ैनब को अपने दामन में इतनी ज़ोर से चिपकाकर छिपा लिया जैसे नींद में कोई अपने प्यारे ख़्वाब को चिपका कर भूल जाता है।

ज़ैनब कनखियों से बहुत दूर देख रही थी और अम्मी उसके बिखरे हुए बालों में अपना मुँह गड़ाकर धीरे-धीरे दुआ दे रही थी, "बेटी..तुझे तेरा आसमान मुबारक हो। तुझे तेरा ज़न्नत मुबारक हो!..तुझे तेरा ईश्वर..गोविन्द मुबारक हो!...अल्ला पाक! तेरे साथ हों...तेरा...सुनहरा ख़्वाब मुबारक हो बेटी! तेरे इस तवारीख़ी सुहाग को दुआ...तुझे और तेरे गोविन्द को दुआ बेटी!"

ज़ैनब ने सामने उठकर देखा, अम्मी की आँखों से आँसू बरस रहे थे; वे अनमोल आँसू...ज़ो बेटी के बिदा होते समय माँ के दिल से उमड़ते हैं, वे आँसू जो दुआ देते हुए, बरसते हैं, वे आँसू जो अमर सुहाग का बरदान देते हुए मंगल गीत गा-गाकर बरसते हैं।

अम्मी ने ठउकर सन्दूक से, अपनी जान से प्यारी एक ख़ूबसूरत अँगूठी निकाला और ज़ैनब के दाएँ हाथ बीच की उँगली में पहनाते हुए कहा; "यह तुम्हारे प्यारे मरहूम अब्बा की पाक निशानी, तुझे मुबारक हो बेटी!"

* * *

ऊपर का सूरज, पश्चिम की ओर काफ़ी ढल चुका था। गोविन्द का घर बिरादरी से बाहर कर दिया गया, गोविन्द अजात कर दिया गया; ज़ैनब को इसकी तिल भर चिन्ता न थी। अम्मी कुछ चिन्तित मुद्रा में अवश्य थी। ज़ैनब ने अम्मी से समझाकर कहा, "दुश्मनों की बात की परबाह नहीं करनी चाहिए अम्मी!...उन्हें यह थोड़े पता है कि गोविन्द ने मुझसे शादी कर ली..यह पता तो जिस दिन इन जगत-

पुर वालों को मिलेगा..वे सर पीटकर मर जायँगे। अभी यह बात तो हम तुम बाजी, गोविन्द..इन्द्रा बहन, पारो बहन और किशन भाई ही जानेंगे..। बिरादरी से अलग की बात तो दुश्मनी की चीज़ है अम्मी!..और फिर..तो हमारे गोविन्द को इसकी क्या परवाह!.. वह इनकी जात ही में कब था?..न जाने कब का छोड़ चुका था!"

इसी बीच में बाहर से आवाज़ आई—"क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ?"

इन्द्रा की नौकरानी गुलाबा ने आँगन से ही कहना शुरू किया, "बड़ी दीदी ज़ैनब! ज़ैनब दीदी!..आज राजकुमारी दीदी ने तुम्हें रात को दावत दी है—तुम्हें खाना खाने ज़रूर आना पड़ेगा..वे आज तुम्हें और गोविन्द बाबू को खिलाने के लिए अपने हाथ से खाना बना रही हैं!"

"सच गुलाबा!" ज़ैनब दौड़कर गुलाबा से लिपट गई, "सच गुलाबा!"

"हाँ..तैयार रहना, मैं शाम को तुम्हें लेने आऊँगी!"

यह कहकर गुलाबा इतनी तेज़ी से बाहर भाग गई जैसे इठलाती हुई हवा का तेज़ झोंका और ज़ैनब दौड़कर भी उसे न पकड़ सकी।

* * *

पूरब से आसमान में चाँद धीरे-धीरे ऊपर की ओर चढ़ रहा था। इन्द्रा के एकांत कमरे में गोविन्द, ज़ैनब और इन्द्रा एक थाली में खाना खाते हुए बैठे थे।

खाना समाप्त होते ही, इन्द्रा ने गोविन्द से कहा, "गोविन्द!.. चार मिनट के लिए क्षमा करना..अभी आ रही हूँ!"

इन्द्रा ज़ैनब को लिए हुए कमरे में चली आई और उसने उसके शलवार और कमीज़ की जगह पर अपनी नयी बनारसी साड़ी और ब्लाउज़ पहना दिया। और शरमाती हुई ज़ैनब को अपने दामन में चिपका कर उसके भरे मुँह को चूम लिया—"यह मेरी भाभी को मेरी भेंट है!"

इन्द्रा और ज़ैनब जब गोविन्द के कमरे में आईं, उस समय गोविन्द चुप होकर आसमान के सुनहरे चाँद को देख रहा था। इन्द्रा और ज़ैनब की ओर घूमते ही, उसकी आँखों में आश्चर्य्य की लहरें दौड़ गईं।

ज़ैनब शरमाती हुई, लज्जा और स्त्रीत्व के भार से झुकी हुई नीचे देख रही थी। गोविन्द ने आज ज़ैनब में वह ख़ूबसूरती देखी, जिसमें से वास्तव में किरनें फूट रही थीं, अजीब तरह की बेनाम ख़ुशबू निकल रही थी।

गोविन्द, ज़ैनब इन्द्रा, तीनों पास-पास बैठे थे। तीनों मुस्कराते हुए चुप थे। ज़ैनब के सर की सफ़ेद सुहाग रेखा चमक रही थी। उसका माथा, ऊसके अँचल के प्रतिबिम्ब में इस तरह रोशनी कर रहा था जैसे स्वर्ण कमल पर सूरज की पहली किरन पड़ रही हो।

इन्दा ने प्यार से ज़ैनब का दायाँ हाथ खींचकर अपनी हथेली में दबा लिया और अपनी प्यारी अँगूठी को ज़ैनब की उँगली में पहना दी—

"वह है मेरी भाभी को मेरी निशानी!"

"और यह साड़ी और ब्लाउज़?" गोविन्द ने पूछा।

"यह तो मेरी ओर से भेंट है।"

तीनों उठकर हँसने लगे और बढ़कर सामने से ख़ूबसूरत चाँद को देखने लगे।

"मुझे यह दिन कभी न भूलेगा गोविन्द!" इन्द्रा ने कहा।

"और मुझे कल और आज का चाँद कभी न भूलेगा।" ज़ैनब ने बीच में मुस्कराकर कह दिया। और सब हँसते हुए फिर से चाँद देखने लगे।

"अच्छा हुआ कल जगतपुर छोड़ने के पहले इतनी बड़ी ख़ुशी की चीज़ तो देखने को मिल गई।" इन्द्रा ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुम दोनों अमर हो..तुम्हारी सब चीज़ें अमर हों!"

"कल ही इलाहाबाद पढ़ने चली जा रही हो ?" ज़ैनब ने चिन्ता से पूछा।

"हाँ कल ही जाना है," इन्द्रा बहन ने मुस्कराकर कहा, "गोविन्द को भी जल्दी ही इलाहाबाद भेजना !"

ज़ैनब शरमा गई। गोविन्द गंभीर होकर इन्द्रा बहन के पार से अपने एम० ए० के सँकरे पथ को देखने लगा। और दूसरे ही क्षण उसके सामने जगतपुर की नयी खेती लहरा उठी। उसने बात को बदलते हुए पूछा, "इन्द्रा बहन !..तुम्हारी तिलकहरा वाली शादी के बारे में क्या तै हुआ ?"

"शादी तै हो गई है, गोविन्द !" इन्द्रा ने शरमाते हुए कहा।

अब ज़ैनब में हृदय की हँसी फूट पड़ी और उसने भी इन्द्रा बहन को लजाते हुए कहा, "तब तो बहुत अच्छा हुआ..तब मैं उनके सामने तुम्हें..अच्छा सा शिलवार और कुर्ती पहनाऊँगी !"

आसमान में चाँद काफ़ी ऊँचे चढ़ आया। ज़ैनब फिर अपने शिलवार और ओढ़नी में हो गई, ठीक उस रात की ज़ैनब की तरह जब वह पहले-पहले टीले के उस खंडहर में गोविन्द से मिली थी। इस तरह ज़ैनब फिर एक मामूमी लड़की हो गई और जिसके क़दमों में बादशाहियत गुलाम बनकर सिज़दा दे रही थी।

गोविन्द ज़ैनब के साथ कमरे के बाहर मुड़ ही रहा था कि इन्द्रा बहन ने पुकार कर कहा, "गोविन्द ! कमसे कम पच्चीस जुलाई तक इलाहाबाद ज़रूर पहुँच जाना।" गोविन्द दरवाज़े से लौट आया, और उसने अजीब गभीरता से कहा, "ज़रूर पहुँचने की कोशिश करूँगा बहन !..इलाहाबाद से पत्र देना..।"

गोविन्द और ज़ैनब दोनों रात की चाँदनी में खो गए। इन्द्रा बहन बहुत दूर से उन दोनों को देख रही थी।

१५

उस रात को जब तारामती लौटकर अपने महल में आई तो उसे लग रहा था कि उसका आज फिर से एक नया जन्म हुआ है। पहले की तारामती रात को मर गई और तारा को एक नयी आत्मा मिली है। इस आत्मा में गोविन्द का दर्शन भर गया है। उस रात को···धरती ने उसे एक नया संगीत सुनाया है। और उसने आज इस धरती पर एक इतने बड़े मनुष्य को देखा है जिसे उसने इसके पूर्व कभी नहीं देखा था।

रात भर तारामती को नींद नहीं आई। उसकी आँखों में सब्बो की करुणा की सजीव कहानी एक दहकते हुए अंगोरे की तरह जल रही थी, और तारामती अपने महल में, पलँग पर छटपटा रही थीं! उसे लगता था कि उसके सामने, स्वर्ग से उतरकर सब्बो उसे समझा रही थी—कि देख लिया न तारा!····कौन देवता है कौन राक्षस?····तुम्हारा भाई जगतपुर की अत्मा में सरासर झूठ और एक फसाद के आधार पर कितनी बड़ी लड़ाई खड़ी किए हुए है! कितनी मासूम लड़कियों को बर्बाद करके उनकी जानें ले ली हैं; उनमें से एक बेकसूर मैं भी हूँ!····दूसरी ओर मेरे भाइयों को देख! मुझ ऐसी प्यारी बहन के दर्दनाक ख़ून का बदला····उन्होंने तुम्हें दया के सिंहासन पर बिठाकर क्षमा से लिया है। वे तुमसे मेरी बुरी मोत का इंच-इंच बदला चुका सकते थे·····पर वे राक्षस नहीं थे; वे देवता हैं, देवता···जगतपुर की धरती के देवता! ····तारामती, तू इस पाप के राज-महल में आग क्यों नहीं लगा देती? और पागल होकर क्यों नहीं सच्चाई को लिए चिल्लाती फिरती कि—मैंने देखा है, मुझे मालूम है···मेरे राजमहल के बखार से रबी की फ़सल के लिए

जानबूझ कर बीज खराब दिया गया था। सब्बो की मौत···राजकुमार विजय मेरे भाई ने की है !"

रात के सन्नाटे में तारामती अपने कमरे में चीख उठी। और जब राजकुमार विजय, राजा शिवप्रसाद वगैरह उसके पास आए तब तक तारामती को होश न था! उसकी आँखों से सतत आँसू बरस रहे थे और उसे देखने से लगता था कि कोई उसका गला घोंट रहा है।

सुबह होते ही जब राजा का जगतपुर राजमहल में तारामती को देखने आया, तब सब ने कहा—कि हो न हो यह राजकुमारी पर भी किसी देवता का कोप है!

लेकिन राजमहल में प्रश्न छिड़ा था कि राजा की ओर से कोई देवता क्यों अप्रसन्न होगा? और इस तरह से लोग किसी भी निर्णय पर नहीं आपा रहे थे। सब परेशान थे।

* * *

दोपहर का समय था। तारामती की मनोदशा अब तक ठीक नहीं थी। उसके कमरे में विजय, बहादुरसिंह, राजा शिवप्रसाद, बद्री पांडे आदि बैठे थे, तारामती को लगता था कि वह अब तक सब्बो की कहानी की आग से जलाई जा रही है। उस रात की घटना, गोविन्द का आकाश से भी ऊँचा व्यक्तित्व उसे समझा रहा था कि तारामती! मरना और जीना सीखा!···रंगीनियों की दुनिया में कीड़ों की तरह अपने स्वार्थ में रेंग रेंग कर मरना ठीक नहीं··तू···पापों के उस राजमहल में रह रही है जिसमें से कभी बदबू निकलने लगेगी।

"तारा!···क्या है बेटी!" पिता जी ने पूछा।

"पिता जी!···मेरा गला घुट रहा है!···लगता है कि··· सब्बो ···मुझे डरा रही है··आह! उसकी मौत पिता जी!"

तारामती की आँखों से फिर आँसू बरस पड़े और इधर सब घबड़ा उठे।

"यह क्या बक रही हो, तारा !" विजय ने गंभीरता से कहा, "ख़बरदार ऐसी चीज़ फिर ज़बान पर न लाना !"

राजा साहब ने बीच ही में टोंकते हुए कहा, "नहीं विजय !··· तू इस तरह क्यों तारा पर क्रोध कर रहा है ?··· वह नादान थोड़े है कि ऐसी बात वह सबसे कहती फिरेगी ?"

राजा साहब ने फिर तारा को प्यार करते हुए पूछा, "बेटी तारा·· उस रात को तू राजमहल में बहुत देर से आई थी, ·····रोनी के किनारे कहीं··मुर्दाघाट पर तो नहीं गई थी ?··कुछ तूने बताया नहीं ?"

तारामती की इच्छा हुई कि वह उस रात की जन्म-मरण की घटना सबके सामने रख दे और पूछे कि कहाँ है जगतपुर का राक्षस ? कौन है··इस धरती का दुश्मन ?····लेकिन तारामती की भावनाएँ, आँसू बनकर फिर बह गईं ।

सब पूछते रहे लेकिन तारामती चुप होकर उन दो रातों को सोचती रही—एक उस रात को जब उसने अपने हाथों से अपने राजमहल का पूर्वी, गुप्त-द्वार खोला था और उस दरवाज़े से किसी बेदर्द, वहशी के हाथों से मारी हुई, घायल सब्बो लड़खड़ाती हुई रोनी की ओर भागी थी । दूसरी उस रात को, जब रोनी के किनारे उसे अकेले में किशन ने पकड़ा था, अपनी प्रतिहिंसा की आग में उसे कंधे पर लिए हुए अपने घर की ओर भागा था और उस समय गोविन्द उसकी रक्षा करता हुआ किशन को कितनी बड़ी सज़ा दे रहा था !

अंत में बहुत पूछने पर भी जब तारामती ने कुछ नहीं जवाब दिया और लोग फिर अब रोनी के किनारे पूजा करने की तैयारी करने की बात पक्की करने लगे; उस समय तारा अपने पलँग से दौड़कर राजा के गले लिपट गई और रोती हुई कहने लगी, "राजा, पिता जी !····गोविन्द से क्षमा माँग लीजिए ! ··भइया को समझा

दीजिए··गोविन्द क्षमा कर देगा !····सब बातें ख़त्म हो जायँगी, पिता जी !"

यह सुनते ही सब के पाँव तले की धरती कँप गई।

राजा शिवप्रसाद कँप गए। जानकीदास, दीवानसिंह, बहादुरसिंह डर से चुप हो गए। विजय को ऐसा लगा कि उसके सुरक्षित राजमहल में कोई डाकू घुस आया और उसने अभी-अभी राजकुमार के ज़बर-दस्त जगतपुरी मोर्चे पर चोट की हो।

विजय की आँखों में क्रोध की ज्वाला फूट पड़ी। उसने उसी क्षण बहुत तेज़ी में कहा,

"यह सब बेईमान गोविन्द की करामात है...उसी ने इसे बरग़-लाया है। मैं उसके ज़हर को जानता हूँ।"

"भइया ! तुम ग़लत सोचते हो !" तारामती जैसे होश में आ गई थी।

"मैं सब कुछ सोचता हूँ और बहुत सोचता हूँ !·····तुम्हें अपनी सीमा में रहना है तारा !"

"मैं अपनी सीमा में ही रहूँगी··लेकिन मैंने एक सच्चा रास्ता बताया ····।"

यह कहकर तारामती एकाएक ख़ामोश हो गई। और फिर अपने पलँग पर गिर पड़ी।

* * *

इस तरह तारामती एक ऐसे भवँर में पड़ी थी कि जिसका कोई किनारा न था। वह कुछ इस तरह का स्वप्न देखने लगी थी कि जिसमें न भाव थे, न कोई निश्चित रंग, बल्कि वे स्वप्न कुछ ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी, तिर्छी-सीधी रेखाओं से बनकर उसके सामने आते थे कि वह हैरान रहने लगी थी।

गुप्त रूप से राजकुमार विजय उस पर नियंत्रण रखने लगा था। लेकिन तारामती को इसका पता न था, वह राजमहल में इस तरह ख़ामोश, चुप रहने लगी थी कि लगता था उसके दिल में किसी तरह का दर्द उठने लगा है; जिसकी दवा केवल ख़ामोशी थी।

कई दिन बीत गए, तारामती की मनःस्थिति चिन्तित हो गई; फिर राजा, राजकुमार ने यह निश्चित किया कि अगर गोविन्द इस वर्ष इलाहाबाद युनिवर्सिटी में प्रवेश कर लेता है, तो तारामती की पढ़ाई इस साल रोक दी जाय, या कहीं और पढ़ने को भेज दी जाय।

लेकिन राजा को सबसे अधिक चिन्ता तारा ऐसी हँसने खेलने वाली लड़की को एकाएक चुप, गंभीर पाने में थी। और राजकुमार को अन्य किसी बात की नहीं, सिर्फ़ गोविन्द और ज़ैनब की दुश्मनी की चिन्ता थी। अपनी उस जीत की चिन्ता थी, जिसके आधार पर वह ज़मींदारी, ताल्लुक़ेदारी छिन जाने पर जगतपुर पर अपना शासन जमाए रक्खेगा और जगतपुर की पैदावार, जगतपुर की भोली आत्माओं से अपने अच्छे दिन काटता रहेगा।

लेकिन उनमें से यह किसी को पता न था कि तारामती ने एक अँधेरी रात को इतना बड़ा आकाश देखा है कि जिसमें हर क्षण पवित्र चाँदनी ही चाँदनी रहती है। उसने एक ऐसा अनुपम दृश्य देखा है कि जिसने उसकी आत्मा में एक ऐसा संगीत भर दिया है कि अब वह बोल नहीं पाती। लगता है कि वह हर क्षण, प्रति पल दो समानान्तर ख़्वाब देखा करती है—एक शोले की तरह दहकता हुआ सब्बो का ख़्वाब, जो तड़पते हुए आसुओं से इतना भींगा रहता है कि धरती भी रो पड़ती है। दूसरा ख़्वाब गोविन्द और किशन का, जो हिमगिरि की तरह इतना ऊँचा और रोशनी लिए हुए है कि उसकी आँखें मुँद जाती हैं, उसका गला रुँध जाता है। उसे लगता है कि किसी फूल की ख़ुश की बारीक रेखा पर गोविन्द थका हुआ कहीं भागता जा रहा है, और

उसका भाई विजय उस खुशबूदार रेखा पर बदबू डाल रहा है। तारामती गोविन्द के पीछे दौड़ने के लिए कहीं दूर से छटपटा रही है।

* * *

नीलवन में शाम होने को थी। राजकुमार विजय के साथ तीन और साथी थे—एक बहादुर सिंह, दूसरे झेरिया बाबू के मँझले लड़के; विजय के विद्यार्थी-जीवन के साथी, तीसरे उत्तमपुर महन्त के भान्जे जिन्होंने अभी कुछ ही महीने हुए, बेलघाट में शराब का एक बहुत बड़ा कारखाना खोला था, और इसी प्रकाश को लेकर ये जगतपुर राजा को राय देने आए थे कि तालुक़ेदारी टूट जाने के पहले ही हर राजा और अच्छे-अच्छे तालुक़ेदारों को चाहिए कि वे अपनी बर्तमान पूँजी से एक बड़ी से बड़ी शराब की फैक्ट्री खोल लें, ताकि कम से कम राज्य की रियाया, नौकर-चाकर, मज़दूर आदि उनके पंजे में तो रहें। दिन भर कमाएँ और शाम को कमाई का चौथाई राजा को भेंट देते जायँ और जब पैसा न हो, तब कर्ज़ पर, सूद पर, और कुछ पर। इस तरह भारत के राजे, तालुक़ेदारों की ज़मदारी, उनके सारे आराम कहीं जा नहीं सकते। उनका कहना था कि अमेरिका के एक बहुत बड़े व्यवसायी ने उन्हें इस अमूल्य तरीक़े को बताया था।

हाँ, तो नीलवन में शाम होने वाली थी। विजय के हाथ में बन्दूक़ थी। बहादुर सिंह के हाथ में दो-दो शिकार की हुई लाल शर चिड़ियाँ थीं। झेरिया बाबू के मँझले लड़के, अजीत सिंह के हाथ में एक चमड़े का बैग था जिसमें शराब की तीन खाली बोतलें थीं। महन्त के भान्जे मुरारी दास के हाथ में केमरा था।

चारों साथी बातें करते हुए नीलवन के किनारे आ गए थे और रोनी के ऊँचे कगार से जगतपुर को देख रहे थे।

उस दिन का सूरज जगतपुर के टीले के पीछे छिपने लगा था और ये चारो साथी रोनी के कगार पर बैठकर गोविन्द, ज़ैनब और

इन्द्रा की बातें करने लगे थे। विजय ने गंभीरता से कहा, "मैं तो अब यह सोच रहा हूँ कि ज़ैनब के ऊपर एक चाल और चलूँ!"

"वह कैसी" सब उत्सुक हो गए।

"यह कि मैं गोविन्द और ज़ैनब के सामने इसकी प्रार्थना करूँ कि मैं ज़ैनब को अपनी धर्म-पत्नी बनाने को तैयार हूँ। मुझे यक़ीन है, गोविन्द मान जायगा; क्योंकि आख़िर वह बेचारा कब तक उसके साथ रहेगा—फिर क्या कहने हैं! अपनी सारी ख़ुशियाँ पूरी करूँगा और एक दिन चुपके से उस बदमाश को कुत्तों से नुचवा दूँगा ···।"

"स्कीम तो बहुत अच्छी है!" सब ने समर्थन किया।

विजय गर्व से रोनी के कगार पर खड़ा होकर रोनी में तेजी से पत्थर फेंकता जाता था और क्रोध से कहता जाता था, "मुझे उस बदमाश ज़ैनब के दोनों तीखे चाँटे याद हैं!··· उसने मेरी-जो बेइज़्ज़ती की है, इसके बदले में मैं जितना भी ख़ूँख़ार क्यों न होजाऊँ थोड़ा है।"

जिस समय रोनी पार करके ये चारो व्यक्ति जगतपुर के उत्तरी सिवान पर पहुँचे—उनकी आँखें खुली रह गईं। जगतपुर की अपूर्व नयी फ़सल माना हँसती हुई विजय के गले से लिपट गई और उसके गले को दबोचती हुई कहने लगी, मुझे देखने आए हो!·· धरती के दुश्मन!··· मुझे देखो, और अपनी छाती को चीर डालो!

सुनहरी धूमिल शाम होती जा रही थी और नयी फ़सल के बीच से चलता हुआ विजय का दिल बुझते हुए अंगारे की तरह काला पड़ता जा रहा था।

उसने दूर से देखा, गोविन्द एक खेत की मेंड़ पर, धान के कुछ लम्बे-लम्बे पेड़ लिए हुए खड़ा है और उसके पास ही जगतपुर की कई लड़कियाँ—नीरी, रूपा, जमुना, गंगा, नैना, आसफा, गुलशन, शीरी वग़ैरह झुक-झुक कर खेत से डौंरा (एक घास) के पेड़ उखाड़ रहीं थीं।

यह लम्बा-सा खेत जगतपुर की एक अंधी विधवा, राधा का खेत था, जो निःसहाय होने के कारण दो वर्षों से नहीं बोया जाता था। इस साल इसे गोविन्द ने बोवाया है और आज इसकी आखिरी निकाई हो रही थी।

गोधूली बेला थी। अबतक लड़कियाँ धीरे-धीरे गाती हुई, झुक-झुक कर घास बीन रहीं थीं, गोविन्द मेड़ पर मानो रक्षा में खड़ा था, उसके पास अंधी राधा धीरे-धीरे गाती हुई बैठी थी—

"आज हमरी अटरिया हो रामा सुगनवा के बोल!"

विजय बिल्कुल पास आ गया था और गोविन्द से आँखें मिलते ही, उसने नम्रता से कहा,

"गोविन्द! तुम्हें तुम्हारी नयी फ़सल के लिए बधाई!"

"धन्यवाद!"

गोविन्द ने धीरे से कहा। खेत में झुकी हुई सब लड़कियाँ डर से खड़ी हो गईं, और सब दौड़कर गोविन्द के समीप आ गईं। राधा अब तक गाती जा रही थी!"

"मैं आज तुमसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ, गोविन्द!"

"शौक़ से कीजिए!"

"मैंने सोचा है कि ज़ैनब को आर्य समाज से हिन्दू बनाकर शादी करलूँ और जगतपुर में सन्धि हो जाय क्योंकि ... जगतपुर मेरी प्रजा है और मैं प्रजा-पालक हूँ ... मैं—सोचता हूँ कि अब ज़ैनब की कहीं शादी न हो सकेगी!··और तुम कब तक उसका साथ दे सकोगे?"

"बहुत ऊँचा ख्याल है आपका!"

गोविन्द ने मुस्करा कर कहा, और अपने किनारे खेतों में खड़ी हुई बहनों को देखा। राधा चुप होकर धीरे-धीरे राम-राम कहने लगी थी।

"लगता है कि यह कोई आपकी बहुत बड़ी स्कीम है, इसमें काफ़ी दिमाग़ लगाया होगा!"

गोविन्द के व्यंग से विजय तिलमिला कर रह गया। उसने फिर कहा, "तो क्या तुम ज़ैनब का हमेशा साथ दे सकोगे ?"

"जी हाँ, आपने जब उस बेचारी के साथ एक बार मेरा इतना बड़ा संबंध जोड़ दिया कि आज जगतपुर में क्या से क्या हो गया। मैं आज कुजात हुआ। और उसकी बेइज्ज़ती से आपको असीम प्रसन्नता मिली··फिर मैं जन्म भर उससे किस तरह अलग हो सकूँगा !"

"और अगर ताक़त से, ज़ैनब को छीन कर महल में बंद कर लिया जाय तो ?" बहादुर सिंह ने क्रोध से कहा।

"तब रावण की स्वर्ण-नगरी की तरह तुम्हारा पापों का राजमहल जल उठेगा··और··।"

"और क्या ?" विजय ने कड़े स्वर में अपनी बन्दूक की ओर देखते हुए पूछा।

"और यही कि तुम मुझे अपनी बन्दूक़ न दिखाओ, नहीं तो जगतपुर में एक साथ इतने हथियार उठ जायँगे··कि तुम्हारा इतिहास मिट जायगा।··याद रखना ज़ैनब जगतपुर की पवित्र आत्मा है··वह मेरी लक्ष्मी है, और मैं उसका रक्षक हूँ··।"

गोविन्द आवेश में आ गया था, उसके ओंठ कँपने लगे थे। वह बहुत कुछ कह देना चाहता था। उसी समय गाँव की ओर से, खेतों से पागलों की तरह दौड़ती हुई ज़ैनब की पुकार की एक चीख आई। सब उधर देखने लगे। जगतपुर की सब खड़ी हुई लड़कियाँ दौड़कर ज़ैनब को सम्हालने लगीं।

लेकिन ज़ैनब उसी बेग में दौड़ती हुई गोविन्द से लिपट गई और उसके दोनों हाथों को ज़ोर से पकड़ कर वहाँ से हट चलने के लिए मचल उठी।

शाम काली होने लगी थी, और इस पर दो-चार सितारों की सफ़ेद मुस्करहट की छाया पड़ने लगी थी।

ज़ैनब गोविन्द, अंधी राधा को सहारा दिए हुए जगतपुर की ओर बढ़ने लगे थे। सब लड़कियाँ गोविन्द से उन चारो व्यक्तियों की न जाने कितने उलाहनों को सामने रखने लगीं थीं—

"कि वह जो काला चश्मा वाला हाथों में गठरी लिए हुए था··वह बहुत बड़ा पापी है! उसने मेरी सखी पन्ना और सीता को बर्बाद किया है!"

"और जो वह हाथों में छोटा सा बकस लिए था··वह बड़ा भारी राक्षस है··उसने एक मरतबा मेरी सहेली गुल को बहुत मारा था··।"

"और वह जो हाथों में चिड़ियाँ लिए था वह तो बहुत बड़ा वहशी है,··उसी ने तो 'सब्बो' को पकड़ा था और राजमहल में बंद कराया था!"

इस तरह से गोविन्द के सामने क्षण भर में इती तड़पती हुई शोलों की कहानियाँ बिछ गईं कि उसे लगने लगा कि उसकी आँखें पीड़ा से मुँद गई हैं··जगतपुर पर काला पर्दा पड़ गया है, उसका रास्ता भी उसे—कराहता हुआ अपनी मौन कहानियाँ सुना रहा है।

१६

इलाहाबाद से इन्द्रा बहन के पत्र से सूचना मिली कि यहाँ एम० ए० इतिहास में गोविन्द का प्रवेश हो गया है और उसे शीघ्र से शीघ्र इलाहाबाद पहुँचना है।

यह पत्र गोविन्द को उस समय मिला, जब वह किशन, पारो, सूरा, अब्दुल, मोहन, प्रताप को साथ लिए हुए जगतपुर के दक्खिनी सिवान से घूमता हुआ टीले के पश्चिम आया था और एकाएक आसमान में काले, वर्षा के बादल छा जाने से वह सब के साथ दौड़कर दक्खिनी सिवान में भाग आया था, और वह जल्दी से ज़ैनब से ऊँचे मचान के नीचे खड़ा हो गया था।

एकाएक तगड़ी वर्षा होने लगी। अब्दुल, मोहन, प्रताप अपने-अपने मचान में भाग गए थे। ज़ैनब के मचान के नीचे गोविन्द, किशन, पारो और सूरा दीदी खड़ी थीं।

हवा रुक गई थी और बरसते हुए बादल धरती के समीप आकर गरज रहे थे। धीरे-धीरे बिजली कौंध रही थी। दोपहर के दिन की जगह पर लगता था, शाम हो गई है।

उसी समय गोविन्द को लगा कि कहीं से ज़ैनब बहुत ज़ोर-ज़ोर से पुकार रही है ! गोविन्द और पारो भाभी ने जल्दी से मचान पर चढ़कर चारों ओर देखा। कोई नहीं दिखाई दे रहा था। लेकिन आवाज़ फिर आई ! गोविन्द आश्चर्य से गाँव की ओर देख रहा था उसी समय ज़ैनब तूफ़ानी बारिस में दौड़ती हुई, एक ज्वार के खेत से बाहर दिखाई पड़ी। उसके सर की ओढ़नी सिर्फ़ उसके दाएँ हाथ में लिपटी थी। तूफ़ानी बारिस में जैसे वह पागल होकर कहीं भाग रही थी।

गोविन्द उसी क्षण, ज़ैनब के उतने ऊँचे मचान से नीचे कूद पड़ा और एक साँस में दौड़ता हुआ ज़ैनब से लिपट गया।

गोविन्द ने अपनी आधी भींगी हुई कमीज़ से ज़ैनब के सीने को ढक दिया। मचान के नीचे आते ही ज़ैनब ने गोविन्द की ओर, ओढ़नी से लिपटे हुए दाँए हाथ को बढ़ा दिया और वह जाड़े से काँपती हुई, दिल से हँसने लगी,

"गोविन्द लो! ··देखो···इलाहाबाद से तुम्हारा ख़त आया है।"

गोविन्द ज़ैनब के, इतनी भयानक बारिस में, ऐसी मामूली बात के लिए यहाँ तक दौड़ने पर, बुरी तरह बिगड़ रहा था और उसकी ओढ़नी से बीसों पर्त में ढँका हुआ खत ढूढ़ने लगा।

ज़ैनब भींगी हुई, हँस रही थी। पारो, सूरा, किशन सब उसके बचपने पर तरस खा-खाकर खुश हो रहे थे।

ऐसी हालत में गोविन्द को, ज़ैनब द्वारा वह इलाहाबाद का ख़ूबसूरत ख़त मिला था। जिसका मूल्य ज़ैनब के लिए उतना था जितना गोविन्द का प्यार, फिर चाहे बारिश हो, चाहे तूफ़ान; वह गोविन्द की खुशी ज़ैनब की खुशी थी। और उस तक सब से पहले पहुँचकर, उसकी खुशी को देखना; सिर्फ ज़ैनब का अधिकार था।

* * *

दूसरी रात के सन्नाटे में, गोविन्द इलाहाबाद का सुनहरा ख़्वाब देखता हुआ सो रहा था, कि उसका जगतपुर आनन्द से है। उसकी नयी खेती पूर्ण सफलता पर है, ज़ैनब, किशन, पारो, सूरा, ज़ैनी, पिताजी वगैरह ख़ैरियत से हैं। वह यूनिवर्सिटी रोड से चलता हुआ इतिहास विभाग में पहुँच रहा है और पढ़ रहा है। यूनिवर्सिटी क्लाक टावर से घड़ी की मीठी-मीठी आवाज़ उसके सोते हुए कानों में अमृत की वर्षा कर रही है।

और उस सोती हुई रात में अकेली ज़ैनब ख्वाब देख रही थी कि जगतपुर की नयी फ़सल खैरियत से तैयार हो गई। उसका खत पाते ही गोविन्द इलाहाबाद से घर लौट रहा है। फ़सल, अपूर्व धूमसे कटती है, जगतपुर अनाज से पट जाता है, और-और···ज़ैनब, गोविन्द के घर जा रही है,··दूल्हन बनकर, सोलह कहारों की उम्दा पालकी में बैठकर···ज़ैनी बाजी की आँखें ठीक हो गईं··वह शेख पट्टी से ज़ैनब को अपनी प्यारी बिदाई दे रही है। उसकी आँखों की नयी रोशनी से उसकी दुआ की नयी .खुशबू निकल रही है जिससे जगतपुर मंगल-गीत रहा है।

और राजकुमार विजय अपने महल में सोता हुआ एक ख्वाब देख रहा था कि गोविन्द इलाहाबाद चला गया। जगतपुर पर अब उसकी आवाज़ का राज्य है।··ज़ैनब के सूने घर में घुसकर वह सोती हुई ज़ैनब को अपने राजमहल में उठा ले जाता है और उसे सदा के लिए ग़ायब कर देता है।

और उस सूनी रात में गोविन्द का शेप जगतपुर अपनी खामोशी में सोता हुआ एक सुनहरा ख्वाब देख रहा था कि···वह नयी फ़सल के अन्न से अपना घर भर रहा है··ज़मीदारी टूट गई··जगतपुर की धरती जगतपुरवालों की हो गई···राजा का अपराध सिद्ध हुआ··· राजा दोषी होकर···उनके सामने दया की भीख माँग रहा है। गोविन्द···ज़ैनब के साथ टीले पर खड़ा होकर···उन्हें क्षमा कर रहा है। फिर वे··धरती की .खुशी मना रहे हैं,··बड़े-बड़े उत्सव कर रहे हैं··उन्हें कितनी .खुशियाँ एक साथ मिली हैं··वे कितनी .खुशियाँ मनाएँ।

और शेष जगतपुर, राजा का जगतपुर ख्वाब देख रहा था कि जगतपुर की नयी खेती नष्ट हो गई उनके राजा की जीत हुई है, उन्हें बड़े से बड़े इनाम मिल रहे हैं··जगतपुर को कड़ी-कड़ी सज़ाएँ मिल रही हैं, लोग भूखे मर रहे हैं।

इस तरह से दूसरी रात को समूचा जगतपुर सोता हुआ अपना-अपना ख्वाब देख रहा था और इन सब ख्वाबों के ऊपर उस रात को जगतपुर की धरती का टीला भी जगता हुआ सुनहरा स्वप्न देख रहा था, जिसमें अठारह सौ सत्तावन के जगतपुर की मुस्कराहट थी, जिसमें उन दो मन्दिर और मस्जिद के खंडहरों की एक आत्मा का शाश्वत संगीत था।

*　　*　　*

गोविन्द अपना ख्वाब देखता हुआ, जग गया। और उसे लगा कि उसका मचान धीरे-धीरे हिल रहा है। उसने मचान से ही अब्दुल को आवाज़ लगाई और उसको जागता हुआ पाकर वह मचान से नीचे उतरा। उसने देखा सुबह होने में अब थोड़ी सी रात बाक़ी है।

गोविन्द रोनी की दिशा में गाँव की ओर बढ़ने लगा।

गाँव के समीप आते ही, गोविन्द एकाएक रुक गया। कोई औरत अजीब करुणा से गा रही थी—

"सासु मोरी कहली बँझिनियाँ, ननद—
　　　　ब्रज बासिन हों।
रामा जिनके मैं वारी रे बिआई ऊहो घर से—
　　　　निकासलनि हो।
सगरा से चललि बँझनिया जंगल—
　　　　बिच आबेलि हो।
धरती तूहीं सरन अब दिहुत तो—
　　　　बँझिनिया नाम छूटत हो।
जहँवा से तू अइलू उलटि तहवाँ जावहु—
　　　　तुमहुं नहि राखब हो।
बाँझिनि तोहरा के रखले हमहुँ—
　　　　होखूबि ऊसर हो।"

इस तरह का करुण गीत धीरे-धीरे रुक गया। गोविन्द मंत्रमुग्ध होकर उस धरती पर खड़ा था, जिस धरती पर बैठकर वह बाँझिन रो रही थी और धरती से उसको शरण में रख लेने की प्रार्थना कर रही थी।

गोविन्द उस धरती पर चुप खड़ा था जिसकी शरण संसार से ठोकर खाकर, संसार की उपेक्षा सहकर, वह बाँझिन आई थी और बेचारी वहाँ से भी भगा दी गई। इस उदार धरती माँ ने भी उसे ठुकरा दिया था।

गोविन्द की आँखों में आँसू उभड़ आए और उसने पूरब की ओर देखा, रात बीत चुकी थी। स्वर्ण विहान होने को था।

वह धीरे-धीरे रोनी की ओर बढ़ने लगा। चलते-चलते उसकी दृष्टि राजमहल की ओर गई। ऊँचे कोठे पर एक किनारे के कमरे का दरवाज़ा खुला था, उसमें तेज़ रोशनी हो रही थी और दरवाज़े पर कोई चिन्ता से थकी हुई अपनी ख़ामोश निगाहों से अपलक गोविन्द की ओर देख रही थी।

लेकिन गोविन्द रोनी के कगार के समीप पहुँच रहा था और उसके एक समतल घाट की ओर बढ़ने लगा था। उसी समय उसने दाईं ओर देखा—तारा अपनी अपूर्व उदासी में गोविन्द की ओर बढ़ती आ रही है।

गोविन्द, खड़ा हो गया और उसने पहले ही तारा का अभिवादन करते हुए पूछा, "अरे, आप इलाहाबाद पढ़ने नहीं गईं?"

"उस रात को मेरा नया जन्म हुआ है··इसलिए नए जन्म में फिर नए ढंग से पढ़ाई होगी!"

तारा की आँखों में आँसू उमड़ रहे थे। गोविन्द आश्चर्य में था।

"बात क्या है? मैं कुछ समझा नहीं!" गोविन्द ने कहा।

"समझे नहीं?··फिर मैं कैसे समझाऊँ!',

"कुछ तो कहिए!"

"मैं तुम्हारी हो गई गोविन्द !···और इस कारण राजमहल के मेरे अधिकार छिन गए।··मैं अकेली हूँ··परेशान हूँ··।"

गोविन्द को लगा जैसे उसके सामने किसी ने पत्थर पर एक बहुत बड़ा शीशा एकाएक तोड़ दिया हो। और उसके सामने कोई चमकती हुई चीज़ चूर-चूर हो गई हो। और हर एक शीशे के टुकड़े में गोविन्द तारामती की तस्वीर देखने लगा। "आप कैसी बातें कर रही हैं ?··"

"बिल्कुल ठीक !"

"तो आप अपने राजमहल के अधिकार के लिए इतनी चिन्ता कर रहीं हैं !,,

"नहीं गोविन्द !"··तुम मुझे ग़लत समझ रहे हो !··उस रात को, उस रात से पहले की राजकुमारी तारा मर गई···मैं नयी तारा हूँ गोविन्द !··"

"नयी तारा !"

"हाँ,··नयी तारा ! तुम ने जिसका जन्म दिया है !"

गोविन्द अवाक् खड़ा था, तारा ने अजीब विश्वास से बढ़कर गोविन्द के दाएँ हाथ को पकड़ लिया और धीरे से कहा, "क्या सोच रहे हो, गोविन्द ?"

"सोच नहीं रहा हूँ, डर रहा हूँ तारा !··कि सुबह हो रही है ··· और अगर किसी ने हम पर बन्दूक चला दी तो ! राजमहल में एक साथ कितने शिकारी बैठे हैं··!"

"तो !"

"जाओ अपने राजमहल लौट जाओ तारा !··जल्दी चली जाओ !"

"अच्छा, मैं··जा रही हूँ।"

"आप इलाहाबाद कब जा रहीं हैं ?" गोविन्द ने परेशान होकर पूछा।

"यही तो कहने आई थी, गोविन्द !··मेरा सब अधिकार छिना जा रहा है !··लोग शंका करने लगे हैं··कि मैं तुम से मिल गई हूँ··इसलिए वे मुझे इलाहाबाद नहीं जाने देंगे···मेरी पढ़ाई मुझसे छीनी जा रही है"

"ओह ! ओ !!··तब आपने क्या सोचा है ?"

"तुम्हारा सहारा सोचा है !"

"तब आपने बहुत ग़लत सोचा है !··मेरे ख्याल से आप अपने भविष्य के लिए ईश्वर बन जाइए !··आप के रास्ते में कोई बाधक नहीं हो सकता !"

"सबमें इतनी ताक़त नहीं होती।··"तारा ने दुख से कहा, और धीरे से राजमहल के रास्ते पर मुड़ गई। गोविन्द वहीं खड़ा था

"एक बात, गोविन्द !"तारा ने मुड़कर पूछा, "तुम इलाहाबाद कब जा रहे हो ?"

"परसों··इसी वक्त !"

दिन निकल रहा था भूरे-भूरे बादलों के बीच से नए प्रकाश की किरनें फूटनें लगीं थीं।

गोविन्द को यह दृश्य सबसे प्रिय था। इसीलिए वह इतनी दूर चलकर रोनी की खतरनाक कग़ार पर आया था। गोविन्द निश्चल, मंत्रमुग्ध होकर पूरब में फटते हुए नए प्रकाश को देख रहा था। और उस पर नए सूरज की पहली किरनें पड़ रहीं थीं।

गोविन्द ने घूम कर पीछे देखा, उसकी छाया पृथ्वी पर इतनी लम्बी थी कि उसका सर मानो राजमहल की दीवारों को छूना चाहता था, जिन दीवारों के बीच इन्सान जानवरों की तरह बन्दी कर दिया जाता है; चाहे वह सगी बहन हो, चाहे वह किसी और की प्यारी आत्मा हो। राजमहल की राजनीति अलग, उसकी दुनिया अलग।

जिस समय गोविन्द तेज़ी से नीची पट्टी पार करता हुआ अपनी पट्टी जा रहा था; उसे लगा कोईलड़की अपना दिल तोड़ती

हुई चीख़-चीख़ कर रो रही है और उसके साथ ही साथ कोई मनुष्य रोता हुआ उसे कुछ समझा रहा था।

गोविन्द आगे बढ़ता हुआ भी एक क़दम आगे न जा सका। यद्यपि यह राजा की नीची पट्टी गोविन्द की सबसे बड़ी दुश्मन पट्टी थी।

गोविन्द चुपचाप दरवाज़े पर खड़ा हो गया और उसने आँगन में देखा—राजा का बुड्ढा सईस रहमान अपनी एकलौती बेटी का सर अपनी गोद में लिए हुए रो रहा था, समझा रहा था। और उसकी गोद में उसकी जवान बेटी बेग़मा फूट-फूट कर रो रही थी। और उसके सामने एक बूढ़ी औरत चुपचाप बैठी थी।

अकस्मात बेग़मा की आँखें गोविन्द पर पड़ीं और वह आँगन से दौड़ती हुई तूफ़ानी लहर की तरह आकर गोविन्द के पैरों से चिपक गई।

गोविन्द ने उसे सीने से लगा लिया और वह बेग़मा को सम्हाले हुए आँगन में चला आया। बूढ़ा सत्तर साल का, सफ़ेद दाढ़ी वाला रहमान रो रहा था। उसके सामने दस-दस रुपए वाले दस कागज़ के नोट बिखरे थे। सामने बुढ़िया चुप थी।

रहमान रो-रोकर कहने लगा, "गोविन्द भइया !··राजा के मेहमानों ने मेरी बेग़मा का ख़ून कर डाला !"

यह कहकर रहमान चीख़ता हुआ गोविन्द के पैरों में इस तरह चिपक गया जैसे मौत ज़िन्दगी से चिपक गई हो। उनके चीत्कार से धरती का हृदय फट रहा था और उनके तड़पते हुए आँसू सुबह के आकाश में घाव कर रहे थे।

गोविन्द की आँखें रोने लगीं थीं और उसकी आँसुओं में कितनी मासूम बेग़मा, कितनी पवित्र सब्बो की करुण कहानियाँ तड़पने लगीं। गोविन्द को लगा जैसे उसके सामने बिखरे हुए कागज़ के नोट, सौ रुपए; सौ तोपों की तरह सारे जगतपुर के किनारे लगा दी गईं हों और जगतपुर फिर टीला होने जा रहा हो।

रहमान रोता हुआ सामने के नोटों को उठा उठा कर चीख़ रहा था—"कि··इस ताक़त ने मेरी बेगमा की रोशनी बुझाई है!··और इस ताक़त को मुझे भेंट करके··मुझे राहत दिया जा रहा है·· गोविन्द!··मैं इन कागजों में कैसे अपनी बेक़सूर बेगमा की खोई हुई रोशनी ढूढ़ूँ?"

गोविन्द अब तक, बेग़मा को अपने दिल में छिपाए हुए चुप था। रहमान भी एकाएक चुप होगया। उसके आँसू सूख गए। उसने उसी क्षण उन नोटों में आग लगा दी और चिल्ला उठा—"यह है मेरी बेग़मा की रोशनी!···यह है मेरी आबरू की आग··यह है··उसके पवित्र शोले!··यह है मेरे दिल की लपट!"

लेकिन आख़िरकार रोशनी को तो बुझाना ही था। सब को रो लेने के बाद चुप होना ही था—तड़पते हुए आँसुओं को धरती में भेंट करके ख़ामोश होना था।

और सब ख़ामोश हो गए; जिनकी ख़ामोशी में क्रान्ति की तूफ़ानी लहरें, न जाने कितने सोते हुए ज्वालामुखी की तरह चुप होकर किसी आने वाले दिन की प्रतीक्षा करने लगीं।

कुछ न हुआ। क्योंकि यह जगतपुर था और इस जगतपुर में ऐसी कितनी बेगुनाह बेग़माओं की, झोपड़ियों की रानियों की आबरू हँसी-हँसी में लूट ली जाती हैं। राजा ज़्यादा से ज़्यादा उनके रोते हुए दिलों के सामने रुपए रख देता अगर और अधिक हुआ तो बन्दूक दिखाकर हमेशा के लिए डरा देता है। इस ताक़त से समाज की सारी शक्तियाँ डर जाती हैं क्योंकि समाज की सारी शक्तियों की घाटी इन्हीं दौलतमंद के बड़े-बड़े आँगन हैं—जिनमें बड़ी-बड़ी दावतें, बड़े-बड़े भोज आदि समारोह होते हैं। तभी गोविन्द को ख्याल हुआ कि सरकार ने क्यों ज़मींदारी को तोड़कर भी ज़मीन्दारी को रख छोड़ा है।

हाँ तो यह जगतपुर था, यहाँ आँसुओं की गहराई देखने के लिए सरकार की किस शक्ति की क्षमता थी? यहाँ दुखियों की तड़पती हुई

फ़रियाद चहार दीवारी में ही, बल्कि जगतपुर की सीमाओं तक,·· नहीं, बल्कि जगतपुर की पट्टियों तक,····नहीं, घरों तक,····नहीं, व्यक्ति तक ही,....बल्कि सच्चे रूप में, दिलों में ही तड़पकर रह जाती है, आँसुओं के रूप में धरती पर बह जाती है।

क्योंकि सब्बो के सरासर खून के बाद किशन दो बार रेनुआ थाने पर तो गया था, गाली सहकर लौट आया था, तीन बार रायगढ़.. ज़िला कांग्रेस कमेटी में भी तो गया था, फटकार सहकर लौट आया। ज़िला पंजायत अफ़सर के भी तो सामने रोकर चला आया था: लेकिन क्या हुआ ? कुछ नहीं। जैसे रात बीती फिर दूसरा दिन शुरू हो गया।

इस तरह से राजमहल के पापों का सारा ब्यौरा जगतपुर का नीला आसमान अपने पास रखता जाता था और जब रात को सितारे चमकते थे, तब उनमें से कितनी तड़पती हुई कहानियाँ टूटते हुए सितारों के रूप में चमक पड़ती थीं, पर वे फिर भी खामोश होकर आसमन में लौट जाती थीं। जगतपुर के बहते हुए आँसुओं का पूरा ब्यौरा वहाँ की लम्बी-लम्बी, हरी हरी घासों के पास था, लोनी, चैना, बेली, सकोइचे की हरी हरी बँवर, घनी करील, पलास तूत, कटाय, खिरनी घुमची, करौंदे, की झाड़ियों पर छाया हुआ था। कहीं-कहीं तो यह आँसुओं की लड़ियाँ आकाश बेल के रूप में बेमू, आम, बड़हर, कटहल, के पेड़ों पर बुरी तरह से छा गई थीं और उन जानदार पेड़ों से लिपटकर, उन्हीं से खुराक लेकर दिन रात अपनी अपनी फ़रियाद सुनाया करती थीं।

१७

समूचे जगतपुर के सिवान को घूमते-घूमते; प्रत्येक मचानों पर उचित निर्देशन देते-देते हर एक खेत, सब मेड़ों पर चलते-चलते शाम हो गई। गोविन्द बार-बार ऊपर नीले आसमान को देखता, मानो वह जगतपुर के आसमान की रक्षा में अपनी नयी खेती सौंपता हुआ कह रहा था—कि प्यारे ऊँचे आसमान!. . .मेरी नयी खेती की रक्षा करना। इसे हर क्षण देखते रहना! . . .जगतपुर के तूफ़ान की यही कली है, जो आज धरती में खिल रही है!. . .इसे राक्षसों से बचाना! मैं जगतपुर से दूर जा रहा हूँ, यद्यपि मेरी आत्मा इन्हीं खेतों में बिछी हुई है, इन्हीं मिट्टी के ढेलों में मेरे प्राणों की साँस छुटी जा रही है।

गोविन्द नीचे धरती की ओर देखता हुआ बड़ी पट्टी के कोने पहुँच रहा था। लगता था कि धरती अपने प्यारे बच्चे गोविन्द से कुछ कह रही थी और गोविन्द उसे सुनता जा रहा था।

उसी समय गोविन्द ने देखा दायीं ओर के रास्ते से पिताजी भी गाँव की ओर आ रहे थे; गोविन्द को सामने देखते ही पिता जी ने अपनी दुपल्ली मिर्जई की तह से एक दस रुपए का नोट निकालते हुए कहा; "यह लो बेटा!. . . तुम्हारे इलाहाबाद जाने का किराया, एक पुराना यजमान था. . .उसी ने. . .।"

पिता जी की आगे की वाणी स्थिर हो गई और ओंठों तक आए हुए भाव; ओंठों पर अपने कंपन की छाया छोड़कर आँखों में आँसू बन गए।

गोविन्द ने मौन होकर पिता जी के ओंठों पर पढ़ा—बेटा!. . . जब मैं ब्राह्मण था! बड़ी पट्टी की आवाज़ था। राज पुरोहित और धर्म का प्राण था। जब मेरे क़दमों पर रुपया बरसा करते थे जब मेरे आशीर्वाद के लोग भूखे थे।

गोविन्द पिता जी के ओंठो पर अंकित वाक्यों को पढ़कर अनन्य करुणा से उनके गले लिपट गया—"पिताजी ! क्या आप मुझसे दुखी हैं ?. . .बोलिए पिता जी ! क्या मैं घृणा का पात्र हूँ ?"

पिता जी ने मुस्कराकर भाव बदलते हुए कहा, "नहीं बेटा !. . . कैसी बातें करते हो !. . .तुममें मैं अपना सब कुछ पा जाता हूँ. . . लेकिन . . बेटा कल से जब मैं बड़ी पट्टी में अकेला हो जाऊँगा तो मेरी सामाजिकता मुझे डराएगी। मेरे कानों में व्यंग्य-बाण लगने लगेंगे।"

"हमें जात की ज़रूरत नहीं है पिता जी !. . हमें इन्सान की ज़रूरत है. . और वह दिन दूर नहीं कि सारा जगतपुर आपके क़दमों की धूल के लिए टूट पड़ेगा। प्यार बेजात होती है पिता जी ! इसी नयी खेती को अपनी जात समझिएगा, अपनी मर्यादा और इज्ज़त मानिएगा।"

घर पहुँचने पर, थोड़ी देर बाद, जब आसमान का कोना-कोना सितारों से भर गया, गोविन्द, शेख़ पट्टी की ओर जाने लगा। उसी समय भीतर से दौड़ती हुई सूरा दीदी ने गोविन्द को पकड़ लिया और घर के भीतर ले जाकर उसके कमरे में बिठा दिया—"आज रात भर तुम अपना घर नहीं छोड़ सकते !. . . सुबह तुम्हें इलाहाबाद जाना है, जाते समय सब मिल लेंगे. . बस।"

गोविन्द को हँसी आ गई, "क्यों दीदी ?. . . .घर में क्यों बंद कर रही हो ?"

"मालूम है !...तुम्हें आज अपने हाथों से खाना खिलाऊँगी... जो सुबह ही से चौके में जल रही हूँ. .! फिर तुम्हारे सारे बदन में उबटन लगाऊँगी, सर पर तेल रक्खूँगी !. .आँखों में दीवाली की सजाई हुई काजल लगाऊँगी. . .और जब तुम सो जाओगे... तो... ।"

"रुक क्यों गई दीदी ?. . बोलो. . .तब क्या करोगी ? मुझे इलाहाबाद की गाड़ी पर चढ़ा दोगी ?"

"नहीं; नहीं. . . चुप रहो. . .उसे बताया नहीं जाता !. . देवी-देवताओं की बात है !"

"ओह ! ओ ! दीदी ! . . अब भी वही देवी-देवता ?" सूरा दीदी ने चिढ़कर कहा, "वह टीले और खंडहर के देवी-देवता नहीं !. . . घर के पुजनेत देवता को तुम्हारी रक्षा के लिए अगियार करूँगी, डीह को गूगुर और माला चढ़ाऊँगी,. .तुम्हारी मनोकामना की सफलता के लिए ठाकुर जी से सत्यनारायण की कथा मान आऊँगी . . .।"

न जाने और क्या कहते-कहते सूरा दीदी चौके की ओर बढ़ गई। गोविन्द ने मुस्कराते हुए आँगन में आकर पूछा—"दीदी ! क्या कुजात भी ठाकुर के मन्दिर में सत्यनारायण की कथा सुन सकते हैं ?"

"इन लुच्चे, बड़ी पट्टी वालों के कहने से हम थोड़े कुजात हो जाएँगे ! सच्चा हमेशा पवित्र है, तुम्हें नहीं मालूम गोविन्द !. . .अब तो छोटी पट्टी, नीची पट्टी की एक भी औरत बड़ी पट्टी के किसी और के घर जाती ही नहीं. . .तुम तो अपने जगतपुर के सब से प्यारे हो गोविन्द. .!"

सहसा किसी ने भीतर आने के लिए बाहरी किवाड़ पर दस्तक दी। गोविन्द ने बाहर बढ़ते ही देखा—तारामती !

गोविन्द के आश्चर्य की सीमा न रही—उसने उनका स्वागत करते हुए पूछा—"कैसे आज मेरे घर तारा ?"

गोविन्द ने तारामती का स्वागत अपने बरामदे के कमरे में किया। इसमें धीरे-धीरे मिट्टी का चिराग़ जल रहा था।

"मेरी इलाहाबाद की पढ़ाई रोक दी गई, गोविन्द !"

"रोक दी गई ! बुरा किया लोगों ने।" गोविन्द ने कहा।

"लोग कहते हैं कि जब तक गोविन्द इलाहाबाद है...तारा वहाँ नहीं भेजी जा सकती!...अगर उसे पढ़ना ही है, तो बनारस, लखनऊ जा सकती है !"

"तो ठीक ही है !...आप कहीं और पढ़िए..राजमहल से बाहर रहने में आपको शान्ति मिलेगी !"

तारा ने अजीब उदासी से अपनी हारी हुई वाणी में कहा, "और फिर हम लोगों की पढ़ाई ही में क्या रक्खा है !...अब ख़त्म कर दे रही हूँ, अपनी पढ़ाई !..फिर देखा जायगा !"

"तब आप जगतपुर में ही रहिएगा !..क्या करिएगा ?"

"मैं तुम्हारी नयी फ़सल की सच्चाई देखूंगी..और क्या कहूं !.. तुम जाओ गोविन्द..!"

यह कहकर, तारा ने सौ-सौ रुपए के दो नोट गोविन्द की ओर बढ़ाते हुए कहा, "अगर तुम इसे ले लोगे..तो मुझे बड़ी ख़ुशी होगी !...मैं आज जीवन में पहली बार तुम्हारे घर आई हूं...ख़तरे में सर डाल कर. तुम्हारे पास। अगर तुम इसे ले लोगे तो..।"

"मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है राजकुमारी !..मेरे पास है रुपया !"

गोविन्द बुरी तरह से घबड़ा गया था। तारासती चुप थी।

"ले लो गोविन्द !..इस रुपये को ले लो..मुझे शान्ति मिलेगी।"

"क्यों ?"

"मुझे तुम पर दया आती है !"

गोविन्द को जैसे किसी ने गरम सलाखों से छू दिया हो। उसने तिलमिलाकर कहा, "आप ठीक कहती हैं, राजकुमारी! आप लोगों का जीवन दया के ही लिए तो बना है..किसी को रुपया देकर, किसी को बन्दूक की गोली देकर!..लेकिन..।"

"लेकिन, क्या गोविन्द !...तुम क्यों इतने छू से गए ?"

"क्योंकि...आपने मुझ पर चोट की है!..मैं जानवर नहीं, जो मुझ पर कोई दया करे!..मैं इन्सान हूं...मुझे किसी की दया नहीं चाहिए ! मुझे..।"

गोविन्द दुखी था। तारा लज्जित थी। उसे अपने कहे हुए शब्द पर पश्चाताप हो रहा था। दोनों एक दूसरे को देखते हुए चुप थे।

"मुझसे घृणा करने लगे, गोविन्द !"

"नहीं, नहीं, ..ऐसी बात नहीं !..आप मेरे घर आयी हैं...मैं आपका चरण छू सकता हूँ..लेकिन और के लिए, क्षमा !...ईश्वर आपको शान्ति दें !"

गोविन्द ने तारा के रुपयों को उनके हाथों में दे दिया और कहने लगा —"मैं आपकी मंगल-कामना को ही कभी नहीं भूल सकता !... आपकी ओर से मेरे लिए यही बहुत बड़ी सहायता है !.."

गोविन्द ने तारा को विदा कर दिया। तारा का विदाई का अन्तिम वाक्य—"जगतपुर जल्द आना गोविन्द !...पटाई से तुम्हारी नई खेती, इस समय बहुमूल्य है..।" गोविन्द के मानस में तैर रहा था।

गोविन्द भीतर, अपने कमरे में लेट गया। सूरा दीदी खाना खिलाने लगीं। पिता जी खा-पीकर उत्तर सीवान की मचान पर चले गए।

फिर कुछ रात बीती, गोविन्द शेख पट्टी भागना चाहता था; उसी समय छिपकर अहिल्या आई। गोविन्द को स्नेह दिया। आँखों के आँसुओं से गोविन्द से सारी बातें बताई और चलते समय चुपके से गोविन्द के सरहाने पाँच रुपया रख दिया।

गोविन्द ने फिर शेख पट्टी भागने के लिए सोचा। उसी समय उसने आश्चर्य से देखा, कौशल्या खड़ी है, लम्बरदार की बड़ी लड़की; जिसने एक दिन अपने गोविन्द भइया को अपने बाप से बुरी तरह से बेइज्ज़त होते हुए देखा था। कौशल्या अपने गोविन्द भइया को एक बार फिर से मनाने आई थी। अपने आँसुओं की गहराई में गोविन्द के स्थान को दिखाने आई थी, जहाँ वह बैठा था।

गोविन्द फिर जैसे शेख पट्टी जाने के लिए खड़ा हुआ: उसने देखा—बूढ़ा रहमान अपनी मासूम बेगमा को लिए हुए सामने खड़ा है।

वे चुप थे; लेकिन उनकी डबडबाई हुई आँखों में उनकी आवाज़ें तैर रहीं थीं—"गोविन्द भइया !··जगतपुर जल्द अइयो !···राज महल में, पहले मैं आग लगाऊँगा··जो कहोगे, वह मदद दूँगा·· जल्द अइयो···गोविन्द भइया !"

सूरा दीदी सो गई। पूरा जगतपुर सो गया। गोविन्द अब भी शेख़ पट्टी भागने के लिए बेक़रार था।

गोविन्द को शरम आ रही थी, वह अपनी ज़ैनब, प्यारी अम्मी से क्या बहाना बनाएगा ?···उन लोगों ने तो आज पूरी रात वहाँ रहने के लिए कहा था। गोविन्द के दिमाग़ में तस्वीर नाचने लगी—ज़ैनब ने अभी तक खाना नहीं खाया होगा, ज़ैनी चिराग़ जलाए हुए अब तक बैठी होगी। काम-काज से थकी हुई अम्मी, ओंठों पर दुआ की रोशनी लिए हुई सो गई होंगी।

गोविन्द बहुत तेज़ी से अपने घर से निकला। बाहर अन्धेरे में कोई छाया की तरह सिमटी हुई खामोश खड़ी थी और बढ़ते हुए गोविन्द को अपनी ओर खींच रही थी !

"ओह ! ज़ैनब !!" गोविन्द प्यार से चीख पड़ा।

"आज ही से आँखें चुरा रहे हो। गोविन्द !···देखो मैं तुम्हारे लिए खाना लाई हूँ···मैं शाम ही से बैठी हुई इन्तज़ार कर रही थी,··मैंने सोचा तुम सो गए होंगे··मैं ही तुम्हारे यहाँ चलूँ··और बाहर दरवाज़े पर खड़ी रहूँ···उम्मीद थी कि तुम्हारी नींद टूटती·· और तुम एक बार भी तो बाहर निकलते !"

गोविन्द अपने कमरे में लौटकर ज़ैनब को अपनी चारपाई पर बिठा दिया और अपने हाथों से भूखी ज़ैनब को प्यार से खाना खिलाने लगा।

गोविन्द ज़ैनब को खिला रहा था, ज़ैनब अपने गोविन्द को खिला रही थी।

गोविन्द ज़ैनब को अपने दामन में छिपाए हुए सो गया था और धीरे-धीरे खामोश ज़ैनब से कहता जाता था—"यह तुम्हारा कमरा है ज़ैनब !· ·इसमें जब तुम पहली बार दूल्हन बन कर आवोगी तो मैं इस उजड़े हुए कमरे को सजा दूँगा। इस कमरे में सारी चीज़ें नई होंगी—नई मशहरी, नए बिस्तरे, नए कपड़े, नए शीशे, नई आलमारी, नई रात, नई दुनिया, नई हवा, नई रोशनी, नई खुशबू ! नई शरमाहट, नई मुस्कान, नए तराने· ·।"

"जैसे ही मैं लिखूँगी, वैसे ही चला आना गोविन्द, नहीं तो मैं मर जाऊँगी· ·हाँ।" यह कहती हुई ज़ैनब गोविन्द के सीने में इस तरह चिपक गई, जैसे वह गोविन्द हो गई थी, और गोविन्द खुशबू हो गया, दोनों न जाने कहाँ खो गए।

ज़ैनब ने फिर कहा, "अगर मेरे दिल से पूछो, मुझे तुम्हारी और पढ़ाई नहीं चाहिए। अभी ही तुम्हारा एम० ए० तुम्हारे क़दमों में लोट रहा है !· ·तुम मुझसे कभी न अलग हो गोविन्द !· ·मुझे तुम्हारे अलावा और कुछ नहीं चाहिए· ·न ज़न्नत न खुदा· ·।"

दोनों सो रहे थे और अभी-अभी आधी रात बीतते-बीतते नया चाँद निकला था; जिसकी चाँदनी गोविन्द के आँगन में फैल रही थी।

दोनों चुपचाप कमरे से चाँदनी देख रहे थे। रात खामोश थी। वे दोनों भी खामोश थे—लेकिन रोनी में कोई मछली मारता हुआ माझी बहुत ज़ोर-ज़ोर से गा रहा था—

"रानी ! छोड़ दे अँचरवा
हम परदेसवा जाबे ना !"

* * *

गोविन्द जगतपुर छोड़ रहा था और सुबह ही सुबह चारों पट्टियों की आत्माएँ उसे विदा देने के लिए किनारे-किनारे खड़ी थीं। किशन, मोहन, राधे, प्रताप, जमुना, अब्दुल, गफ़ार, सईद, हसन, वगैरह दोस्त की बिछड़ती हुई चिन्ता लिए खड़े थे। पिता जी, चाचा,

काका, मौसिया, बाबा, दद्दा, चच्चा आदि ओंठों पर दुआ और प्यार की आवाज़ें लिए हुए खड़े थे। सूरा दीदी, पारो भाभी, आदि कितनी माँएँ, भाभियाँ और बहनें खड़ी थीं, सब के दिलों में गोविन्द के प्रति बिछुड़न की पीड़ा थी। कितनी क़तारों में जगतपुर की जवान मिट्टी के नंगे भुंगे, अपलक गोविन्द को देखते हुए काले, गोरे बच्चे खड़े थे; जिनकी नंगी देह में सिर्फ़ एक गंदा डोरा पड़ा था—सो भी कमर में।

कुछ दूर पर अम्मी खड़ी थीं और उससे सटी हुई न जाने क्या देखती हुई मासूम बाज़ी, ज़ैनी खड़ी थी; जिनके किनारे विदाई का ग़म और दुआ की कितनी लकीरें उभरी हुई थीं।

दूर-दूर मकानों की ओट से न जाने कितनी तिर्छी निगाहें खिंची हुई थीं। न जाने कहाँ-कहाँ से अहिल्या, कौशल्या, बेगमा आदि भीगी पलकों से देख रही थीं।

और सबसे दूर, सबसे अलग, सबसे खामोश, सबसे रूठी हुई ज़ैनब उसी नीम तले खड़ी थी; ओढ़नी के आँचल में बेशक़ीमती आँसुओं को छिपाती हुई, बाहों की फड़कन को अपनी मासूमियत में छिपाए हुए; बिछुड़न की पीड़ा को अपनी खामोशी में छिपाए हुए; सबसे दूर, सबसे अलग गोविन्द की ज़ैनब खड़ी थी: गोविन्द की धरती खड़ी थी, लक्ष्मी खड़ी थी: मानो यह कहती हुई कि जाओ···गोविन्द! ··जाओ··मैं रोज सुबह इसी नीम तले आ-आकर तुम्हारे खैरियत से लौटने की राह देखती रहूँगी।···जाओ··मैं हर दिन आफ़ताब के डूबने के पहले यहाँ आकर खड़ी रहा करूँगी और रोज़ डूबते हुए सूरज की मासूम किरनों से इल्तिज़ा करती रहूँगी कि तुम्हें हर रात को मेरा सुनहरा ख़्वाब दिखाई देता रहे।

गोविन्द सब के प्यार, सबके आशिर्वाद सब की दुआएँ लेकर आगे बढ़ने लगा—नंगे जगतपुरी बच्चे खुशी से विदा देते हुई चिल्ला उठे—"गोविन्द भइया!···जल्दी अइयो!··"

"आइयो··जल्दी !"

गोविन्द ने मुड़कर सब की उठी हुई निगाहों को देखा और जैसे ही उसकी निगाह नीम तले गई; उसकी पलकें झुक गईं: जैसे हवा में दो फूल टकरा गए हों, जैसे लहरों पर चाँदनी छू गई हो।

* * *

गोविन्द गाड़ी पर बैठकर इलाहाबाद जा रहा था। उसकी आँखों में सूरा दीदी की लगाई हुई काजल थी, लेकिन वहाँ सूरा दीदी न थी। उसकी दाईं थैली में ज़ैनी के दिए हुए गुलाब के दो सफ़ेद फूल थे, पर वहाँ से मासूम ज़ैनी बहुत दूर छूटती जा रही थी। बायीं थैली में पारो भाभी के दिए हुए दो बतासे और न जाने कैसे कब के रक्खे हुए दस-दस रुपये के पाँच नोट थे लेकिन वहा चाँदनी की तरह मुस्करातो हुई मनचली भाभी न थी। दाईं बाँह में अम्मी की रेशमी कपड़े में बारीकी से सिली हुई, तावीज़ बँधी थी।

गाड़ी फ़ैजाबाद से इलाहाबाद की ओर भगी आ रही थी। गोविन्द ने अनायास एक मीठी आवाज़ से अपने दाएँ हाथ को उठाकर सीने पर रक्खा। अचानक उसके सीने में छिपाई हुई, ज़ैनब की रेशमी रूमाल याद आई।

गोविन्द ने रुमाल निकाल कर उसकी तह में देखा। उस पर इत्र की शीशी उड़ेली हुई थी और उसकी खुशबू से गोविन्द पागल हो रहा था। उसने रूमाल खोल कर अपने हाथ को खिड़की से बाहर बढ़ा दिया।

रूमाल गोविन्द के हाथ में उड़ रही थी और उसकी खुशबू कितनी बारीक लकीरें बनकर हवा में बढ़ती जा रही थीं, जो कभी टूटने वाली न थीं, कभी खोजाने वाली न थीं, वे कभी मुर्झाएँगी नहीं उनमें कभी खुशबू न कम होगी। ये ऐसी खुशबूदार लकीरें थीं जो इलाहाबाद और जगतपुर के बीच में एक पावड़े की तरह बिछ रहीं थीं।

गाड़ी झक्-झक् करती हुई इलाहाबाद की ओर बढ़ रही थी, उत्तर से सीधे दक्षिण की ओर बढ़ रही थी, गाँव से शहर की ओर बढ़ रही थी, चिराग़ से बिजली की ओर बढ़ रही थी, मासूमियत से बनावट की ओर बढ़ रही थी, भूख और गरीबी से अन्तर्द्वन्द्व की ओर बढ़ रहीथी। मिट्टी और धूल से सिमेन्ट और चूने की ओर बढ़ रही थी! और गोविन्द अपने हाथ में ज़ैनब की रूमाल लिए हुए खिड़की के बाहर देख रहा था। इत्र की ख़ुशबूदार लकीरें उत्तर की ओर बढ़ रहीं थीं और गोविन्द धीरे-धीरे कह रहा था—"ख़ुशबूदार लकीरो!··जाओ···यहाँ से सीधे राजापुर जाना, उस अधेड़ गंजा सिर वाले गाड़ीवान के घर; सुभागी से मिलना, उसकी रोती हुई आँखें, सूखे हुए ओंठों में ख़ुशबू भर देना··और मेरा प्यार कहना।··फिर वहाँ से तिलकपुर के रास्ते पर चलना, सोना ताल के पास ढूँढ़ना, वहाँ तुम्हें मरी हुई विन्दो की हड्डियाँ मिलेंगी। ढूँढ़ना अगर वे हड्डियाँ मिट्टी होकर धरती हो गई हों, तो उस धरती की आँख में तुम समा जाना और मेरा स्नेह कहना। वहाँ से तुम सीधे लौट आना और वहीं कहीं आस-पास, चार छः मीलों के अन्दर सीतारामपुर खोजना। वहाँ क़ैसर को ढूँढ़ना; एक मासूम नौजवान लड़की। वह गाँव के हिन्दुओं के बीच में बहुत उदास रहती है। उसकी शर्बती आँखें हमेशा डबडबाई रहती हैं। उसे मेरा प्यार कहना और उसके स्याह गेसू में तू उलझ जाना। उसकी अम्मी से मेरा आदाब कहना।

फिर जगतपुर लौटना, रोनी को पार करना। उसकी धरती के कण-कण में अपनी ख़ुशबू भर देना। नयी खेती के हर धान के फूल, हर बाजरे, ईख, कोदों, अरहर, ज्वार वग़ैरह में अपनी ख़ुशबू से प्राण भर देना—फिर सब्बो की क़ब्र पर जाना और मेरी ओर से वहाँ दो आँसू बहाना और प्यार से उसे ख़ुशबूदार थपकियाँ देकर मेरा प्यार कहना, मेरा आशीर्वाद देना। फिर मेरी ख़ुशबूदार लकीरो!···मेरी सूरा दीदी के चरनों पर माथ टेकना, पिता जी से चरण स्पर्श करना,

ज़ैनी की ख़ामोश आँखों में प्यार भर देना। अहिल्या, कौशल्या, बेग़मा, पारो, किशन वग़ैरह को प्यार कहना और आख़िर में मेरी ज़ैनब रानी में अपनी सारी बची हुई ख़ुशबू से समा जाना, खो जाना।"

१८

इलाहाबाद में यह पन्द्रह अगस्त की एक शाम थी और गोविन्द अपने कमरे में उदास बैठा था।

यह कमरा यूनिवर्सिटी रोड के एक ऊँचे मकान का बाहरी कमरा था, जिसका दरवाज़ा एक तंग गली में खुलता था; जिस गली से सुबह सात बजे से नौ बजे तक हॉस्टल के लड़के, उनके महराज, नौकर वगैरह, पश्चिम और अहीर टोलिया में ताजा दूध लेने जाते थे। नौ बजे से ग्यारह बजे तक अहीरों के ढोर, उस गली से गुज़र कर चैथम लाइन की ओर चरने के लिए जाते थे। ग्यारह बजे से तीन बजे तक झुका हुआ जमादारिनों (भंगी) का काफ़िला आता जाता था। पाँच बजे से छः बजे तक फिर अहीरों के ढोर लौटते थे और रात के सन्नाटे में भी वह बदनसीब गली नहीं सो पाती थी। उस समय कभी न कभी एक बेनाम चीज़ से भरी हुई भैंसा गाड़ी भागती नज़र आती थी। कमरे की चौड़ी खिड़की यूनिवर्सिटी रोड की ओर खुलती थी, जो इलाहाबाद की सबसे नाज़ुक, सबसे रंगीन सड़क है।

बात यह हुई कि जब गोविन्द इलाहाबाद आया, तब तक उसे यूनिवर्सिटी के समीप कहीं ठहरने की जगह पाने की दृष्टि से बहुत देरी हो गई थी। जितनी भी जान पहचान की जगहें थीं, सब भर गई थीं, और वैसे उसके लिए इन्द्रा बहन को छोड़ इलाहाबाद में अपना कहलाने वाला कोई था ही नहीं; सो भी इन्द्रा बहन वीमेन होस्टल (अब सरोजनी नायडू होस्टल) के डबल सीटेड रूम में रह रहीं थीं, जो बद-क़िस्मती से एक ऐसे ज़ेलखाने की तरह, चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारों से बंद हॉस्टल है कि कोई पुरुष जाति उसके भीतर नहीं देख सकता.

चाहे वह—किसी का बूढ़ा बाप हो, चाहे नन्हा सा भाई या किसी का दुध मुँहा बच्चा।

लेकिन फिर भी इन्द्रा बहन ने गोविन्द से कह रक्खा था कि तुम तकलीफ न करना, न किसी बात की परवाह करना, तुम्हें जितने भी रुपये किराये का कमरा मिले ले लेना।

लेकिन गोविन्द काफी दिनों तक असफल रहा। और आखिरकार एक दिन इन्द्रा की सहपाठिनी नीना मजूमदार (नलिनी) के द्वारा उसके लब्धपर्ती पापा, बिक्रम मजूमदार की बड़ी सी कोठी में यह कमरा बारह रूपए महीने किराए पर मिला था।

हाँ, तो इलाहाबाद में यह पन्द्रह अगस्त की एक रोशनी से भरी हुई शाम थी; क्योंकि इलाहाबाद धूम से स्वतंत्रता-दिवस मना रहा था, और गोविन्द अपने कमरे में उदास बैठा था।

जगतपुर से ज़ैनब का खत हर तीसरे दिन आता था, सूरा दीदी का हर पाँचवें दिन आता था, किशन, मोहन, राधे अब्दुल वगैरह का मिला हुआ एक खत हर सातवें दिन आता था। इस तरह गोविन्द को जगतपुर की नित्यप्रति की सूचना, उसकी नयी खेती की कुशलता और रंगत का पूरा ब्यौरा बराबर मिला करता था; फिर भी गोविन्द कभी-कभी अजीब तरह से उदास हो जाता था, चाहे वह लाइब्रेरी में बैठा हो, चाहे क्लास रूम, चाहे युनियन हाल, चाहे किसी लान में हो, चाहे मित्रों में बैठा हो।

वह एकाएक हँसता, बोलता, पढ़ता, चलता हुआ खामोश हो जाता था और उसकी एकाएक न जाने क्या देखती हुई आँखें कहीं स्थिर हो जाती थीं और वह न जाने क्या सोचता हुआ (निश्चित पता उसे भी न रहता था) चुप हो जाता था।

इस उदास खामोशी में सोचने की इतनी रेखाएँ आकर मिल जातीं थीं कि वह स्वयं नहीं निश्चित कर पाता कि वह क्या सोच रहा

है। इन रेखाओं में उसकी नयी खेती की सफलता का रंगीन भविष्य रहता था, दूसरी ओर जगतपुर के दुश्मनों की ओर से डर-शंका की काली-काली रेखाएँ आकर मिल जातीं थीं। एक ओर से पढ़ाई की टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें सामने आती थीं, दूसरी ओर से ज़ैनब के प्यार की सुनहरी रेखाएँ मिलने लगती थीं।

इस तरह गोविन्द अपने कमरे में उदास बैठा था, यद्यपि यह कोई निश्चित उदासी नहीं थी, बल्कि गोविन्द का अकेलापन उसे उदास बना रहा था, कोई बेनाम चीज़ उसे ख़ामोश कर रही थी।

सहसा गली की मोड़ पर इन्द्रा बहन की आवाज़ आई—"गोविन्द !···क्या कर रहे हो अकेले ?"

गोविन्द ने झट से दरवाज़े पर आकर इन्द्रा का स्वागत किया और उसे लगा कि उसे उसका जगतपुर मिल गया।

कमरे में बैठते हुए इन्द्रा ने फिर पूछा—"क्या सोच रहे थे, गोविन्द ?"

गोविन्द मुस्कराकर फिर चुप हो गया।

गली के मोड़ पर क्षणभर के बाद नीना की आवाज़ आई—"इन्द्रा !··वहाँ क्या बैठ गई ?···बाहर आवो··मिस्टर गोविन्द !··आज स्वतंत्रता दिवस है··।"

आख़िरी शब्द के बोलते-बोलते, नीना गोविन्द के कमरे के प्रवेश कर आई, और अपनी नाक पर से रेशमी रूमाल हटाकर इन्द्रा को शरारत से उठाने लगी—"चलो बाहर चलो !··मिस्टर गोविन्द ! चलिए··आज शहर का—इल्यूमिनेशन (प्रकाश) देखने लायक है !!"

गोविन्द, इन्द्रा और नीना के साथ यूनिवर्सिटी रोड पार करके मोतीलाल नेहरू रोड पर चल रहा था। इलाहाबाद का कोना-कोना बिजली की रोशनी और सजावट से चमक रहा था, और गोविन्द सोच रहा था कि वह भी एक दिन जगतपुर भर में इसी तरह प्रकाश

करेगा। घर-घर, झोपड़े-झोपड़े में मंगल-दीप जलेंगे। जिस दिन उसकी नयी फ़सल कट-पिट कर जगतपुर भर में अन्न ही अन्न बिखेर देगी। जिस दिन जगतपुर वालों को सच्चाई का ज्ञान हो जायगा। जिस दिन दूल्हन ज़ैनब गोविन्द के घर आएगी, जिस दिन धरती स्वयं गाएगी। और उस क्षण से जगतपुर हमेशा जागता रहेगा।

"क्यों मिस इन्द्रा !··क्या बात है··गोविन्द क्यों बहुत खामोश रहते हैं ?"

"यह मेरी कुछ आदत है मिस नीना" गोविन्द ने बीच ही में उत्तर दे दिया।

'नहीं, ऐसी बात नहीं, " इन्द्रा बहन ने हँसते हुए कहा, "ये तो बहुत खूबसूरत बातें करते हैं····।"

"जी हाँ, लेकिन मुझे अभी तक इसका पता नहीं; वैसे··मैं मानती हूँ कि आप ठीक ही कह रही होंगी !"

"नहीं नीना !··आप बिल्कुल न इसकी बात मानिए ! मैं सच-मुच बहुत कम बोलता हूँ और बहुत कम अच्छा बोलता हूँ !"

सब मुस्करा उठे। सामने हज़ारों बत्तियों से प्रकाशित आनन्द भवन मुस्करा रहा था। और उस रात को, उसको देखने वालों से, वह बार-बार कह रहा था कि मुझे आज इस तरह देखकर मेरे उस व्यक्तित्व को भी याद रखना जब मेरी दीवारों से आँसू टपकते रहते थे। मैं जब अपने मासूम बच्चों को यहाँ से बिदा करके जेल जाने देती थी। उन्हीं आसुओं का प्रतीक मेरे पीछे है जिसे दुनिया—कमला नेहरू हास्पिटल कहती है, लेकिन वह मेरा ताजमहल है।

भारद्वाज आश्रम के पास, सड़क की उतार पर आते-आते, गोविन्द ने इन्द्रा बहन से वापस लौट चलने को कहा। नीना अभी और टहलना चाहती थी, और इन्द्रा बहन की भी यही इच्छा थी।

इन्द्रा ने गोविन्द से कहा, "आज स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष में तुम्हें एक भेंट देना चाहती हूँ, गोविन्द !"

"तुमसे मुझे बहुत मिला है, इन्द्रा बहन!"

लेकिन इन्द्रा गोविन्द को अधिक से अधिक यथासंभव क्षणों तक अपने साथ रखना चाहती थी क्योंकि उसे मालूम था कि गोविन्द अकेले अपने कमरे में अकारण उदास बैठा रहता है।

* * *

तीनों अलबर्ट रोड से सिविल लाइन की ओर बढ़ रहे थे। जगपुतर से और दक्षिण की ओर कटरा, युनिवर्सिटी रोड से भी दक्षिण—नेशन से इन्टर नेशनल की ओर, बिजली से राडलाइट की ओर, हिन्दू मुसलमान से एंग्लो इण्डियन और क्रिश्चियन्डम की ओर स्नो और पाउडर से लिपिस्टिक और आइब्रो पेन्सिल की ओर—साड़ी-ब्लाउज़ से फ्राक और स्लीवस की ओर, बनावट से धोखा की ओर, अन्तर्द्वन्द से पूर्ण कलह की ओर, मैरेज से ट्रायल मैरेज की ओर।

इस तरह से गोविन्द सिविललाइन में घूमता हुआ सोच रहा था कि वह अपने जगतपुर से कितनी दूर दक्षिण की ओर बढ़ आया है, लेकिन उसे यहाँ भी इतनी रोशनी, इतनी चमक, इतने संगीत और बाजों से अभिभूत वातावरण में, जैसे उसके कानों में कोई कुछ कह रहा है। बार-बार जब गोविन्द के सामने कोई भी लिपा पुता चेहरा आ जाता है; तब उसकी आँखों में एक ऐसी तस्वीर नाच उठती है कि वह तिलमिला उठता।

और जब गोविन्द, सिविललाइन की सजी हुई दूकानों के सामने से धीरे-धीरे आगे बढ़ता है तब उसकी तिलमिलाहट में—वही घूमते हुए मुस्कराहट के चेहरे धीरे-धीरे कहते हैं—हमें शान्ति नहीं।

हमें शान्ति नहीं।

हमें शान्ति नहीं।

तब गोविन्द अकस्मात् आश्चर्य से किसी चेहरे पर घूरने लगता था और वह चेहरा गोविन्द से स्पष्ट कह देता था—हमें प्यार चाहिए,

सच्चा प्यार। हमें प्रेम चाहिए··बलिदान का प्रेम। हमें स्नेह चाहिए····झोपड़ी का स्नेह।

गोविन्द फिर जब अपनी तिलमिलाई हुई आँखों को वहाँ से हटाकर कहीं और टिकाता तब वहाँ से भी आवाज़ आने लगती —हमें लेटेस्ट माडल की कार चाहिए! हमें रम चाहिए!··हमें वह पेयर चाहिए, हमें सिर्फ़ बेहोशी चाहिए! हमें डाइवोर्स चाहिए!··· हमें अभी तो कम से कम बीस ट्रायल मैरेज चाहिए।

इन्द्रा बहन ने गोविन्द को एक क़ीमती पार्कर पेन खरीद कर प्यार से भेंट की। नीना ने अपने लिए एक आईब्रो पेंसिल और कुछ ट्वायलेट के साथ थोड़ी सी टाफी खरीदी और फिर सब दक्षिण से उत्तर की ओर लौट आए। लेकिन जगतपुर अब भी गोविन्द के कमरे से कितनी दूर, उत्तर की ओर छूट गया था!

* * *

जगतपुर से ज़ैनब और किशन दोनों के पत्रों में लिखा था कि आज चार दिनों से जगतपुर में पानी बरस रहा है और अभी-अभी आसमान साफ़ हुआ है, और हम लोगों ने सूरज का दर्शन किया है। रोनी नदी में बहुत पानी आ गया है; उसमें इतनी तेज़ी आ गई है कि अब कोई तैर कर उस पार नहीं जा सकता। छोटी पट्टी के सब ढोर अब रोनी के किनारे नहीं चरते, क्योंकि सब कछार और छोड़न पानी से डूब गया है। रोनी के उस पार की भी घास का कछेला, परती हम लोगों के लिए बेकार हो गयी है क्योंकि रोनी के बढ़ जाने से ढोर उस पार नहीं जा सकते।

परसों राजा के रखौना में मोहन की चार भैंसे और प्रताप की आठ गाएँ सिर्फ मुँह मारने के लिए दौड़ी थीं कि राजा के सिपाहियों ने उन गाय-भैंसों को सलीमपुर के कान्जीहौस में बंद कर दिया था और मोहन प्रताप पर कुल तीस रुपए ज़ुर्माना पड़े हैं।

बड़ी पट्टी में सब खैरियत है, सिर्फ़ परसों रात को बद्री मुखिया ने

बेचारी अहिल्या को बहुत मारा है, और हाँ लम्बरदार ने एक दिन राजकुमार को अपने घर शराब पिलाई है और इस पर जब कौशल्या रो रही थी तब लम्बरदार ने भी उसे खूब पीटा है।

शेख़ पट्टी की बड़ी मस्जिद में एक घटना घटी है। उसमें सुअर का गोश्त फेंका मिला है, लेकिन उसी क्षण नीची पट्टी के रहमान ने सब मुसलमानों को इत्तला दी कि यह जालसाज़ी राजकुमार विजय ने की है। वह अब हिन्दू और मुसलमानों को आपस में लड़ाना चाहता है। इस तरह से मस्जिद में कुछ न हुआ, दुक्खी चमार ने उस गोश्त को फौरन वहाँ से हटा दिया और सब बातें खोल दीं।

कल शाम को, मेरे घर बेग़मा छिपकर आई थी, तुम्हें बहुत पूछ रही थी कि गोविन्द भाई कब आयेंगे। अहिल्या, कौशल्या; रोज़ तुम्हें याद करके रोती हैं।

और बाक़ी सब ठीक है। फ़सल खूब ज़ोरों पर चल रही है। सब धान फूटकर झर-झर हो गए हैं। और सब धान के फोफलों में दूध भर गया है। बाक़ी सब ख़ैरियत है···मैं भी ख़ैरियत से हूँ; कहीं जी नहीं लगता, हरदम तुम्हारा रास्ता देख रही हूँ।

*　　*　　*

तीसरी रात को गोविन्द आठ ही बजे अपने कमरे में सो गया था। और ठीक तीन बजते-बजते वह एक दम से चौंककर जग गया। उसे लगा कि रोनी के किनारे उससे और विजय से मार-पीट हो रही है और वह बुरी तरह से चोट खाकर रोनी की तेज़ धार में ढुलकने लगा है।

गोविन्द कमरे में लाइट आन कर के चुप बैठा था, और जब उसकी तबीयत कमरे की सीमा में फूलने लगी; तब वह चुपचाप यूनिवर्सिटी रोड पर टहलने लगा।

उसी समय यूनिवर्सिटी क्लॉक टावर में चार-चार सुमधुर घंटियों के बजने की सम से धीरे-धीरे सोलह घंटियाँ बजीं और अंत में चार बड़े-बड़े घंटों के बजने की गजर की तरह आवाज़ने समूची यूनिवर्सिटी सीमा को स्पन्दित कर दिया।

गोविन्द धीरे-धीरे यूनिवर्सिटी रोड पर टहल रहा था और क्लाक टावर की अवाज़ से उसे लगा कि मानों कोई पत्थर का एक बहुत ऊँचा और बेनज़ीर महल का खंडहर खड़ा है। तूफ़ानी रात का पिछला पहर है। गोविन्द उसी खंडहर में कहीं सो गया है और ज़ैनब उसे घटाटोप अन्धेरे में ढूढ़ती आ रही है, और वह एक लटकती हुई रस्सी को अपनी ओर खींच रही है और उससे उस खंडहर का मीठा गजर बज रहा है। ज़ैनब चुप होकर उस मीठी अवाज़ के नीचे रस्सी पकड़े हुए खड़ी है। गोविन्द इसे दूर से देख रहा है।

गोविन्द यूनिवर्सिटी रोड पर टहल रहा था और उसे लग रहा था कि वह किसी खेत के चौरस मेंड़ पर चल रहा है। क्योंकि यूनिवर्सिटी रोड की धरती, अपने सीने पर कुटे हुए सीमेन्ट, चूना, पत्थर और तारकोल की मोटी तह को चीर कर गोविन्द को देख रही थी और गोविन्द की नाक में वही जवान मिट्टी की खुशबू आ रही थी और वही धरती की फ़रियाद आ रही थी—कि एक दिन मेरे दामन में चलते हुए मेरे बच्चों पर अंग्रेजो ने गोली चलाई थी, किसी बहन का सुहाग लूटा था, किसी माँ की गोद लूटी थी—···एक दिन मेरे दामन से मेरे चार हड़ताली, सोलह दिन और रात के अनशन किए हुए बच्चे न जाने कहाँ भेजे गए थे। एक दिन और इस तरह कितने दिनों की घटनाएँ हैं कि मेरे कितने बच्चे एम०ए०,बी० ए० की पवित्र आरज़ू लेकर पढ़ने आते हैं और ग़रीबी, लाचारी से हार कर यहाँ से धीरे छिप कर चले जाते हैं···और उनके बेबस गर्म-गर्म आँसू मेरे दामन पर ढुलक जाते हैं।

दूसरी रात को जब गोविन्द सोने जा रहा था, सहसा गोविन्द को

मालूम हुआ कि कोई उसके ऊपरी कमरे में सितार बजा रहा है, फिर भी वह मुँह ढक कर सो जाना चाहता था। लेकिन सितार इतनी गति से बजाया जा रहा था कि जैसे कहीं से संगीत की लहरें दौड़ रहीं हों फिर भी गोविन्द चुपचाप सो जाने के लिए बार-बार करवटें बदल रहा था।

सहसा उसके बंद दरवाज़े पर किसी की आवाज़ आई—"गोविन्द, बाबू ! ज़रा दरवाज़ा खोलिए।"

"कौन ?" गोविन्द ने भीतर से पूछा।

"जी, मैं··बन्ने हूँ बन्ने !···सरकार बाबू का नौकर ?"

गोविन्द ने आश्चर्य से बिजली जलाई और किवाड़ खोलते ही पूछा—"क्या है बन्ने ?"

बन्ने ने अदब से दाँत निकालते हुए कहा, "सरकार ! ···सुन रहे हैं न !··यह सितार रानी बिटिया बजा रही हैं···आप को उन्होंने बुलाया है।"

"रानी बिटिया !" गोविन्द को आश्चर्य हो रहा था :

"हाँ-हाँ··नीना रानी !"

गोविन्द ने घड़ी देखी और बन्ने से पूछा, "बन्ने, तुम झूठ बोल लेते हो न ?"

"हाँ, हाँ, सरकार खूब ! हाथ और ज़बान दोनों माफ़ हैं !"

"तब एक काम करो,··जाकर नीना से कहना कि गोविन्द बाबू सो गए हैं !"

"न, सरकार !··उन्हें मालुम है कि आप जग रहे हैं··कोई दूसरा बहाना बताइए !"

गोविन्द ने झुँझलाते हुए कहा, "अच्छा जाओ··कुछ नहीं··कह देना कि गोविन्द की इच्छा नहीं है !"

यह कह कर, गोविन्द ने किवाड़ बंद करली और सोचने लगा कि नीना कितनी बेवकूफ़ है !··बार-बार यह सोच कर शहरी तीर मार रही है···कि गोविन्द देहात का है। उसने ऐसी रंगीनियाँ कहाँ देखी होंगी, यह देहाती लड़का बड़ी आसानी से बेवक़ूफ़ बनाया जा सकता है !

गोविन्द ऊपर सितार सुन रहा है और अपने अन्तर्मन में सोच-सोच कर हँस रहा था। सहसा सितार का संगीत बंद हुआ और गोविन्द को आशा हुई कि अब उसे नींद आ जायगी और वह अपनी नींद में ख्वाब देखेंगा। ख्वाब में वह जगतपुर पहुँच जायगा और जगतपुर पहुँच कर उसे उसकी ज़ैनब मिल जायगी।

एकाएक दरवाज़े पर नीना की आवाज़ हुई —"गोविन्द बाबू !" गोविन्द ने फिर लाइट आन की और दरवाज़ा खोलकर नीना का स्वागत किया। गोविन्द ने एक दृष्टि में नीना और अपनी घड़ी दोनों को देखा ! दोनों में बारह बज रहे थे।

नीना ने गोविन्द को देखते ही पूछा, "क्या आप को मेरा सितार अच्छा नहीं लगता ?"

"अच्छा बुरा को तो मैं नहीं कह सकता, क्योंकि मैं कुछ समझ नहीं पाता !"

"समझ नहीं पाते ?" नीना ने आश्चर्य से कहा,

"मुझे भी नहीं ?"

"शायद आप को भी नहीं !" गोविन्द ने उदासी से कहा।

"यह मेरी बदक़िस्मती है,··लेकिन ··गोविन्द ! मैं आज यह सितार तुम्हारे लिए बजा रही थी।"

गोविन्द का माथा घूम गया। वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल कर, नीना से बातें करता हुआ यूनिवर्सिटी रोड पर निकल आया। आसमान में चाँद निकल आया था। यूनिवर्सिटी रोड साफ़ लग रही थी।

"मैं यह सितार तुम्हारे लिए बजा रही थी गोविन्द !" नीना ने फिर कहा, और दूर आसमान में नए चाँद को देखता, गोविन्द चुप था।

"गोविन्द ! लगता है कि तुम कवि भी हो !" नीना ने फिर पूछा।

"नहीं यह बेवक़ूफ़ी मुझमें नहीं है !"

"तब तुम हमेशा किसको याद किया करते हो ?"

गोविन्द नीना के साथ यूनिवर्सिटी की ओर बढ़ने लगा और उसकी इच्छा हुई की वह कह दे कि मुझे एक ऐसी लड़की याद आती रहती है जो जगतपुर की शेख पट्टी से रोज़ निकल कर, सुबह और शाम एक नीम के तले खड़ी होकर निकलते और डूबते हुए सूरज की किरनों को देखती रहती है और रोज़ रोकर रात में सोती है—और सुबह फिर निकलते हुए सूरज की पहली किरन से प्रार्थना करती है; कि मेरे गोविन्द को खैरियत से रखना !

लेकिन गोविन्द चुप था और उसके समीप नीना हवा में जलती हुई मोमबत्ती की तरह चंचल थी।

"तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो गोविन्द !"

नीना के इन शब्दों को सुनकर गोविन्द फिर कँप गया और उसने स्थिरता से कहा,

"शहर के लोग इतना झूठ क्यों बोलते हैं ?"

"क्या तुम मुझे झूठी समझते हो, गोविन्द ?" नीना को जैसे बहुत बुरा लगा हो !

गोविन्द चुप था। नीना गोविन्द के दोनों हाथों को पकड़े हुए गंभीरता से कह रही थी, "मैं सत्य हूँ··मैं अपनी आत्मा की बात कर रही हूँ··तुम मुझे चाहे जितना ग़लत समझो; लेकिन मैं दिखा दूँगी कि सच्चा प्यार किसे कहते हैं ?··मैं और मेरा सितार तुम्हें कैसे प्यारा नहीं लगता !"

आवेश में गोविन्द गंभीरता से अपने कमरे में लौट आया और वह फिर सोने का प्रयत्न करने लगा। इतने में गोविन्द ने सुना कि

नीना फिर ऊपरी कमरे में आकर सिसक-सिसक कर रो रही थी। गोविन्द की इच्छा हुई कि वह इसी दम इस मकान को छोड़कर इन्द्रा बहन के पास चला जाय और सारी बातें कह दे, लेकिन रात के एक बजे थे और इन्द्रा बहन वीमेन होस्टल में बंद थीं।

सुबह आठ बजे गोविन्द ने वीमेन होस्टल में जाकर इन्द्रा बहन से भेंट की और स्पष्ट शब्दों में रात की घटी हुई घटना को कह सुनाया और गोविन्द ने यह भी कहा, कि अब उसका यूनिवर्सिटी रोड पर रहना ठीक नहीं।

इन्द्रा ने समझाया कि यह तो यूनिवर्सिटी जीवन की साधारण घटनाएँ हैं। उन लोगों के होस्टल में भी तो इसी तरह कितने पागल लड़कों के ख़त आते हैं, प्रतिज्ञाएँ आती हैं, पर क्या वे पढ़ाई छोड़कर भाग जाती हैं? फूल की कितनी क्यारियाँ, रास्ते में मिलती जायँगी और सच्चा राहगीर अपने रास्ते चलता रहेगा।

१९

यूनिवर्सिटी रोड तो वैसे बहुत बड़ी-बड़ी हस्तियों से बसी थी, लेकिन इन हस्तियों में गंजा झीसी खाँ नाम का एक तांगेवाला सब हस्तियों का बादशाह था।

उसकी उम्र मुश्किल से चालीस साल की थी। इतने में यह उसकी तीसरी बीवी कल रात को आयी थी। दो बीवियों को वह तलाक़ दे चुका था। उसके घोड़े हर महीने बदले जाते थे, और जब कभी वह नया घोड़ा लेता था उसकी एक न एक आँख जरूर अंधी या कानी रहती थी और घोड़ा ज़रूरत से ज़्यादा बूढ़ा रहता था और वह हमेशा उन घोड़ों के नए नाम रखता जाता था—कभी जिन्ना साहब, कभी सुभाष बोस, कभी हनुमान जी, सिकंदर कभी हसन-हुसेन वग़ैरह।

गंजा झीसी खाँ वैसे तो जात से मुसलमान था लेकिन अपने विचारों से इतना असीम था कि क्या कहने? वह अपनी जात इन्सान बताता था। उसे देखने से लगता था कि वह बम्बई का कोई मशहूर दादा है लेकिन उसके व्यवहार इतने बच्चों के से थे कि देखने वाले ताज्जुब करते थे।

सुबह बिना टोस्ट के चाय न पीता था और चाय पीते समय वह पहला कप अपने घोड़े को पिलाता था और टोस्ट के कितने टुकड़ों को उसके किनारे-किनारे बैठे हुए कम से कम बीस कुत्तों के सामने फेंकता जाता था।

इसके बाद वह एक पुरानी पाइप में (जो किसी अमेरिकन कैप्टन ने उसे भेंट की थी) सिगरेट या बीड़ी की तम्बाकू डालकर अजीब अदा-शान से पीता था और यूनिवर्सिटी रोड के एक छोटे से पीपल के पेड़ के नीचे अपने घोड़े की मालिश करता था।

मालिश करते समय, वह फिल्म के उन तमाम चलते हुए गानों को गाता जाता था, जो शहर में इस सप्ताह की खास तस्वीरें रहती थीं। वह कभी कोई पुराना गीत न गाता था। यही कारण था कि कितने होस्टल के बाबू लोग जब पिक्चर जाना चाहते थे, तब जितनी पिक्चरें उस समय चलती थीं, सबके बारे में उससे पूछ लेते थे। वह सब चलती हुई तस्वीरों की समीक्षा देता रहता था।

वह यूनिवर्सिटी के सब लड़कों, बड़े, जवानों को गाली बकता रहता था लेकिन जैसे किसी के सर किसी तरह की आफ़त आती, झीसी खाँ अपना ताँगा लिए उसके सामने खड़ा मिलता। वह यूनिवर्सिटी जाते हुए कितने बाबुओं पर छींटे कसता रहता, हिन्दुस्तानी में नहीं, अमेरिकन अँग्रेजी में, और लड़कियों के तो रग-रग का पक्का डाक्टर था।

यूनिवर्सिटी रोड से आती-जाती हुई तमाम नौजवान जमादारिनों को वह कभी अपनी महबूबा, कभी लैला, कभी शीरीं, कभी मेरी जान, कभी डार्लिंग वगैरह न जाने कितने संबोधनों से पुकारता फिरता था। लेकिन कभी उनपर आँच न आने देता। पिछले साम्प्रदायिक दंगों के दौरान में वह अपनी इसी इन्सानियत के नाते जेल में चार महीने कड़ी सज़ा काट आया था। कोई पुलिस चौकी के हेड कांसटेबिल साहब एक नौजवान लड़की को परेशान कर रहे थे। एक रात को उस लड़की को पकड़ते समय, झीसी खाँ ने अपने ताँगे से उन्हें देख लिया था और फौरन मुंशी जी को दो चाबुक मारा था। फिर दूसरी सुबह वह साम्प्रदायिक गुंडा करार होकर जेल गया था।

* * *

ऐसे गंजा झीसी खां से गोविन्द की खूब पटती थी। गंजा झीसी खाँ शहर में जहाँ कहीं, जिस सड़क पर गोविन्द को देख लेता; फ़ौरन ताँगे से उतरकर उसको नमस्ते करता और गोविन्द को अपने ताँगे पर बिठाने का भरसक प्रयत्न करता।

एक शाम को गंजा भीसी खाँ, गोविन्द को अपने ताँगे पर बिठाए थार्नहिल रोड से कटरा आ रहा था।

गोविन्द चुप बैठा था और भीसी खाँ आराम से बैठा हुआ, मुँह में पाइप दबाए घोड़े को पुचकार रहा था।

इतने में भीसी खाँ ने पाइप को अपने बाँए हाथ में सँभाला और गोविन्द को जगाकर कहना शुरू किया—

"गोविन्द बाबू!····ओ गोविन्द बाबू!···अपने मकान मालिक बाबू की लड़की नलिनी मजूमदार को आप जानते हैं न?"

गोविन्द चौंककर सावधानी से ताँगे पर बैठ गया और अजीब उत्सुकता से गंजा की बातों में हुँकारी भरनी शुरू की—"हाँ, हाँ!·· कहो क्या बात है?"

गंजा भीसी खाँ ने कहना शुरू किया, "हुज़ूर! मैंने इस छोकरी को बचपन से देखा है, इसके रग-रग से वाक़िफ़ हूँ! ऐसी लड़की मैंने कभी न देखी। यह इस वक्त मुश्किल से बीस साल की है, लेकिन इसने बीस बाबुओं से मुहब्बत की होगी।"

"सच!··भीसी!··यह क्या कह रहे हो?" गोविन्द को आश्चर्य हुआ।

"हाँ, हाँ, हुज़ूर!··आप मेरी बात तो सुनिए! यह मेरा सर धूप में नहीं गंजा हुआ है हुज़ूर! इसने दुनिया देखी है और बेचारा अपने आप घिस गया है!··हाँ तो··मैं कह रहा था न हुज़ूर!··इस छोकरी ने कम से कम बीस यूनिवर्सिटी के बाबुओं से मुहब्बत की होगी और कम से कम, जितना कि मुझे मालूम है इसने तीन बाबुओं की जानें भी ली हैं।

"गंजा!" गोविन्द आश्चर्य से चीख़ पड़ा।

"हाँ, हाँ, हुज़ूर आप सच मानिए!···यह नागन है नागन! यह ख़ुद शिकार करती है,···और शिकार को आपस में लड़ा कर ख़ून करवा देती है···और यह इतनी ख़ुश होती है कि क्या बताऊँ

सरकार ! खून करना, इसकी खुशी है, रोज़ रोज़ शृँगार बदलना, नाचना गाना यूनिवर्सिटी में फज़ूल के लिए पढ़ना इसके किनारे-किनारे फैले हुए जाल हैं जिनमें कितने मासूम, बेगुनाह बाबू लोग शिकार की तरह फँस जाते हैं।''

''गंजा !···तुम बहुत बड़े बत्तमीज़ हो !···ऐसी बातें तुझे नहीं करनी चाहिए !···..'' गोविन्द ने गम्भीरता से कहा, ''नहीं तो इसकी ज़िन्दगी खराब हो जायगी !''

''हुज़ूर !···मैं इन बातों को सबसे थोड़े कहता हूँ, यह तो मैंने सिर्फ़ आप से इस वजह से कह दिया कि जिससे आप इससे सावधान हो जाँय ··कभी इसकी बातों में न आ जायँ ··।''

झीसी का तांगा यूनिवर्सिटी रोड पर पहुँचा और गोविन्द ने उतर कर झीसी को प्यार से अपने सीने में लगा लिया और कहा, ''तुम बहुत शैतान हो, झीसी !''

झीसी खिलखिला कर हँसने लगा और उसका बहता हुआ बेसुरा गीत, ''हवा में उड़ता जाए, मोरा लाल दुपट्टा मलमल का !'' यूनिवर्सिटी रोड पर गूँज उठा।

* * *

दूसरे दिन से यूनिवर्सिटी, जन्माष्टमी के उपलक्ष में दो, तीन और चार सितम्बर—रविवार, सोमवार, और मंगलवार के लिए बंद थी।

दोपहर का समय था। गोविन्द खा-पीकर अपने कमरे में बैठा था और कुछ शून्य सा सोचता हुआ अपनी खिड़की से यूनिवर्सिटी को देख रहा था। उसके दिमाग़ में गंजा की बातें अब तक कभी-कभी तैर जातीं थीं और वह अपनी जगतपर की लड़कियों को सोचकर मुस्करा देता था।

जब गोविन्द इस तरह न जाने क्या-क्या सोचता हुआ परेशान हो गया तब वह अपनी ज़ैनब को खत लिखने बैठ गया।

ज़ैनब !

जिस सड़क पर मेरा कमरा है उसको लोग यूनिवर्सिटी रोड कहते हैं। यह अपनी लम्बाई में कुल ग्यारह सौ चौबिस क़दम लम्बी और सात क़दम चौड़ी है। यह जहाँ से शुरू होती है, उस सिरे पर बिजली का छोटा सा घर है और जहाँ ख़त्म होती है उस सिरे पर ठेले वालों की कुट्टी है। इस तरह से यह सड़क हमारी तवारीख़ के कम से कम पाँच सौ वर्षों की लम्बाई को छूती है—एक ओर पुराने ठेले का युग, ग़ुलामों का युग; जब इन्सान राजा के रथों में, पालकियों में घोड़ों की तरह जोता जाता था और चाल धीमी होते ही उनके पसीने से तर शरीर पर सिपाही के कोड़े लगते थे। दूसरी ओर आज के युग का बिजली का युग, वैज्ञानिकों का युग; जब इन्सान बिजली खाएगा, बिजली से दवा करेगा, बिजली से मुहब्बत करेगा और बिजली से मरेगा भी।

हाँ, तो ज़ैनब ! मैं ऐसी यूनिवर्सिटी रोड पर रहता हूँ, जो इतनी छोटी होते हुए भी पाँच बार टेढ़ी-मेढ़ी हुई है। इस तरह अपने दामन में यूनिवर्सिटी के, उसके कितने खास होस्टल, (जहाँ बड़े-बड़े धनी लड़के, जो कलक्टर और डिप्टी-कलक्टर, नायब तहसीलदार वग़ैरह बनते हैं, रहते हैं) जैसे हालैण्ड-हाल, सर सुन्दर लाल, म्योर होस्टेल, वग़ैरह को अपने में खींचे हुए है।

इस सड़क पर सिर्फ़ तीन तरह की दूकाने हैं—एक पढ़ने की दुकान दूसरी खाने की दूकान, तीसरी ख़ुशबू और चमचमाहट की दूकान। इस तरह से इस सड़क पर तीन तरह की ख़ुशबू आती हैं—किताबों से धरती की ख़ुशबू आती है; हरापन लिए कुछ सोंधी-सोंधी। खाने-पीने की दूकानों (रेस्ट्रां) से राजा की कोट की तरह ख़ुशबू आती है—जैसे हरदम माँस भूना जा रहा है, हरदम कुछ तेज़ चीज़ के छौंकने और बघारने की ख़ुशबू। तीसरी ख़ुशबू पाउडर, क्रीम और इविनिंग इन पेरिस, वग़ैरह की आती है। प्यारी ज़ैनब !··इन चीजों को मुझे तुम्हें

समझाने की ज़रूरत नहीं है; यह सब अँग्रेजों की यहाँ के राजा, महाराजा, अमीर साहूकारों को देन है। इनकी खुशबू तुम्हारे सीने की खशबू से हज़ारों कोस पीछे है‥इस खुशबू से तुम्हारा दम घुटने लगेगा !

दूसरी खुशबू भी इतनी भयानक है कि यूनिवर्सिटी रोड पर चलने वाले ग़रीब लड़कों की नाक में पड़कर उनकी जीभों पर पानी बन जाती है, आँखों में आँसू बनती है और उनके दिल और दिमाग़ में चोट करती है कि तुम कितने ग़रीब हो ! तूने इन महकती हुई चीज़ों को कब खायी है ?···तेरा इन रेस्ट्राँ के किस मैनेजर के पास हिसाब है ?···तू तो देहाती ही रह जायगा, न तुझे चाय पीने आएगी, न किसी को आर्डर देने आएगा, न तुझे चम्मच, काँटे और छुरे पकड़ने आएँगे।

ज़ैनब ! पहली खुशबू में ताज़गी है लेकिन उसमें वह ज़िन्दगी और आँखें नहीं जो हमें जगतपुर की समतल घाटियों में चलने से मिलती हैं, जो हमें वहाँ के इन्सान के दिलों की वादियों में चलने से मिलती है।

ज़ैनब ! खत लम्बा होता जा रहा है, माफ़ करना !··इस सड़क पर तीन तरह के इन्सान भी चलते हैं। दो तरह की—लड़कियाँ और एक तरह के लड़के।

पहली तरह की वे लड़कियाँ हैं, जो कार पर, ताँगे पर, साइकिल पर, रिक्से पर, ठेले पर, पैदल चलती हुई यह सोचती हैं कि उनके सामने कितने नौजवान सर झुकाए हुए ज़मीन पर पड़े हैं और वे उनकी पीठ पर चलती जा रहीं हैं और अपने पीछे इतनी खुशबू छोड़ती हैं कि पीछे कितने नौजवान मुँह बाए दौड़े चले आ रहे हैं।

ये लड़कियाँ तुम्हें बिल्कुल नहीं पसंद आएँगी ज़ैनब !··इन लड़कियों में तहज़ीब, सभ्यता; बोलने, उठने, व्यवहार के अलावा और

कुछ नहीं है। इनका-जीवन सिर्फ़ इन्हीं के जीवन तक सीमित है। इनकी बनावटी खुशबू; जो मशीनों से तैयार होती है, मसालों को मिला-जुला कर तैयार की जाती है, इन पर लदी होती है। और इस मशीन की खुशबू में दम घुटाने वाले तत्व अधिक होते हैं। इनमें अन्तर्द्वन्द के कीड़े उड़ते रहते हैं। इसलिए इस खुशबू से तुम्हारा मासूम सर चक्कर करने लगेगा, ज़ैनब।

दूसरी तरह की लड़कियाँ वे हैं, जिन्हें दुनिया भंगी कहती है, जमादारिनी कह के मुँह पर घृणा से रूमाल रखती है। ये लड़कियाँ सुबह आठ बजे से चार बजे शाम तक बराबर अपनी कमर पर दुनिया की गन्दगी का पच्चीस, तीस सेर बोझ लिए हुए, झुकी हुई, पेशानी और कँपते हुए पैर से पसीने को बहाती हुई बूंदों से रंगीन यूनिवर्सिटी रोड पर चलती हैं, जिन्हें कभी कोई ताँगे वाला गाली देता है, कभी कोई रिक्से वाला छींटे कसता है, कभी कोई राहगीर घृणा से नाक पर रूमाल रखकर भुनभुना उठता है।

इन सब लड़कियों की आँखों में जगतपुरी आँसू हैं, ज़ैनब ! ये लड़कियाँ तुम्हें बहुत पसन्द आएँगीं। ये तुमसे मिलते ही रो-रोकर कितनी फ़रियाद सुनाएँगी—कि मेरा शौहर शराबी है, मुझे बहुत पीटता है, कि मेरे खसम ने तीसरी शादी की है, कि मेरे होने वाले ने मुझे जवाब दे दिया है, कि रात भर मुझे नींद नहीं आती, कि मैं भंगी का काम नहीं करना चाहती—लेकिन पापी पेट नहीं मानता, कि म्युनिस्पैल्टी के ज़मादार ने कल मेरी ज़बरदस्ती आबरू ले ली, कि मैं अकेले पचास घर की सफ़ाई करती हूँ पर मुझे सिर्फ चालिस रुपए मिलते हैं, कि दस घरों ने मेरी तनख्वाह रोक ली है।

ज़ैनब ! और एक तरह के लड़के इस सड़क पर वे हैं, जो हमेशा किसी न किसी चीज़ के भूखे रहते हैं ! कोई लड़कियों के पीछे भूखा दौड़ रहा है, कोई सिनेमा और नए सूटों के पीछे दौड़ रहा है। कोई अपनी डिग्री और नौकरी के लिए भूखा तड़प रहा है, परवाह नहीं; चाहे

उनकी आँख धँसी जाय, चाहे खाँसी बढ़ती जाय, चाहे भूख मिटती जाय। कोई अपने आदर्श पवित्र आरज़ू के लिए, झूठे ऊँचे-ऊँचे भावनाओं के पीछे अपने को घिस रहा है--मैं भी इन्हीं लोगों में से एक हूँ। तुम्हें इन लड़कों में शायद बहुत कम लड़का उस तरह मिले जो मस्ती से रोनी में, अपनी भैंस की पीठ पर बैठा हुआ बाँसुरी बजा रहा हो; जिसमें जो कुछ हो वह भीतरी हो बाहरी कुछ नहीं।

ज़ैनब संक्षेप में मेरी यूनिवर्सिटी रोड की यह सूरत है, जिसपर मैं एक बहुत बड़े मकान के किनारे वाले कमरे में रहता हूँ। यहाँ एक गंजा भीसीखाँ, ताँगे वाला मेरा सच्चा दोस्त है और इस मकान में नलिनी मजूमदार, जो इन्द्रा बहन के साथ एम० ए० में पढ़ती है; मेरे लिए खुली हुई किताब है; जिसके बारे में तू सुनते ही बेहोश हो जायगी।

* * *

तीसरे दिन, जब गोविन्द की इन्द्र बहन से भेंट हुई; तब उसने यह खत सुनाकर जगपुर ज़ैनब के पास भेजा।

दूसरी शाम को चार बजे गोविन्द यूनिवर्सिटी रोड पर एक रेस्ट्रॉ में अकेले बैठा चाय पी रहा था।

सहसा उसने देखा कि राजकुमार विजय एक कार लिए हुए यूनिवर्सिटी की ओर भागता जा रहा है। गोविन्द स्तंभित हो गया और उसी तरह चाय छोड़ करके वह रेस्ट्रॉ के बाहर खड़ा हो गया और सोचने लगा कि उसे विजय का भ्रम तो नहीं हो गया है? विजय यहाँ कब, कैसे आया है?

गोविन्द वहाँ खड़े-खड़े सोचता रहा और उसका मन नाना प्रकार की शंकाओं को लिए हुए बहुत दूर-दूर भाग रहा था। सहसा उसने फिर देखा कि वही कार फिर यूनिवर्सिटी की ओर से इधर ही चली आ-रही है। गोविन्द फुटपाथ पर चला आया और वह—दौड़ती हुई कार सहसा गोविन्द के सामने रुक गई।

गोविन्द ने देखा, पिछली सीट पर तारामती किसी नवयुवक के साथ बैठी हैं और विजय ड्राइव कर रहा था।

गोविन्द जब देख कर आगे बढ़ने लगा था, उसी समय विजय की आवाज़ आई, "गोविन्द !...तुमसे इनका कुछ ज़रूरी काम है !"

कार से तीनों बाहर निकल आए थे। गोविन्द उन लोगों के सामने खड़ा था। तारामती डरी हुई मृगी की तरह गोविन्द को देखती हुई सर झुकाए खड़ी थी।

विजय ने गोविन्द का युवक से परिचय कराते हुए कहा, "आप ही हैं मिस्टर गोविन्द !"

"और।आपकी तारीफ़ ?" गोविन्द ने युवक से हाथ मिलाते हुए पूछा।

विजय ने परिचय दिया, "आप हैं, तिलकहरा के राजकुमार, केशरी उदयसिंह !..और मुझे तो शायद आप जानते ही होंगे !"

"जी हाँ, आपको तो खूब जानता हूँ।" गोविन्द ने कहा, और वह फिर उदयसिंह से श्रद्धा से हाथ मिलाते हुए झूम उठा, "बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर, चलिए चाय पीजिए !"

उदयसिंह ने कहा, "नहीं, नही,..माफ़ कीजिएगा,..हम लोग बार्नेट में टिके हैं..वहीं चाय पी जायगी...आप भी चलिए वहीं.. हम लोग आप ही को लेने के लिए यूनिवर्सिटी रोड पर चक्कर लगा रहे थे, बैठिए कार में, चलिए !"

गोविन्द चुप था उसके दिमाग़ में एक छोटी सी प्रश्न की रेखा खिंची—क्या मुझे इन लोगों के साथ जाना चाहिए ?

"आइए मिस्टर गोविन्द ! इसमें सोचने की क्या बात है ?"

"हाँ, हाँ, आइए बैठिए।"

सब ने विवश किया और गोविन्द निश्चेष्ट कार में बैठ गया।

*　　*　　*

बार्नेट पहुँचकर, गोविन्द ने अपनी पूरी दृष्टि से तारामती को देखा और वह सहम गया। तारा का मुँह पीला पड़ता जा रहा था।

भीतर एक शानदार कमरे में पहुँचकर गोविन्द ने देखा, चाय लगी हुई है और बैरा खड़ा है।

सब चाय पर बैठ गए। कमरे में अजीब ख़ूबसूरती से मरकरी लाइट फैल रही थी।

चाय पी लेने के बाद विजय ने तारामती से कहा, "जाना चाहो, तो फ़र्स्ट शो उदयसिंह के साथ जाकर देख आवो।"

तारामती पर जैसे कुछ असर ही न पड़ा था। वह गंभीरता से गोविन्द को देख रही थी और विजय की कितनी बातों को अनसुनी करती हुई माना मूक होकर जवाब देती जा रही थी कि मैं यहीं रहूँगी! गोविन्द के साथ रहूँगी, कहीं न जाऊँगी!

केशरी उदयसिंह ने चुरुट दबाते हुए गंभीरता से पूछा, "मिस्टर गोविन्द! मुझे आशा है कि आप सत्य बोलेंगे और मेरी शंकाओं तथा प्रश्नों के सही-सही उत्तर देंगे।"

"आपकी आशा ठीक है!" गोविन्द ने गंभीरता से उत्तर दिया।

"आप जगतपुर में सामाजिक रूप से अजात हैं न?"

"जी हाँ, सामाजिक ठीकेदारों की दृष्टि में!"

"ठीक,..आप ज़ैनब के घर खाते-पीते हैं?"

"जी, खूब खाता-पीता हूँ," गोविन्द ने गंभीरता से कहा, "लेकिन आप ऐसे सवाल क्यों कर रहे हैं?" केशरी उदयसिंह जी ने मुस्कराते हुए कहा, "क्यों मैं इन प्रश्नों के पूछने का अधिकारी नहीं हूँ..अगर आप को बुरा लगा हो तो...मुझे माफ़ कीजिएगा!"

"नहीं, नहीं, पूछिए?... लेकिन जो असली बात पूछनी हो, पहले वही पूछिए।"

केशरी सिंह ने विजय की ओर देखकर मुस्करा दिया और गोविन्द को लगा जैसे उसे किसी ने चाँटा मार दिया हो।

केशरीसिंह ने फिर कहना शुरू किया, "जी, मैं वही पूछ रहा हूँ, आप घबड़ाइए नहीं,...तो आप मुसलमान हैं!..और महारानी इन्द्रा के साथ आपका कौन सा रिश्ता है?"

"क्या मतलब?..महारानी का क्या मतलब?" गोविन्द की बाहें फड़क रहीं थीं और उसके ओंठों से शोले फूट रहे थे!

"आवेश में न आइए! जरा क़ायदे से रहिए!" केशरीसिंह ने क्रोध में कहा, "इन्द्रा से आपका कौन सा रिश्ता है?"

"मतलब?"

"मतलब नहीं, मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ कि बदमाश इन्द्रा तुम्हारी..प्रेमि...।"

इतने में ही गोविन्द ने अंधा होकर उसी क्षण केशरी उदयसिंह के मुँह पर इतने ज़ोर का चाँटा मारा कि कमरा चीख़ उठा, और गोविन्द तेज़ी में बाहर निकल आया।

गोविन्द तेज़ी से महात्मा गाँधी मार्ग पर चल रहा था, सहसा उसके कानों में कहीं से गंजा भीसी खाँ की आवाज़ आई। गोविन्द के पुकारते ही भीड़ को पार करके गंजा भीसी तांगा लिए सामने आ गया और गोविन्द को लेकर यूनिवर्सिटी रोड की ओर बढ़ गया।

गोविन्द उसी तेज़ी में वीमेन होस्टल आया और इन्द्रा बहन के सामने क्षमा माँगते हुए रोने लगा—"इन्द्रा बहन माफ़ करना!... आज मैंने एक बहुत बड़ा अपराध किया है।"

"मुझे मालूम है, तूने जो अपराध किया होगा!"

"इन्द्रा बहन!"

"हाँ, गोविन्द! तुम्हारे दो घंटे के पहले मैंने वही काम किया है..लेकिन मैं उसे..अपराध नहीं समझती!..मैंने भी उसी बात पर राजकुमार विजय को भी बहुत ज़ोर का चाँटा मारा है!"

"सच इन्द्रा बहन !" गोविन्द हैरान था। और उसने अजीब पीड़ा से कहा, "लेकिन बहन, मैंने तो केशरी उदय को मारा है !.."

"ठीक किया, ईश्वर को जो मंजूर होता है, वही होता है।"

"तो तुम्हारे पास भी ये लोग आए थे ?"

"हाँ, दो बार आए थे और दो बहुत गहरी, असीम पीड़ा को लिए हुए लड़ाइयाँ लड़ी गई हैं !..खैर,.."

दोनों चुप थे और दोनों के सामने दुनिया इस तरह बदली हुई नजर आ रही थी कि मानो सृष्टि में प्रलय आने वाला है। दोनों के किनारे अँधेरा इस तरह बढ़ता आ रहा था, मानो काली रात घिर आई हो और सितारे कहीं खो गए हों।

गोविन्द ने एक नवीन उत्साह से इन्द्रा के दोनों हाथों को मज़बूती से पकड़ते हुए कहा; "बहन !..मेरी एक प्रार्थना है, हम लोग एक बार और उन लोगो से मिल लें !"

"तो..बार्नेट चला जाय ?"

"हाँ, चाहे जहाँ वे मिलें...चलो बहन !"

गोविन्द इन्द्रा बहन को रिक्से पर बिठाए यूनिवर्सिटी रोड से बढ़ रहा था, इतने में दूर से उसने राजकुमार विजय की फिर वही कार देखी।

गोविन्द यूनिवर्सिटी रोड पर उतर कर, कार के सामने खड़ा हो गया और कार रुक गई।

कार पर सिर्फ़ विजय था और गोविन्द की आँखें केशरी उदयसिंह को ढूँढ़ रहीं थीं !

"चलिए ! मैं आपही लोगों के पास आ रहा था," विजय ने फुटपाथ पर कार बंद की और गोविन्द से कहने लगा, "चलिए !..हम आपके कमरे में चल रहे हैं !"

गोविन्द, विजय और इन्द्रा ब यूनिवर्सिटी रोड के उस कमरे में बैठे थे जहाँ गोविन्द अक्सर बैठ कर इन्हीं शंकाओं पर बहुत दूर-दूर तक सोचा करता था ।

विजय ने गंभीरता से कहना शुरू किया, "देखिए ! आज मुझे तो इन्द्रा ने मारा है और केशरी का गोविन्द ने मारा है, परिस्थिति ख़राब से बदतर हो गई है··लेकिन मैं अब भी परिस्थिति को सुलझा सकता हूँ !"

"कैसी परिस्थिति ?···इसे ज़रा एक बार और स्पष्ट कर दीजिए ! इन्द्रा बहन ने कहा ।

"ओह ! अभी तक आपको वस्तुस्थिति··स्पष्ट नहीं !" विजय ने अजीब गर्व की मुस्कान से कहा, "परिस्थिति यह है कि तिलकहरा के राजकुमार केशरी उदयसिंह ने, जिनके साथ आपकी मँगनी हुई थी, कुछ आधारों पर वह संबंध तोड़ लिया है··और···और··।"

"बस ! बस ! ठीक है !···" गोविन्द ने उफनकर कहा,

"नीच !··तुझे अगर दुश्मनी का बदला ही लेना था तो और भी बहुत तरीक़े थे !··बेगुनाह बहन ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?"

"इसे आप लोग जानते हैं !··गोविन्द ! ज़रा आवेश में आकर बातें न करो !··तुम दोनों के कल्याण की बातें करने आया हूँ !"

"सुनाइए !"

"सुनिए ! परिस्थितियों को मैं अब भी सुलझा सकता हूँ··और शर्त भी बहुत छोटी है !"

"कहिए ! कहिए !"

"सिर्फ़ ज़ैनब को मेरे हवाले कर दो !··बस, मैं अभी इन्द्रा का वही सम्बन्ध केशरी उदय से जोड़ सकता हूँ ।"

गोविन्द चुप हो गया । उसकी आँखों में एक साथ उमड़ता हुआ

समुद्र और तड़पते हुए शोले आ गए थे। उसने क्षणभर अपलक विजय को देखा फिर उसकी आँखें इन्द्रा पर टिक गईं।

"बोलो बहन! क्या आज्ञा देती हो?··मैं किसी भी मूल्य पर तुम पर कालिमा की छाप नहीं लगने देना चाहता!"

इन्द्रा चुप थी और उनकी आँखें क्षणभर के लिए विजय पर टिक कर गोविन्द पर टिक गईं। गोविन्द उनके सामने बेक़रार था।

"गोविन्द! पागल मत बनो!" इन्द्रा ने उफन कर कहा, "अगर हम सत्य हैं तो ऐसे-ऐसे राजकुमार पैरों पर लोटते चलेंगे! ··और गोविन्द सुनो! विजय को अपने कमरे से निकाल कर बन्द कर लो इस कमरे को··इसकी बदबू से मेरा दम घुट रहा है!"

सब लोग खड़े थे। विजय क्रोध से तिलमिला रहा था, और कमरे से बाहर निकलते-निकलते वह बक रहा था—"और मेरे दुश्मनों का साथ दो!··और जगतपुर को अन्न और बीज दो! और मेरे दुश्मनों का साथ दो!··और मेरी भी देखते चलो!··मैं तुम लोगों का क्या करता हूँ!"

विजय अपनी कार के पास पहुँच गया था, गोविन्द ने गली से दौड़कर विजय को पुकारा, "विजय!··मेरी एक प्रार्थना मानो!"

गोविन्द विजय के पास पहुँच गया। इन्द्रा ने दौड़कर गोविन्द को पकड़ लिया, "क्या कहने जा रहे हो, गोविन्द?" गोविन्द की आँखों में आँसू थे, विजय की आँखों में शोले थे।

गोविन्द ने असीम दीनता से विजय को पुकार कर कहा, "विजय! ···रहम खाओ!"

"नहीं,··उस शर्त को फिर एक बार सोच लो!··जो तुम्हें प्यारा हो वही करो!" विजय ने कहा!

"नहीं मुझपर दया करो विजय!··बेक़सूर इन्द्रा की लाज रक्खो!"

इन्द्रा ने बढ़कर गोविन्द का मुँह दबा दिया और उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ रखकर सावधान किया—"गोविन्द !··भूल गए अपने को ?··इन्सान-इन्सान की दया की अपेक्षा नहीं करता, फिर तो तुम आज एक जानवर से, वहशी से दया की भीख माँग रहे हो !"

"बहन !" गोविन्द चीख़ पड़ा ।

"अपनी मर्यादा को न भूलो गोविन्द ! वह तो जीवन है···और मनुष्य के आगे जानवर से बदतरों की क्या हस्ती ?"

विजय अपनी कार में बैठ गया । गोविन्द फिर पागलों की तरह विजय के सामने खड़ा हो गया ।

इन्द्रा ने फिर रोककर पूछा, "क्या है गोविन्द ?"

"हम लोग अकेले में एक बार तिलकहरा के राजकुमार से मिल लें ।"

"तुम अजीब पागल हो गोविन्द," इन्द्रा ने गंभीरता से कहा, "मेरी बहुत अच्छी क़िस्मत थी गोविन्द,··ऐसे लोगों से ईश्वर ने सम्बन्ध तो नहीं जोड़ा था, नहीं तो मैं जीवन भर मरकर तड़पती रहती और तुम हमेशा रोते हुए मुझे देखते रहते ।··बहुत अच्छा हुआ गोविन्द ।··ख़ुश हो जाओ··भूल जाओ सब बातों को, फिर तो अब भी तुम्हारी लड़ाई का आख़िरी मैदान बाक़ी ही है ।"

विजय अपनी कार को लिए हुए बार्नेट की ओर बढ़ गया था । गोविन्द सूनी-सूनी आँखों से अधंकार में न जाने—क्या देख रहा था और इन्द्रा बहन समझाती जा रही थी, "तुम्हारी नयी खेती सफल हो··तुम··कुशल से रहो गोविन्द ।"

गोविन्द जब इन्द्रा बहन को होस्टल तक पहुँचा कर अपने कमरे में लौटा, उस समय यूनिवर्सिटी क्लाक आठ छोटी-छोटी घंटियों के बजने के बाद झनझना कर चुप हो गई थी । गोविन्द ने अपनी घड़ी देखी साढ़े बारह बज रहे थे ।

गोविन्द की आँखें जल रहीं थीं और दोनों कानों से आग फूट रही थी। वह अपनी दोनों हथेलियों से, कानों को दबाए हुए बार्नेट की बिल्डिंग को देख रहा था। और अपनी भीतरी आँखों से देख रहा था कि इन्द्रा बहन चुपके-चुपके कहीं बाहर रो रही है और···और·· ।

सहसा गोविन्द ने झटके से अपना कमरा बंद किया और यूनिवर्सिटी रोड पर चला आया उसी समय ऊपर से आवाज़ आई, "गोविन्द ! ··गोविन्द !" गोविन्द ने आवाज़ ज़रूर सुनी, पर उसे पता नहीं चला कि आवाज़ कहाँ से आई। वह इधर-उधर देखता हुआ अपनी जगह पर खड़ा था, अचानक उसने देखा, नीना उसके सामने खड़ी है ।

"कहाँ जा रहे हो ?··क्यों आजकल इतने परेशान हो ?" नीना ने कहा। गोविन्द बिना कुछ उत्तर दिए हुए यूनिवर्सिटी रोड के आखिरी चौराहे (मनमोहन पार्क) की ओर बढ़ने लगा ।

गोविन्द बाइस मिनट में बार्नेट के सामने पहुँच गया और पोर्टिको से देखा—दोनों राजकुमार शराब पी रहे थे ।

गोविन्द अपनी मनःस्थिति में पागल था, वह निडर हो उनके सामने जाकर खड़ा हो गया और चीखकर कहा, "आज मैं भी शाराब पीऊँगा !· ·मुझे भी शराब पिलाओ !"

गोविन्द की यह मनोदशा देखकर दोनों आश्चर्य से उसे देखने लगे और उसी समय बगल के कमरे से तारामती निकल कर गोविन्द के पास खड़ी होगई ।

"तो शराब पीने आए हो ?" केशरी सिंह ने कहा ।

गोविन्द चुप था ।

"तो आओ ख़ुशी से पियो !" विजय ने मुस्कराकर कहा ।

गोविन्द उसी तरह खड़ा रहकर चुप था ।

"तो आप विजय के सन्धि-प्रस्ताव को मानते हैं ?" केशरी ने कहा ।

"अगर मैं मान लेता हूँ तो ?" गोविन्द केशरी सिंह के सामने खड़ा हो गया।

"तब मैं· ·शायद तुम्हारी इन्द्रा से शादी कर लूँ।"

"तब शायद मेरी इन्द्रा से शादी !" गोविन्द ने दाँत पीसते हुए कहा,

"नहीं ! तुम्हारी इन्द्रा बदमाश है बदचलन है !" विजय ने डाँटते हुए कहा।

गोविन्द ने उसी क्षण घूम कर विजय के गले को निर्ममता से पकड़ कर दबोचते हुए कहा, "फिर से कहने की कोशिश करो !"

विजय की आँखें फूटने वाली थीं, उसी क्षण गोविन्द को लगा कि उसके सिर पर किसी ने चोट की है। वह जैसे ही केशरी सिंह की ओर मुड़ा, तारा चीखकर गोविन्द से लिपट गई और केशरी सिंह की तनी हुई पिस्टल कँप कर रह गई।

गोविन्द ने चीखकर कहा, "तारा !· ·मुझे छोड़ दो !· ·मैं आज इसकी पिस्टल की गोलियाँ देखूँगा· ·।"

"हाँ, मुझसे सुनो ! मैं कहता हूँ, मैं जानता हूँ तुम्हारी इन्द्रा बदमाश है !" केशरी सिंह ने तड़प कर कहा।

और गोविन्द का सर चक्कर कर गया।

और वह गिड़गिड़ा कर तारा के हाथों में बेहोश हो गया।

विजय ने यह खबर फैलने न दी। उसने धीरे से बाहरी दरवाज़े बन्द कर लिए और धीरे से आवेश में कहा, "जी कहता है कि आज इसका यहीं खून कर दिया जाय· ·।"

"यह नहीं हो सकेगा !" तारा ने तड़पकर कहा, "मैं अभी शोर मचा रही हूँ।"

विजय हाथ जोड़े, और आँखो में क्रोध की ज्वाला लिए हुए गोविन्द और तारा को देख रहा था। तारा करुणा से गोविन्द को देख रही थी।

कुछ क्षणों के बाद जैसे ही गोविन्द को होश आया; उसने खड़ा होकर मज़बूती से तारा के दोनों कंधों को हिलाते हुए कहा, "तू इससे शादी न करना ! पहाड़पुर की रानी कभी न बनना !!··"

गोविन्द पीछे मुड़ा और सीधे दरवाज़े की ओर बढ़ने लगा। तारा पागलों की तरह उसके पैरों से लिपट गई थी। विजय उसे बुरी तरह पीछे झटका दे रहा था।

तारा करुणा से कह रही थी, "गोविन्द मुझे बचा !···आज की काली रात से मुझे बचा··मेरा भाई मेरा दुश्मन है !··मेरा भाई मेरा दुश्मन··।"

गोविन्द के पैर पत्थर के हो गए। वह दरवाज़े के पास पहुँच कर चुप खड़ा हो गया और धीरे से तारा को स्नेह से उठा लिया।

तारा की आँखें दर्द से कराह रहीं थीं और उसका डर से काँपता हुआ दिल उसके सूखे हुए ओंठों पर स्पष्ट हो आया था कि आज उसकी रात बार्नेट के इस कमरे में काली है, कि आज उसका भाई अपनी नीति के लिए अपनी बहन की मासूमियत को गन्दे पहाड़पुर वाले के हाथ बेंचने जा रहा है। कि गोविन्द मेरी रक्षा कर··।

गोविन्द अपने दामन में तारा को सम्हाले हुए खड़ा था। विजय और केशरी ने मैनेजर से पुलिस कोतवाली में फोन कराई और अजीब निर्ममता से तारा को गोविन्द के दामन से खींच लिया।

गोविन्द ने मैनेजर से कहा, "मुझे भी इस रात को रहने के लिए अपने होटल में एक रूम दो !"

विजय और केशरी ने मैनेजर को आँख मारी और मैनेजर ने कहा, "नो वैकेन्सी !"

"मैं तुम्हारी दुकान से आज रात भर शराब पीना चाहता हूँ, पिलाओगे ?"

गोविन्द यह कह कर जल्दी से तारा के पास खड़ा हो गया।

उसी समय पोर्टिको में एक गाड़ी रुकी और पुलिस की सीटी सुनाई दी।

तारा ने धीरे से गोविन्द के कानों में कहा, "गोविन्द !··मेरे लिए लड़ाई न करो··जाओ··यूनिवर्सिटी रोड चले जाओ··देखा जायगा··!" तारा धीरे-धीरे बगल के कमरे में जाने लगी, गोविन्द ने गंभीरता से पुकारा, "तारा !"

"राजमहलों में रहने वालों की ज़िन्दगी का यही आख़िरी रास्ता है,···जाओ तुम कुशल से रहो··जाओ··" भीतर से आवाज़ आई।

गोविन्द जल्दी से कमरे के बाहर हो गया। भीतर से कमरा जल्दी से बंद हो गया, और पोर्टिको में खड़ा होकर गोविन्द ने सुना बंद कमरे से सम्मिलित अट्टहास उठ रहा है।

गोविन्द के सामने मैनेजर और दारोग़ा खड़े थे। गोविन्द चुप था और उसकी आँखें कह रहीं थीं कि—कहिए··आप लोग मुझपर कौन दफ़ा लगाना चाहते हैं ?"

मैनेजर को हँसी आ गई और उसने अपनी हँसी छिपाते हुए मुस्करा कर गोविन्द पर एक कटु सत्य से व्यंग्य किया, "इस तरह से संसार के पीछे नहीं मरा जाता !··आप अपनी देखिए !··"

और फिर सब चुप हो गए। बन्द कमरे से हँसी उठ रही थी। गोविन्द न जाने क्या देखता हुआ चुप था।

"अब आप जल्दी से अपने कमरे में जाइए ! रात काफ़ी बीत गई है !" मैनेजर ने कहा और उसने धीरे से दारोग़ा की पैंट में न जाने क्या रख दिया। गोविन्द ने कुछ नहीं देखा वह आसमान में देख रहा था कि तारामती आसमान के एक सितारे की तरह टूट रही है और उसके नीचे इन्द्रा बहन ख़ामोश आसमान की ओर देखती हुई रो रही है।

पुलिस की गाड़ी ने गोविन्द को यूनिवर्सिटी रोड पर छोड़ दिया और वह अपने कमरे को बन्द करके सो जाने की चेष्टा करने लगा।

उसकी आँखें न जाने कब लगीं, लेकिन ठीक चार बजे वह अपनी नींद में चौंककर उठ पड़ा और उसकी साँसें तेज़ चलने लगीं। उसके कानों में अबतक बार्नेट कमरे से तारा की करुणा भरी, मद्धिम-मद्धिम चीख़ आ रही थी। वह अपना सर थामे सामने देख रहा था कि विजय शराब पिए अपने बिस्तर पर बेख़बर सो रहा है। तारा छटपटा कर चुप थी और केशरी धीरे-धीरे मुस्करा रहा था।

लेकिन गोविन्द जब तक यूनिवर्सिटी रोड पर दौड़कर आया उसके कानों में फिर आवाज आने लगी—मेरी शादी नहीं होगी।

मैं तुझसे शादी नहीं करूँगी।

अपने गोविन्द से कह तेरा गला घुटवा दूँगी।

गोविन्द थक सा गया। उसने पीछे नज़र घुमाई। गंजा झीसी खां अपने खुले हुए ताँगे पर सो रहा था और तांगे के किनारे बीस-पच्चीस कुत्ते सो रहे थे। उसका सिकन्दर घोड़ा मुँह लटकाए खड़े-खड़े सो रहा था।

गोविन्द ने गंजा को जगाया और धीरे से पूछा, "गंजा! तूने कितने ख़ून किए हैं?"

"हुज़ूर!...आज आपको नींद नहीं आ रही है, क्या?...जाइए हुज़ूर!... सो जाइए... मैं कल बताऊँगा!"

गंजा सामने खड़ा था। गोविन्द उसके ताँगे के सहारे तिछा खड़ा था।

गंजा! मेरी आँखों में नींद नहीं है!" गोविन्द ने धीरे से कहा।

"किसी को आप बहुत याद करते होंगे, हुज़ूर!"

हाँ किसी को याद तो बहुत करता हूँ, लेकिन उस याद में तो... बहुत नींद है... मैं उसके याद करते ही मानो कमल की मासूम पंखुड़ियों की गोद में सो जाता हूँ... लेकिन गंजा! मुझे आज नींद नहीं आ रही है!"

"तो हुज़ूर !··क्या आपको किसी भँडुए ने तकलीफ़ पहुँचायी है !" गंजा ताव में आकर कह रहा था, "मुझे बताइए हुज़ूर !···मैं साले को खंजर मार दूँ !···।"

"अच्छा,··तुम सो जाओ, गंजा उस्ताद !···मैं चला, अब मुझे नींद आ जाएगी !"

गोविन्द धीरे-धीरे अपने कमरे में चला आया और सुबह होने की प्रतीक्षा करने लगा।

वह बार-बार तारा को सोच रहा था और इधर मुहल्ले में एक बिधवा अहीरिन की रोने की धीरे-धीरे आवाज़ आ रही थी। वह इन्द्रा बहन को सोचता, और इधर रात के पिछले पहर के सन्नाटे में यूनिवर्सिटी क्लाक टावर की मीठी-मीठी घंटियाँ बजने लगतीं; मानो वीणा के तारों पर आसमान के आँसू टपक रहे हैं, और यह उससे आवाज़ निकल रही है। और जैसे ही गोविन्द के ध्यान में नलिनी की सूरत आई—गंजा भीसी खाँ, इधर अपने ताँगे में गाने लगा—"आना मेरी जान !···आना मेरी जान संडे के संडे !"

२०

दिन की डाक से, गोविन्द को जगतपुर से सात खत मिले। एक वज़नी ख़त ज़ैनब का, एक पिता जी का, एक कौशिल्या का, एक अहिल्या का, एक किशन का, एक बेग़मा का, एक लाल साहब का।

ज़ैनब के ख़त की पहली लाइन थी--गोविन्द ख़त पढ़ते ही, जगतपुर के लिए रवाना हो जाओ। यहाँ रोनी में बहुत अधिक बाढ़ आ गई है। और इधर रोज़ाना मूसलाधार पानी बरस रहा है। जल्दी से चल देना, तुम्हारी नयी खेती तुम्हें बुला रही है। मेरे आँसू तुम्हें बुला रहे हैं। तुम्हारा जगतपुर तुम्हें याद करके बुला रहा है। इधर तुम्हारी नयी खेती अपनी पूरी तैयारी पर है, धरती अन्न के दबाव से लाल हो गई है और आसमान को अपने पवित्र आकर्षण से बहुत नज़दीक खींच रही है।

पिता जी के ख़त में जगतपुर लौटने की बात थी, किशन ने बहुत डर के पत्र लिखा था। अहिल्या और कौशिल्या ने अपने बीस पँक्तियों के खत में पच्चीस बार लिखा था, "गोविन्द! खत देखते ही जगतपुर के लिए रवाना हो जाना, मेरे बाबा का स्वर्गवास हो गया। तुम्हें बहुत याद कर रहे थे। बार-बार पूछते थे कि ज़मींदारी ख़त्म हो गई? मुझे मेरी ज़मीन में गाड़ना।" बेग़मा ने भी वही बातें लिखीं थीं और उसने यह भी लिखा था कि "तारामती इलाहाबाद से लौट आईं। न जाने तुम्हें क्यों बहुत याद करती हैं, और मैंने देखा है, बार-बार उनकी आँखों में आँसू टपकते रहते हैं। इधर राजमहल में रोज़ रायगढ़ की रंडियाँ नाचने आती हैं। बढ़ती हुई रोनी को देखकर तुम्हारे सब दुश्मन बहुत ख़ुश हैं और रोज़ टीले पर पूजा करते हैं।"

लाल साहब ने अपने आँसुओं से भींगे हुए खत में उन सब बातों को लिखा था जो पहले जगतपुर में घटी थीं; फिर इलाहाबाद में घटी, इन्द्रा बेटी को समझाने के लिए लिखा था, उसे अपने साथ ही जगतपुर लौटा लाने के लिए लिखा था।

इस तरह से खतों में जहाँ एक ओर तूफ़ान था, वहाँ दूसरी ओर यह भी था कि ज्वार, बाजरे, साँवा, काकुन वगैरह की फ़सल अपनी उमी नई सफलता से कट चुकी है। सब के घर में नए अन्न की नई खुशबू फैल रही है लेकिन तुम्हारे दुश्मन अब भी आँखें दिखाकर कह रहे हैं कि देवता का कोप इस मामूली सी फ़सल पर क्या होता? यह तो किसी तरह कुछ दिन और जीने के लिए देवताओं ने अपनी ओर से दान दे दिया है। उनका कोप, धरती का क्रोध, ग्राम देवता, खंडहर के देवता का कोप धान की फ़सल पर देखना—घबड़ाते क्यों हो...? धरती के कोप से, देवताओं के श्राप से ही तो रोनी इतनी तेज़ी से बढ़ रही है।

गोविन्द ने सब खतों को पढ़ा, सब की पंक्तियों को पढ़ा, फिर शीशे के सामने खड़ा होकर अपने को देखने लगा। लगा कि वह अपने को शीशे में नहीं देख रहा है और शीशे में खतों के पन्ने उड़ रहे हैं। जगतपुर की धान की खेती लहरा रही है।

गोविन्द से कमरे में न रहा गया वह उसी क्षण इन्द्रा बहन से मिलकर सब खतों को उनके सामने रख दिया।

चुप होकर इन्द्रा बहन ज़ैनब का खत पढ़ रही थी और गोविन्द उनके मासूम चरनों को देख रहा था।

"तो..चलो..जगतपुर, इसमें सोचने की बात क्या है?.."

"शाम या सुबह को गाड़ी से?" गोविन्द ने पूछा।

"नहीं, अभी शाम को चला जाय!" इन्द्रा ने कहा।

"लेकिन, बहन नहीं,..हम लोग रात को चार बजे चलेंगे,"

गोविन्द ने दुःख से कहा, "मैं अपनी इस खूबसूरत यूनिवर्सिटी को रात के अंधेरे में छोड़कर जाऊँगा..मैं दिन की रोशनी में इससे विदा नहीं ले सकूँगा !"

गोविन्द की आँखें अनायास डबडबा आईं। इन्द्रा ने प्यार से समझाते हुए कहा, "गोविन्द ! पढ़ाई-लिखाई तो बहुत छोटी चीज़ है ! एक व्यावहारिक झूठ है !. .तुम्हें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए ! ..फिर तो आगे देखा जायगा ..।"

गोविन्द इन्द्रा बहन के सामने नतसिर खड़ा था, जैसे कोई नन्हा-सा बच्चा अपनी माँ से कुछ सीख रहा हो।

"जाओ घर चलने की तैयारी करो !...मैं चार बजे प्रातः ताँगे से तुम्हारे पास आ जाऊँगी।"

* * *

इलाहाबाद सो रहा था, उसकी गंगा, जमुना और सरस्वती सो रही थी और उसका आसमान भी सो रहा था। पत्थर का क़िला, अक्षयवट, विक्टोरिया स्मारक, अशोक की लाट, हर्ष की आत्मा सब सो रहे थे।

लेकिन ग्यारह सौ चौबिस क़दम लम्बी और सात क़दम चौड़ी यूनिवर्सिटी रोड जग रही थी। असंख्यबार, असंख्य क़दमों से रौंदी हुई यूनिवर्सिटी रोड की एक भी आँख नहीं फूटी थी। यूनिवर्सिटी रोड अपनी तमाम आँखों से गोविन्द को देख रही थी—कोई आँख एक ऐसे उत्साही नौजवान के गिरे हुए आँसुओं से बनी थी—जो आई० ए० यस० न बन सका, पी० सी० यस० न बन सका। कुछ आँखें ऐसे नौजवानों की थीं, जो अपनी अधूरी पढ़ाई छोड़कर यूनिवर्सिटी रोड पर रो कर चले गए थे। कुछ आँखें उन मासूम बहनों के रोए हुए आँसुओं से बनीं थीं, जिन्हें कुछ सामाजिक कारणों से विवश होकर पढ़ाई छोड़कर चला जाना पड़ा था।

इस तरह उस रात को यूनिवर्सिटी रोड जग रही थी, यूनिवर्सिटी क्लाक-टावर जग रहा था और उसके दामन में घूमता हुआ गोविन्द जग रहा था।

एकाएक टावर क्लाक ने छोटी-छोटी सोलह घंटियाँ बजाकर तीन घंटे बजाए। समूचा वातावरण मीठी झंकार से भर गया। गोविन्द को लगा जैसे झंकार की सारी मीठी लहरियों के ऊपर ज़ैनब दौड़ रही है। उसके जंगली गुलाब से मासूम पैर दौड़ रहे हैं।

चार बजे यूनिवर्सिटी रोड पर एक ताँगा कहीं जाने के लिए तैयार था। गंजा फ़ीसी खाँ आगे बैठा था। चारो ओर ख़ामोशी थी। यूनिवर्सिटी रोड कीं तीनों तरह की ख़ुशबुओं, तीनों तरह के इन्सानों में से इस समय वहाँ कोई न था। गोविन्द की नाक में कुछ इस तरह की बेनाम ख़ुशबू आ रही थी, जो बदबू और ख़ुशबू के बीच की थी।

ताँगा जैसे ही अँधेरी यूनिवर्सिटी रोड पर आगे बढ़ा, हवा एकाएक तेज़ बहने लगी और आसमान में काले-काले बादल चारो ओर फैलने लगे।

उसी समय गोविन्द ने देखा, उसके पीछे-पीछे कोई छाया-सी भागती आ रही थी।

गोविन्द ने अश्चर्य से उस दौड़ती हुई छाया को इन्द्रा बहन को दिखाया। फ़ीसी गंजा ने ताँगा रोक दिया। इन्द्रा ने सहसा पुकारा—

"नीना!"

फिर गोविन्द ने देखा—वह छाया धीरे-धीरे पीछे लौटने लगी थी। गोविन्द आश्चर्य से नीचे उतर आया और उस दौड़ती हुई मूक छाया को देख रहा था। गंजा फ़ीसी खाँ ने कहा, "बैठिए चलें हुज़ूर! जो बनावटी मुहब्बत व्यापार के लिए की जाती है, उसकी दौड़ यहीं तक होती है और उसकी छाया महज़ एक आवाज़ से डरकर लौट आती है!"

"यह पागल नीना भी अजीब है !" इन्द्रा ने कहा।

"हाँ, हुज़ूर!...यह नीना थी..जानती थी शायद ताँगे पर आप अकेले हैं...इन्द्रा बहन नहीं... ।"

"नहीं...यह किसी की छाया थी..गंजा भीसी !...इसके भी बुरे दिन में तुम काम आना !"

"अच्छा, सरकार !..लेकिन आप फिर कब आइयो ?.."

"जल्दी लौटने की कोशिश करूँगा..गंजा !"

प्रयाग से फ़ैज़ाबाद के लिए गाड़ी छूटने के समय गंजा उदास प्लेटफ़ार्म पर खड़ा था और गोविन्द चलती हुई गाड़ी में स्नेह से हाथ उठाए गंजा को बिदाई दे रहा था और गोविन्द की आँखों में इतने आँसू छलक पड़े जो कभी यूनिवर्सिटी रोड में नहीं खो सकेंगे बल्कि उसपर हमेशा लहर बनकर उठते रहेंगे, जो बार-बार यूनिवर्सिटी क्लाक-टावर की भंभनाहट में टकराते रहेंगे ।

* * *

रायगढ़ पहुँचते-पहुँचते गोविन्द को बारिश मिली और जब वह रायगढ़ से जगतपुर की ओर चला, उससे चला नहीं जाता था रास्ते कीचड़ और पानी से भर गए थे। और ऊपर से बार-बार कुछ न कुछ बारिश होती ही जा रही थी।

इसलिए जिस बैलगाड़ी में बैठकर इन्द्रा और गोविन्द जगतपुर की ओर बढ़ रहे थे, बहुत धीमी चाल से आगे चल पा रही थी।

जिस समय गाड़ी जगतपुर के समीप पहुँची, आसमान साफ़ हो गया था और सूरज डूबने जा रहा था।

गोविन्द ने दूर से ही, उस नीम के तले देखा, ज़ैनब डूबते हुए सूरज को देख रही थी और जैसे ही सूरज डूबा, वह छाया सी वहाँ से दूर हटने लगी, लेकिन उसी समय गाँव के बच्चे चिल्ला उठे।

"गोविन्द बाबू ! गोविन्द बाबू आगए।"

"गोविन्द बाबू आ गए !"

सारे जगतपुर में नए जीवन की लहरें दौड़ गईं और ज़ैनब इतनी ज़ोर से दौड़ पड़ी, जैसे वह समुद्र में उठती लहरियों में पहली लहर को छू देना चाहती थी, जैसे वह दक्षिण से आई और लौटी हुई लहर के लिए धरती का पहला कूल बन जाना चाहती थी।

२१

गोविन्द को अपनी नयी फ़सल की अपूर्व सफलता देखकर इतना बल और उत्साह मिला कि अब उसे अपने दुश्मनों पर दया आने लगी थी। उसके सामने वर्षा के बरसते हुए काले बादल, बढ़ती हुई रोनी नदी इस तरह लगने लगी जैसे प्रकृति की ये शक्तियाँ उसकी नई फ़सल, उसकी पूज्य धरती के सुहाग विन्दु हैं !

जगतपुर का उत्तरी सिवान दक्षिणी और पूर्वी सिवान से काफ़ी नीचा पड़ता था। यही कारण था कि इस सिवान में धान की इतनी फ़सल थी कि जगतपुर मालोमाल हो जाता। इसी से इस उत्तरी सिवान के तीन ख़ूबसूरत नाम थे—'धान बखरा' 'सीता-सोई' 'सोन-कछार'

और समूचे जगतपुर के सिवान में इसी ओर रोनी का दबाव भी था। रोनी अब थोड़ी सी अगर और बढ़ी तो उसके कग़ार पर बिना ऊँचे बाँध के काम नहीं चल सकता था, इसलिए जगतपुर की अब सबसे बड़ी चिन्ता रोनी की बाढ़ थी।

जगतपुर रोनी की बाढ़ से इतना डर रहा था कि जैसे कोई रोगी मौत से डरता हो।

क्योंकि एक बार सन् बाइस में बाढ़ आई थी और जगतपुरवालों ने अपना ख़ून सुखा कर रोनी के उत्तरी कगार पर ऊँचा बाँध बाँधा था, और अपनी फ़सल बचाई थी लेकिन बाँध बाँधते समय दो नौजवान रोनी की धार में बहकर डूब गए थे। एक बड़ी बाढ़ सन् सैंतिस में आई थी।

उसमें भी जगतपुरवालों ने बड़ा ऊँचा सा बाँध बाँधा था लेकिन बाँध टूट गया था, और उस वर्ष सारा उत्तरी सिवान डूब गया था।

इसीलिए बढ़ती हुई रोनी, बरसते हुए काले बादलों को देखकर जगतपुर की आत्मा शंका से सिहर उठती थी।

दूसरी शाम को गोविन्द ने अपने जगतपुर को बुलाया और यह तय किया कि उत्तरी सिवान की रक्षा के लिए रोनी के कगार पर फिर से नयी नींव देकर, सबसे नया, अपूर्व बाँध बाँधा जाय, जो पुराने बाँध के खडहर हैं उनसे थोड़ी सी भी न सहायता ली जाय।

नयी सुबह को लोग रोनी पर नया बाँध बाँधने के लिए इकट्ठे हो रहे थे। लेकिन इस बाँध को बाँधने के लिए सिर्फ़ वे लोग आ रहे थे, जो गोविन्द के थे, जिन्हें धरती की पवित्रता और राजा की दुश्मनी पर विश्वास था, जो सोच रहे थे कि उनसे और राजा से सत्य और असत्य की लड़ाई छिड़ी है, मानवी और दानवी शक्तियों में युद्ध हो रहा है; इसलिए बाँध बाँधने में जगतपुर की सब पट्टियों के नौजवान आए थे और छोटी पट्टी के सब आए थे। स्वय लाल साहब अपने आदमियों को लेकर रोनी के कगार पर खड़े थे।

बाँध बाधने का कार्य रोज़ हो रहा था, लेकिन रोज़ किसी न किसी समय बारिश हो जाने के कारण बाँध के ऊपर की मिट्टी गलकर खराब हो जाती थी और दूसरे दिन के काम में रुकावट पैदा करती थी। फिर भी चार दिनों में, जगतपुर का बाँध चार हाथ ऊँचा उठ गया था।

दोपहर के समय, जब गोविन्द बाँध पर थका हुआ अपनी पट्टी की ओर आ रहा था, अहिल्या उदास होकर अपने पिछवाड़े खिड़की पर खड़ी थी। गोविंद को तेज़ी से आते हुए देखकर, अहिल्या सामने की बाँस की झाड़ियों से होकर उसके पीछे दौड़ पड़ी और गोविन्द को पकड़ कर धीरे से कहने लगी, "गोविंद! बाँध पर भी रात को पहरा लगवा देना।"

"क्यों, बात क्या है?"

"मुखिया अपने आदमियों से, कल रात को सलाह कर रहे थे कि··बाँध न बँधने दिया थाय, रोज़ रात को तोड़ा जाय!"

गोविन्द को थोड़ी सी चिन्ता हुई कि जगतपुर में उसे कहाँ इतने आदमी मिलेंगे ?..चारो सिवान पर पहरे, मचानों पर पहरे, ज़ैनब के घर पर पहरे,...अब बाँध पर पहरे !..

फिर भी, बाँध पर भी पहरा होने लगा, और बाँध बँधता गया। लेकिन रोनी भी प्रतिदिन कुछ न कुछ बढ़ती ही जा रही थी। पानी, कुछ न कुछ बरसता ही रहता था।

* * *

शाम का वक्त था गोविन्द, पूर्वी सिवान से रोनी के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर बढ़ रहा था ! उसे बड़ी प्रसन्नता थी कि जगतपुर के इन सिवानों में रोनी की बाढ़ किसी तरह नहीं चढ़ सकती, लेकिन वह बढ़ती हुई रोनी को देख देखकर बार-बार मुस्कराता और उदास हो जाता।

एकाएक गोविन्द के कानों में कुछ लड़कियों का सम्मिलित गीत सुनाई पड़ा—

"हाय ! गंगा मइया ! तुम्हारे लागों चरना
पान, फूल अरु मेवा चढ़ैबें,
मानो मेरी मइया, तुम्हारे हम सरना।
हाय, गंगा मइया ! तुम्हारे लागों चरना"

इस बहते हुए गीत में अनन्य प्रार्थना के साथ-साथ करुणा का पुट था। गोविन्द दूर ही से देखने लगा—रोनी के कगार पर, पारो भाभी, ज़ैनब, सूरा दीदी, जमुना, अहिल्या, बेगमा, रूपा, रिनी और नैना—सब एक स्वर में गाती जा रहीं थीं और ऊँचे कगार से नीचे रोनी की धारा में फूल, अच्छत, मेवा वगैरह डालती जा रहीं थीं।

गोविन्द दूर से देख रहा था, उन लोगों का सम्मिलत संगीत स्वर रोनी की धारा में ख़ूबसूरत लहरें बनकर तैर रहा था। वे सब लहरें एक जगतपुर की थीं, एक धरती की आत्मा की पुकार थीं। उनमें एक

भावना और एक आशा थी। उनमें न बड़ी पट्टी का चिन्ह था, न शेख़ पट्टी, छोटी पट्टी या नीची पट्टी की ख़ुशबू थी।

शाम हो गई थी और गोविन्द ने देखा आसमान में वर्षा के बादल ख़ूब घने होते जा रहे हैं और उन लोगों की पूजा और प्रार्थना अब तक जारी है।

गोविन्द ने दूर ही से आवाज़ दी—"दीदी !..चलो, सबको घर ले चलो !..बारिश होने वाली है !"

गोविन्द की आवाज़ सुनते ही सब दौड़ पड़ीं; जैसे उन्हें उनकी प्रार्थना मिल गई।

गोविन्द के साथ सब लोगों ने चिन्ता से ख़ामोश होकर रोनी की बढ़ती हुइ धारा देखी। और बादल चुपके से नीचे झुक कर बरसने लगे।

गोविन्द के साथ उसका भींगता हुआ मासूम जगतपुर धीरे-धीरे गाँव में बढ़ रहा था और गोविन्द धीरे-धीरे कह रहा था—"पूजा और प्रार्थना का भगवान और भगवान की शक्तियों पर कुछ नहीं असर होता !..यह अपनी कमज़ोरी है !..वे अपनी दिशाएँ नहीं बदल सकतीं !.."

धीरे-धीरे वर्षा हो रही थी। हवा झँकोर कर बह रही थी। वातावरण कुछ तूफ़ानी सा नज़र आने लगा था। अँधेरा घना होता जा रहा था। आसमान में बार-बार बिजली और बार-बार गड़गड़ाहट हो रही थी। गोविन्द के साथ उसका भींगता हुआ जगतपुर—उसके साथ उसकी भींगती हुई दूल्हन ज़ैनब, थकी हुई पारो भाभी, सूरा दीदी सिहरी हुई अहिल्या, बेगमा वगैरह चल रहीं थीं। चारो ओर मचानों पर उसके दिल के टुकड़े, उसके बहादुर साथी भींग रहे थे। रोनी के बाँध पर उसके जमुना, बहादुर, अब्दुल, प्रताप, राधे मोहन वगैरह भींग रहे थे। नई फ़सल का नया अन्न भींग रहा था।

एकाएक बिजली कौंधी, हवा में और तेज़ी आगई और गोविन्द ने देखा, सामने पागलों की तरह दौड़ता हुआ किशन चला आ रहा है।

किशन बिजली की तरह दौड़कर गोविन्द से लिपट गया और धीरे से घबड़ाकर कहने लगा—"गोविन्द ! गज़ब हो गया !..गोविन्द गज़ब हो गया ।"

और किशन थर-थर काँपने लगा ।

सब लोग पानी में भींग रहे थे । गोविन्द घबड़ाकर किशन से पूछ रहा था—"क्या है, किशन ?..बोलो..क्या है ?" किशन ने धीरे से बताया, "गोविन्द ! मैंने अभी अपनी आँखों देखा है राजकुमार विजय किसी को खींचता हुआ अभी टीले के अंधकार में खो गया है।"

"किशन !"

सब के मुह से एक चीख़ आई ।

गोविन्द ने जल्दी से गाँव के किनारे आकर सब को छोड़ दिया और किशन के साथ टीले की ओर दौडने लगा । उसी समय नम्बरदार काका की पुकारती हुई आवाज़ आने लगी—

"कौशल्या !...ओ, कौशल्या !"

गोविन्द और किशन एक क्षण के लिए रुके और किशन ने दौड़-कर नम्बरदार को पकड़ लिया और उन्हें खींचते हुए टीले की ओर बढ़ने लगे । गोविन्द और किशन दौड़ते हुए धीरे-धीरे नम्बरदार काका से कह रहे थे—"काका ! टीले पर एक मिनट !..एक मिनट के लिए टीले पर.."

बरसते हुए बादलों में एक बार बड़ी ज़ोर से बिजली कौंधी और तीनों टीले के चढ़ाव को पार कर मन्दिर के खंडहर के सामने पहुँच गए ।

एकाएक उनके कानों में किसी की तड़पती हुई कराह आई, किसी की हँसती हुई चीख़ आई ।

एक बार फिर काले बादलों में तूफ़ानी बिजली कौंधी, और तीनों ने देखा मन्दिर के खंडहर में कोई किसी से वहशियाना लड़ाई लड़ रहा है। विजली रह रह के तड़प रही है। धरती असीम करुणा से चीख़ रही है। गरजते हुए बादलों में किसी की दबी हुई कराह खोती जा रही है।

गोविन्द तूफ़ान में दौड़ता हुआ चीख़ पड़ा—

"कौशल्या !"

और क्षणभर के बाद बादलों में एक और बहुत बड़ी और कुछ देर तक चमकती हुई बिजली तड़पी। फिर अँधेरा हो गया और किशन तथा नम्बरदार के सामने से कोई खंडहर से निकलकर भागता हुआ नज़र आया।

किशन दौड़कर, तूफ़ान में भागती हुई सूरत से लिपट गया और टीले पर पटक दिया। नम्बरदार उसके गले को मींचता हुआ चीख़ पड़ा, "पापी विजय !"

"ओह ! राक्षस तू !"

गोविन्द खंडहर में पहुँचकर बेहोश कौशल्या को सँभालता हुआ चीख़ पड़ा—

"नम्बरदार !..नम्बरदार !!..

यहाँ है तेरी कौशल्या !
यहाँ है तेरी देवी !
यहाँ है तेरा धर्म !
यहाँ है तेरी राजभक्ति !
यहाँ है तेरी इज़्ज़त !"

बिजली का कौंधना बन्द हो गया। और बारिश भी हल्की होती जा रही थी, लेकिन अंधेरा बढ़ गया था और हवा तेज़ हो गई थी।

गोविन्द बेहोश कौशल्या को संभाले हुए खंडहर से बाहर हो गया और जैसे ही विजय ने दूर से गोविन्द के कंधे पर बेहोश कौशल्या को आते हुए देखा, वह मुर्दे को तरह शिथिल हो गया।

नम्बरदार विजय को छोड़कर, करुणा से विलाप करता हुआ गोविन्द के चरणों पर गिर पड़ा, और कौशल्या को देखता हुआ बहुत ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगा।

तब तक गोविन्द ने अंधेरे में देखा, विजय अकेले किशन से भाग जाने के लिए बुरी तरह लड़ रहा है।

गोविन्द ने झट से कौशल्या को नम्बरदार की गोद में दिया और टीले पर दौड़ता हुआ, उत्तरी सिवान में बहुत ज़ोर की आवाज़ दी। नम्बरदार ने अपने जगतपुर को पुकारा।

लेकिन जब तक वे दोनों आवाज़ें दोनों जगहों पर पहुँचकर लौटने को थीं; टीले के नीचे से ऊपर चढ़ती हुई, बहादुरसिंह की आवाज़ आई।

विजय को साहस मिला, उसने गंभीरता से बहादुरसिंह को पुकारा। टीले पर से टार्च की तेज़ रोशनी आने लगी, और गाँव तथा मचान से लोग चिल्लाते हुए अंधकार में दौड़ पड़े।

टार्च और बन्दूक लिए बहादुर सिंह नज़दीक आ गया था और अंधकार में दौड़ते हुए केवल लाठी लिए जगतपुर वाले अभी दूर थे।

बहादुर सिंह टार्च की रोशनी में गोविन्द और किशन से जकड़े हुए विजय को देखता आ रहा था। विजय दौड़ते हुए गाँववालों की आवाज़ें सुन रहा था।

इधर कौशल्या को होश आने लगा था। नम्बरदार जगतपुर की दुहाई माँग रहा था। उसी समय विजय ने क्रोध में आकर कहा; "बहादुर!..क्या देख रहे हो?..बन्दूक चला दो, इन पर!"

कौशल्या इस आवाज के साथ ही दौड़कर गोविन्द से लिपट गई और उसके दोनों हाथों को अपने दामन में छिपा लिया। नम्बरदार दौड़कर किशन से लिपट गया, और इस तरह विजय कुछ ढीलापन पाते ही वहाँ से छुड़ाकर भाग निकला।

जगतपुर के लोग सामने आ गए थे, लेकिन विजय टीले से पूरब और दक्खिन की ओर भाग रहा था और बहादुरसिंह पीछे से आगे रोशनी फेंकता हुआ चला जा रहा था।

इस तरह क्षण भर में टीला आवाज़ों से गूँज उठा। किशन और नम्बरदार उन दोनों के पीछे दौड़ रहे थे और उनके आगे पीछे चिल्लाता हुआ जगतपुर दौड़ रहा था, लेकिन यह तो शरीर की आवाज़ थी, इसमें शक्ति कहाँ थी कि वे दोनों भागते हुए बेहोश होकर कहीं गिर पड़ते।

वे भागते जा रहे थे और बहादुर सिंह ने टीले के उतार से, अदृश्य में बन्दूक का एक भयानक फायर किया। यह आवाज़ सख्त थी। सबसे अधिक ताक़तवाली थी। इस आवाज़ से सारा चीख़ता हुआ टीला चुप हो गया। सब के पाँव रुक गए।

लेकिन गोविन्द और कौशल्या की ओर लौटते हुए, उनकी आत्मा की चीख़ कई गुनी बढ़ गई। उनकी बाहुँओं में इतनी फड़कन उभरने लगी कि उनसे सीधे नहीं चला जा रहा था।

आसमान में बादल फट गए थे। हवा भी मद्धिम बहने लगी थी। सितारों की धीमी-धीमी रोशनी टीले पर पड़ने लगी थी।

कौशल्या गोविन्द से सिमटी हुई खड़ी थी और उसने अपना मुँह गोविन्द के भींगे हुए सीने में छिपा लिया था! नम्बरदार रोता हुआ जगतपुरवालों से आज अपनी आत्मा की फ़रियाद कह रहा था। आज उसकी वाणी में गोविन्द की भी वाणी से अधिक तेज़ी थी। किसी दिन जो गोविन्द अपने जगतपुर को समझा रहा था, वही बातें आज वह ग़रीब, भूला हुआ, कब से मृग-मरीचिका में भटकता हुआ

किसान, अपने नम्बरदारी के व्यक्तित्व को घृणा से बहुत दूर फेंके हुए; अपनी काँपती हुई ज़बान से दुहरा रहा था।

कौशल्या गोविन्द के दामन मुँह छिपाकर रो रही थी। जगतपुर की कितनी आँखें रो रही थीं। इन आँसुओं में आज बेक़सूर सब्बो की मौत के भी आँसू बह रहे थे। बेक़सूर गोविन्द के प्रति सारी लड़ाई, सारी ज़्यादती, सारे अन्याय के आँसू छलक रहे थे। बेग़मा, राधा, हंसा, अहिल्या की तरह अनगिनत मासूम बहनों पर किए गए पापों के लिए आँसू बह रहे थे। गोविन्द की सच्चाई, राजा का पाप, राजकुमार का विश्वासघात, राजा की कूटनीति, सब स्पष्ट होकर सामने खड़े, हो गए थे और लगता था कि इस अँधेरे में वह मन्दिर का खंडहर कोई सच्चाई का दास्तान कह रहा था; जिसे पहले कोई और सुनने के लिए तैयार न था लेकिन आज तमाम लोग सुन रहे थे।

* * *

रात का तीसरा पहर बीत रहा था। आज जगतपुर अपने बहुत बड़े रूप में गोविन्द को घेरे हुए छोटी पट्टी में बैठा था।

आसमान साफ हो गया था। उत्तरी सिवान से मचानों पर बोलते हुए साथियों की आवाज़ आ रही थी। दक्खिन से भी खेतों की रखवाली की बोलियाँ सुनाई पड़ रही थीं। रोनी के बांध पर बराबर नयी मिट्टी डालने का काम भी जारी था।

शेष जगतपुर न जाने क्या अब तक सोचता हुआ बैठा था।

दक्खिन और पश्चिम सिवान में ज्वार, बाजरा, मकई वगैरह की फ़सल अपनी अपूर्व सफलता के साथ कट चुकी थी और खेतों में सिर्फ लट्ठे ही लट्ठे स्थान स्थान पर गँजे हुए (इकट्ठा किए हुए) थे। पिछली रात को चार गाड़ी लट्ठे में शायद मुखिया ने आग लगवा दी थी।

इसलिए आज लोग बारी-बारी अपने-अपने लट्ठों की देख-रेख कर लौट रहे थे।

आखिरी समय जो लोग अपने खेतों से गाँव लौट रहे थे; उनसे रहमान की मुलाक़ात हुई थी।

रहमान ने राजा के घोड़े के पीछे जाते हुए उन लोगों से बताया था कि राजा के आदमी बहादुरसिंह, जानकीदास, दीवानसिंह वगैरह रायगढ़ जा रहे हैं। सुबह रेनुआ के थानेदार दस पुलिस के साथ जगतपुर में आ रहे हैं।

हाँ, तो शेष जगतपुर न जाने क्या सोचता हुआ शान्तिपूर्वक बैठा था। एकाएक खेतों से लौटे हुए इन किसानों ने रहमान की मुलाक़ात और उसकी बातें बताईं।

और जैसे लोग उत्तेजित होकर शोर करने लगे, नीची पट्टी—राजमहल में बन्दूक के हवाई फ़ायर होने लगे। लेकिन यह जनता का उठता हुआ शोर मद्धिम न हुआ; यद्यपि यह शोर राजमहल की ओर न बढ़ सका। इस शोर में सिर्फ आवाज़ ही आवाज़ लगती थी; लेकिन इसमें इतनी दबी हुई आग थी, क्रोध की इतनी ऐंठन थी कि आवाज़ बढ़ती ही जाती थी और इस उठती हुई आवाज़ की लहरें अपने आप राजमहल के कंगूरों पर बुरी तरह से टकराने लगी थीं।

सुबह होने में थोड़ी सी रात बाक़ी थी। काफ़ी सितारे डूब चुके थे। सहसा उत्तर की ओर से कुछ आदमियों की गुहार आई। जगतपुर ने दौड़कर देखा रोनी का पानी बढ़कर बांध के मुँह पर आ गया था।

जगतपुर को काटो तो खून नहीं। इधर धान के खेतों में भी बीस, पच्चीस अंगुल पानी था। उधर रोनी के कगार से, जतगपुर ने डेढ़ हाथ ऊँचा पानी बाँध से रोक रक्खा था, और अब बांध की यह भी ऊँचाई खत्म हो रही थी।

जतगपुर यहाँ भी शोर करता हुआ खड़ा था और बढ़ती हुई रोनी को देख रहा था। गांव में राजा की बन्दूक और सिपाहियों के कारण उसकी आवाज़, आवाज़ ही करके रह जाती थी। रोनी के बाँध पर कठिनाई यह थी कि बराबर पानी बरसते रहने के कारण बाँध की

मिट्टी कटती जाती थी और उस पर नयी मिट्टी रखने के लिए, कठिनाई यह पड़ती थी कि धरती गीली हो गई थी और अब ऐसी धरती की मिट्टी बाँध बाँधने के लिए बिलकुल बेकार हो गई थी।

सुबह होते-होते किशन ने अपनी एक नयी घारी (बैल, भैंस बाँधने का घर) गिरा दी और जगतपुर इस सूखी मिट्टी को ढो-ढोकर रोनी के बाँध पर ले जाने लगा और दिन निकलते-निकलते रोनी का बांध रोनी की बढ़ी हुई धार से ऊँचा उठा दिया गया।

* * *

समूचा रायगढ़ का क्षेत्र जलमग्न हो रहा था। जनता बह रही थी, जनता की फ़सल, समूची सम्पत्ति ख़तरे में थी।

सरकार के कर्मचारी मोटरों, ऊँची-ऊँची कश्तियों में बैठकर दूर से जाँच कर रहे थे, उनकी औरतें फोटो (चित्र) ले रहीं थीं। पुरुष गाँव के किनारे गाँधी और अहिंसा, सन्तोष के पाठ पढ़ा रहे थे। फिर भी जब डूबती हुई जनता सरकार के आदमियों को देखकर चिल्ला उठती थी कि 'सरकार! जमींदारी कब टूट रही है?..जमींदारी तो टूट गई थी, अब क्या हुआ?'

तब कर्मचारी दूर से नावों में बैठकर अख़बार की मोटी-मोटी पंक्तियाँ दिखाते थे—

"अभी एक वक्त खाना खाओ!"
"अधिक अन्न उपजाओ।"

फिर गाँववालों की आँखों से बेबसी के आँसू ढुलक पड़ते थे और वे आँसू बाढ़ के पानी में मिलकर एक ऐसी जगह की तलाश में बेहने लगते थे, जहाँ न उनकी कोई सरकार हो, जहाँ न उनका उपजाया हुआ अन्न पानी में बहे, बल्कि जहाँ उनकी अपनी धरती हो, जहाँ उनकी आवाज़ हो।

सो भी जगतपुर में तो कोई सरकार का कर्मचारी भी न आ सका था। सुना जाता था कि राजा शिवप्रसाद ने जिला कलक्टर, बाढ़ के डिप्टों के पास लिख भेजा था कि उन्होंने अपने कोष से जगतपुर को रुपया बँटवा दिया है। अपने बखार से गाँव वालों को अन्न बँटवा दिया है और उन्होंने यह भी सूचना भेज दी थी कि जगतपुर की फ़सल पर कोई खतरा नही है। रोनी पर हमने ख़ूब मज़बूत बाँध बँधवा रक्खा है।

लेकिन राजा ने ज़िला कलक्टर, जिला सुपरिन्टेन्डेन्ट; ख़ुफ़िया इन्सपेक्टर, जिला काँग्रेस अध्यक्ष, ज़िला पंचायत अफ़सर वग़ैरह के के पास सिर्फ़ एक बहुत बड़े ख़तरे की सूचना भेज रक्खी थी कि जगतपुर कम्युनिस्टों का अड्डा है—और यहाँ गोविन्द नाम का एक बहुत बड़ा जनवादी किसान नेता रहता है। ऐसे शान्ति-प्रिय गाँव में ऐसी ताक़तों को रख छोड़ना, सरकार के लिए घातक है।

२२

सुबह जब गोविन्द रोनी के बाँध से गाँव में लौट रहा था; तब ज़ैनब उसे गाँव के बाहर ही मिली थी और उसे जबरन अपने घर लाकर ताज़े पानी से नहलाया। सूखे कपड़े पहनाए, गरम-गरम नास्ता कराके उसे पलँग पर लिटा दिया।

गोविन्द को सचमुच नींद आ रही थी, गत अड़तालिस घंटों से वह बराबर जग रहा था। उसके पैर, सतत पानी, कीचड़ में डूबे रहने के कारण सड़ गए थे। पैर की उँगलियों के पोरों में से बदबू आने लगी थी।

गोविन्द को नींद आने लगी थी, और ज़ैनब उसके पायताने बैठकर गरम कड़ुवे तेल से उसके पैर की मालिश कर रही थी, सड़ी हुई उँगलियों के बीच में तेल सुखा रही थी।

गोविन्द ने धीरे से आँखें खोलीं और उसने उचककर पूछा, "ज़ैनब ! किसी ने मुझे पुकारा है ?"

"नहीं, कोई कुछ नहीं !..तुम सो जाओ गोविन्द !"

ज़ैनब उठकर, अब गोविन्द के सूखे हुए सर में मीठा तेल लगाने लगी। गोविन्द सोने लगा, और ज़ैनब उसके सिरहाने बैठी सर में तेल लगा रही थी।

क्षण भर के बाद गोविन्द फिर चौंक पड़ा और धीरे से मुस्कराकर कहा, "मैं तो एक अजीब ख़्वाब में डर गया ज़ैनब !"

"नहीं, तुम ख़ामोश होकर सो जाओ गोविन्द !"

ज़ैनब ने गोविन्द को मनाते हुए कहा। गोविन्द अपलक ज़ैनब को देख रहा था और ज़ैनब बार-बार गोविन्द से कह रही थी कि गोविन्द ! आँखें बंद करके सो जाओ।

गोविन्द अपनी उनीदी आँखों में एक अजीब थकान के साथ मुस्काने लगा और अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर ज़ैनब के गले में डाल दिया और उसने बच्चों की तरह मचलकर कहा, "ज़ैनब!. . . मुझे अकेले सोने में डर लग रहा है !"

ज़ैनब बिजली की तरह चमककर झुक गई और गोविन्द के झीने लिहाफ़ में खो गई।

गोविन्द ने ज़ैनब को अपने प्यासे दामन में छिपा लिया और उसे मासूम बाहुओं और पैरों में दबोचकर अपने सीने में इस तरह गड़ा लिया जैसे गोविन्द अकेले सोया हो। जैसे रुकी हुई हवा में फूल की .खुशबू डूबी हो, जैसे .कुदरत के पतले-पतले ओंठों में मुस्कराहट खो गई हो।

गोविन्द आँखें बन्द करके सो रहा था और ज़ैनब जागती हुई उसके सीने में देख रही थी—अपनी दुनियाँ, अपना नया घर, अपना नया गाँव, अपना नया .खून। अपने नये गीत अपने नए कपड़े . . . ।

एकाएक बाहर किशन, मोहन, राधे प्रताप और नम्बरदार की सम्मिलित पुकार आई। ज़ैनब ने अपना सर उठाकर गोविन्द को देखा; गोविन्द सो रहा था।

ज़ैनब बहुत आहिस्ते से प्रयत्न करने लगी कि वह गोविन्द की बाहु-पाश से निकलकर बाहर के लोगों से मिल आए। लेकिन गोविन्द सोता हुआ भी अपने ज़ैनब को इस तरह पकड़े था जैसे एक मासूम बच्चा—अपने प्यारे खिलौने को पकड़े हुए सो रहा हो।

बाहर से फिर आवाज़ आई और ज़ैनब ने थोड़ा अधिक प्रयत्न किया; इतने में गोविन्द की आँखें खुल गईं और उसके कान में बाहर से दोस्तों की आवाज़ आई।

गोविन्द और ज़ैनब बाहर आए। उन लोगों ने बताया कि कोट

में (राजमहल) रायगढ़ के डिप्टी साहब, रेनुआ के थानेदार बहुत सिपाहियों के साथ आए हैं। और पूरे जगतपुर को बुला रहे हैं।

गोविन्द के शरीर में झनझनाहट दौड़ गई। उसने उन लोगों के साथ आगे बढ़ते हुए कहा, "उन लोगों को कहला दो कि हम लोग उनसे तीसरे पहर मिल सकेंगे!...और राजा की कोट में नहीं,...छोटी पट्टी में, पंचायती बड़े बरगद के नीचे!"

जब गाँव की यह खबर उन लोगों को मिली तो जैसे उन्हें थोड़ी सी चोट लगी और इस चोट पर राजा ने खूब मलहम पट्टी की। लेकिन उन्हें गाँव के अनुसार चलना था; इसलिए उनकी मेज़ कुर्सी छोटी पट्टी में बरगद के नीचे लगाई गई।

जगतपुर अपनी तीन लम्बी-लम्बी दरख्वास्त बना रहा था। पहली दरख्वास्त गोविन्द की थी और उस पर सैकड़ों जगतपुरी अँगूठे लगे थे; कि राजा ने हमारे साथ बहुत बड़ा विश्वासघात किया है। हमारी धार्मिकता की आड़ में हमें लूटने की कोशिश की है। इन्हें जब यह मालूम हो गया कि इनकी ज़मीन्दारी, तालुकेदारी ज़ब्त हो जा रही है और इनके ख़ूनी पंजों से इनका जगतपुर निकल जायगा; तब इन्होंने जगतपुर को रद्दी बीज देकर, इसकी रब्बी की फ़सल नष्ट की है; जिससे आगे जगतपुर किसी तरह भूमिधर न बन सके। अपनी ग़रीबी में तड़पता रहे और उसे हम अपनी ओर से थोड़ी-बहुत सहायता देकर सदा के लिए एहसानमन्द बना लें; और इस तरह जगतपुर सदा उनके पंजों में रहे। जगतपुर की बहू-बेटियाँ उनका शिकार बनती रहें। इसके लिए उन्होंने मुझे और बेक़सूर ज़ैनब को सामने रखकर, गाँव की झूठी धार्मिक भावना का नाजायज़ फ़ायदा उठाया है।

दूसरा लम्बा प्रार्थना-पत्र लाल साहब की ओर से बना था, जिस पर इन्द्रा, तारा, ज़ैनब गोविन्द, किशन, नम्बरदार वग़ैरह के दस्तख़त थे। इस प्रार्थना-पत्र में राजकुमार द्वारा गाँव में उठाए हुए सारे उत्पातों का सिलसिलेवार ब्यौरा था; ख़राब बीज के प्रमाण और तिलक

पुर के फूँके गए बखार का हवाला दिया गया था। बेटी इन्द्रा को शादी और तिलकहरा के साथ किए गए विश्वासघात का सारा बयान लिखा गया था।

तीसरी लम्बी दरख्वास्त नम्बरदार और कौशल्या की ओर से थी और उसमें रहमान और बेगमा के आँसू थे, अहिल्या, पारो, किशन, रूपा के सच्चे बयान और बेकसूर सब्बो की हत्या का हवाला दिया गया था। और इस पर सैकड़ों जगतपुरी अँगूठे के निशान चमक रहे थे।

* * *

लेकिन तीसरे पहर से शाम तक जगतपुर और राजा तथा सरकार के कर्मचारियों में बहस चल रही थी। और कुछ नहीं हो पा रहा था सिर्फ बयान लिए जा रहे थे।

सरकार और राजा दोनों मिलकर जगतपुर के सब झगड़ों को, सब प्रार्थनापत्रों को साम्यवादी झगड़े का रूप दे रहे थे और उल्टे गोविन्द, किशन, लाल साहब को साम्यवादी सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे।

लेकिन चूँकि जगतपुर बहुमत से राजा के पापों, राजकुमार के विश्वासघात और सारे अपराधों को सिद्ध कर रहा था; और आज जगतपुर में कब से दबी हुई क्रान्ति की आग भड़कने वाली थी। राजा के पाँव अपने आप, अपने पापों के बोझ से काँप रहे थे लेकिन राजकुमार की ज़हरीली ज़बान अब तक जगतपुर और सरकार के सामने यह कह रही थी कि "यह सब झूठ है!...सब कम्युनिस्टों का फ़रेब है!··और असली बात तो यह है कि जगतपुर के देवता, जगतपुर की धरती, इनपर नाखुश है, इस नयी फ़सल पर देवताओं का श्राप है! और यह नयी फ़सल किसी तरह भी अगर सफल हो जाय, नष्ट होने से बच जाय तो मैं अपने पापों को स्वीकार करता हूँ।"

राजकुमार कड़े शब्दों में यह कहकर आवेश के साथ अपनी कोठ की ओर चला गया और भोले जगतपुर वाले सरकार के सामने—कभी कौशल्या, कभी सब्बो, कभी लट्ठे के फूँकने की बात, कभी गोविन्द पर किए गए सारे अत्याचारों की फ़रियाद कर रहे थे।

लेकिन कोई कहाँ तक जगतपुर वालों की सुनता, सरकार स्वयं अभी तक इन्हीं राजे, जमीन्दार के हाथों से गुजर रही थी। आवाज़ कहाँ तक उठती ?· ·जब आसमान स्वयं आवाज़ खाने के लिए नीचे झुक आया था।

जगतपुर में उस शाम तक, सरकार उनकी फ़रियाद सुनने के लिए नहीं रुकी थी; बल्कि राजा की शक्ति बनकर आई थी और उस शाम को जगतपुर के बहते हुए आँसुओं पर धूल का पर्दा डालने आई थी, उनके दिल के दहकते हुए शोलों पर राख डालने आई थी। क्योंकि उन्हें शक था कि ये आँसू कहीं बहते-बहते इतना बड़ा तूफ़ान न बन जाँय कि इसमें सब को डूबना पड़े। कहीं इन शोलों से भूचाल न आ जाय जिससे इस पृथ्वी को फटना पड़े और इसके गर्भ से कितनी सूरतें, राजा, सरकार, धर्म, समाज, व्यक्ति के प्रति फ़रियाद करती हुई न निकलें, नहीं तो इनके जीने और रहने का कहीं स्थान ही नहीं मिलेगा।

*   *   *

अँधेरा हो चला था और जगतपुर अभी तक मुआइना करके गाँव से बाहर जाती हुई सरकार को घेरे खड़ा था। वह उनका निर्णय सुनना चाहती थी।

कहीं दूर दिशा में बिजली चमकी और बादलों की गड़गड़ाहट आई। मानो आसमान ने दूर से जगतपुर वालों से कह दिया हो कि—पागल मत बनो!..अपने रास्ते से चलते रहो..सरकार तुम्हारे लिए धोखा है!..

अँधेरा हो चला था, आसमान में बादल थे और अभी तक एक भी सितारे का पता न था।

विजय जब सभा को अपनी सत्यता और निर्दोष की चुनौती देकर राजमहल में लौटा, उस समय बहादुर सिंह, शेर सिंह, दीवान सिंह उसकी प्रतीक्षा में बाहर खड़े थे।

अँधेरा हो गया था सरकार अब रायगढ़ के रास्ते पर थी और जगतपुर अबभी उनके साथ-साथ चलता हुआ गाँव के बाहर दक्षिण ओर अपनी आवाज़ बुलन्द कर रहा था।

अँधेरा हो गया था और राजकुमार हाथ में बन्दूक सँभाले, पीछे पीछे बहादुर सिंह और दो नीची पट्टी के आदमियों को लिए हुए रोनी के किनारे-किनारे उत्तर की ओर बढ़ रहा था।

बाँध के समीप पहुँचकर विजय ने एक बार गाँव की ओर देखा—बाग में ज़ैनब, कौशल्या और बेगमा टहल रही थीं और बाँध की ओर देखती जा रही थीं।

छिपे हुए बहादुरसिंह ने धीरे से कहा, "हुज़ूर!..आज तो मेरी राय है कि ज़ैनब पर ही गोली चलादी जाय और इस गहरी रोनी में फेंक दिया जाय..!"

"नहीं..बहादुर!..चुप रहो!" विजय झुका हुआ आगे बढ़ रहा था और धीरे-धीरे कह रहा था, "अभी असत्य की जीत होगी!.. घबड़ाओ नहीं, पहुँचते ही...बीचों-बीच से रोनी का बाँध काट दो..!"

बाँध के समीप पहुँच कर सब ने समूचे बाँध को देखा और फिर घूमकर गांव की ओर देखा, सब सूना था। ज़ैनब, कौशल्या और बेगमा अब दिखाई नहीं दे रही थीं।

विजय ने एक बार और सर उठा कर बाँध के उस किनारे को देखा। उसने देखा कि उस सिरे पर कोई सफ़ेद छाया सी इन्सान की शक्ल बैठी है।

विजय सिहर गया और अपनी भरी हुई बन्दूक को देखने लगा।

"हुज़ूर! देर किस बात की?..अब वक्त बिल्कुल नहीं है!"

विजय ने धीरे से कहा, "बहादुर! बाँध के उस सिरे पर मुझे कोई बैठा दिख रहा है!"

"नहीं, यह आपका भ्रम है हुजूर..!" बहादुरसिंह ने धीरे से बढ़ते हुए कहा, "हम लोग बाँध काट रहे हैं..अगर वह कोई इन्सान होगा ..तो उसके पुकारते ही आप उसे गोली मार दीजिएगा।"

"बहुत अच्छा!..बढ़ जाओ जल्दी!..काटो बाँध को!"

बहादुरसिंह अपने दोनों आदमियों को लिए हुए जैसे ही बाँध को काटने टूटा, बाँध के उस सिरे पर रखवाली में बैठी हुई सूरत चिल्ला उठी—"गाँव वालो!..दौड़ो,..गुहार लागो..बाँध..बाँध.. बाँध।"

विजय ने उसी क्षण उस पर गोली चलाई। वह छटपटाती हुई सूरत अब भी जगतपुर को पुकारती हुई चीख रही थी, "ज़ैनब, गोविन्द, बेग़मा।"

लेकिन बाँध काटा जा चुका था, और रोनी की धार सिवान की ओर मुड़ने लगी थी। लेकिन वह चीखती हुई गुहार बाग़ में गूँज उठी और ज़ैनब ने आह भरकर कौशल्या को गाँव में भेजकर बेग़मा के साथ चीखती हुई, कटते हुए बाँध को बचाने के लिए टूट पड़ी।

"बाँध कट गया!" "बाँध कट गया!!" जैसे धरती यह कह कर चीख उठी हो। आसमान रो पड़ा। लेकिन क्षण मात्र में सारा जगतपुर बाँध पर टूट पड़ा।

गोविन्द स्वयं उस किनारे पर छटपटाती हुई सूरत पर फट पड़ा। और उसे ऊपर उठाते हुए चिल्ला पड़ा—

"आह! तारामती!!"

जगतपुर की धरती गुहार मचा रही थी। बहुत ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कह रही थी—

"वह राजकुमार बाँध काट कर भागा जा रहा है। पकड़ो उसे! ...बाँध लो उसे!"

गोविन्द घायल तारा को लिए हुए टूटे बाँध की धार से बाहर आ रहा था और अपनी ज़ैनब को पुकार रहा था।

उसने किनारे से देखा किशन और मोहन ज़ैनब को पानी से संभालते हुए बाहर धरती पर लिटा रहे हैं।

गोविन्द का पैर अब तक पानी में था और उसके कंधे पर घायल तारामती थी। इसलिए वह दौड़ता हुआ भी अब तक किनारे ही था।

लेकिन गोविन्द उसी क्षण यह देखकर बेहोश की तरह ज़ैनब पर टूट पड़ा; जब कुछ लोग उसके पेट को दबाने जा रहे थे।

गोविन्द पागलों की तरह चीख कर ज़ैनब को अपनी गोद में ले लिया और उसने तड़प कर कहा, "मत छूओ इस पेट को! मत छूओ इस पाक पेट में मेरा खून है! मत दबाओ इस पेट को...इसकी रूह में मैं हूँ!"

लोगों का सर घूम गया सब चुप हो गए।

गोविन्द ने धीरे से उसके सीने पर हाथ रक्खा; और उसमें चेतना आगई।

गोविन्द ने फिर ज़ैनब को अपनी बाहुओं में उठा लिया।

लोग फिर चिल्लाने लगे,

नहीं गोविन्द! ज़ैनब को नीचे रक्खो!..इसने पानी पी लिया है, इसका पेट फूल आया है, इसका पेट देखो! इसने ज़रूर पानी पी लिया है!"

गोविन्द ने बहुत जोर से कहा—जैसे कोई पागल खुशी से हँसकर कहता है—"पागलो! इस पेट में पानी नहीं है! इसमें जिन्दा खून है, खून!"

गोविन्द ज़ैनब को बच्चे की तरह अपनी बाहुओं में समेटे हुए बार-बार कह रहा था—"इसमें जिन्दा ख़ून है !...जो एक दिन जगतपुर की धरती पर चलेगा !"

लोग आश्चर्य्य से पत्थर हो गए लेकिन उस पत्थर में तरावट थी और गोविन्द एक नन्हे बीज की तरह उस पत्थर को फोड़ता हुआ एक नए पौदे के रूप में कोमल मिट्टी पर आ गया—प्रकाश में।

उधर पूरब में नया चाँद निकल रहा था। इधर ज़ैनब, गोविन्द की बाँह में, थकी हुई आँखों से अपने गोविन्द को देख रही थी और धीरे-धीरे मुस्करा रही थी।

आधा जगतपुर बाँध को सम्हाल रहा था और आधा जगतपुर, गोविन्द, ज़ैनब, और घायल तारा और बेग़मा को सम्हालता हुआ खड़ा था। सब पर नए चाँद की नई रोशनी पड़ रही थी, सब आसमान का अमृत पी रहे थे।

गोविन्द ने धीरे से ज़ैनब को धरती पर लिटाते हुए कहा—"आह! ....तुम मेरी धरती हो !" ज़ैनब ने अपनी आधी बेहोशी में उठते हुए कहा—"तुम मेरे आकाश हो !"

और उसने फिर अपने दोनों मासूम हाथों को गोविन्द की ओर उठा दिया।

इस बार जब गोविन्द ने अपनी ज़ैनब को दामन में लिया और चाँदनी में नयी फ़सल को बची हुई देखी; तब उसे लगा कि वह अपने हाथों से जन्नत उठा रहा है; जिसमें से कितने गोविन्द एम० ए० पास होकर निकल रहे हैं। कितनी मासूम ज़ैनी की आँखें मिलती जा रही हैं। कितनी बेगुनाह सब्बो फिर से जीवित हो रही हैं। कितनी अहिल्या कौशल्या, बेग़मा को उनका खोया हुआ रत्न मिल रहा है; कितनी सूरा, सुभागी को उनका फिर से सुहाग मिल रहा है। कितने जगतपुर बस रहे हैं। कितनी इन्द्रा बहनों को ख़ुशियाँ मिल रही हैं कितनी तारा पवित्र होकर उसकी बाहुओं में समा रही हैं।

और सच्चाई को ज़िन्दगी मिली। एक ओर सचमुच इन्सान मरा हुआ मिला लेकिन नयी इन्सानियत की सुबह होने को थी।

उस समय चाँद हँस रहा था। गोविन्द का मचान कुछ कह रहा था। और जगतपुर का टीला दुआ दे रहा था। और टीले के दोनों खंडहर धीरे-धीरे गा रहे थे—तुम मेरी धरती हो!

तुम मेरी धरती हो!